प्रयाग की पाण्डित्य परम्परा

डॉ. (श्रीमती) उर्मिला श्रीवास्तव

प्रयाग की पाण्डित्य परम्परा

डॉ. (श्रीमती) उर्मिला श्रीवास्तव

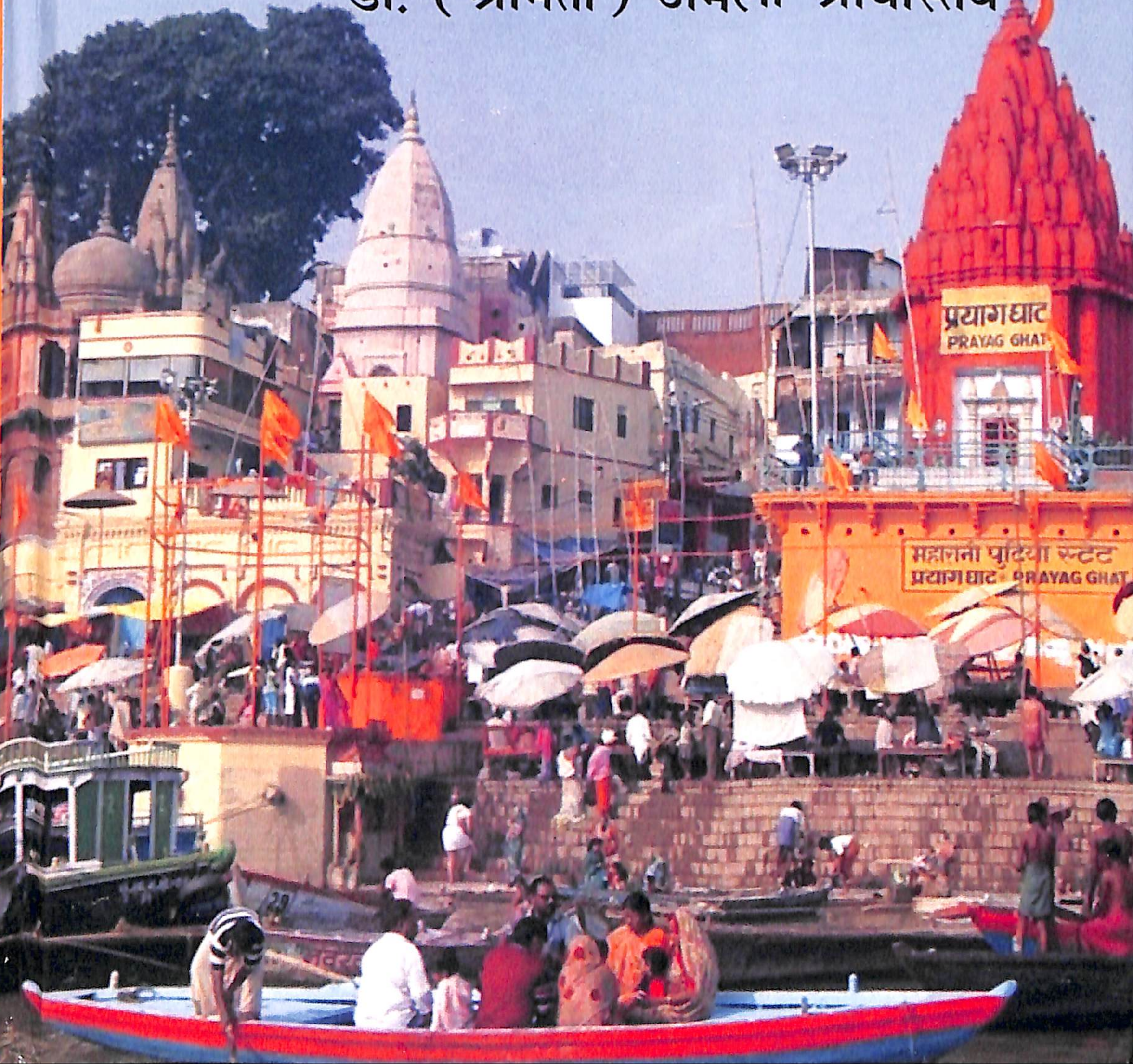

प्रयाग की पाण्डित्य परम्परा

प्रयाग की पाण्डित्य परम्परा

डॉ० उर्मिला श्रीवास्तव

ईस्टर्न बुक लिंकर्स
दिल्ली : : (भारत)

प्रकाशक :

ईस्टर्न बुक लिंकर्स

हैड ऑफिस: 5825, न्यू चन्द्रावल,
जवाहरनगर, दिल्ली-110007
फोन : 23850287, 9811232913

शोरूम: 4806/24, भरत राम रोड,
दरिया गंज, नई दिल्ली-110002
फोन : 23285413

e-mail : eblindology@gmail.com
eblinfo76@gmail.com
Website : www.eblindology.com

© लेखिका

संस्करण : 2016

मूल्य : ₹ 850

आइ.एस्.बी.एन्. : 978-81-7854-292-8

प्रयाग की पाण्ड्त्य परम्परा

डॉ० उर्मिला श्रीवास्तव

मुद्रक : **आर. के. प्रिंट सर्विस**, दिल्ली

गंगा यमुना के संगम के पुलिनवर्ती प्रयाग में विलुप्त सरस्वती, समुज्ज्वल मन्दस्मित बिखेरती पुञ्जीभूत अरुणाभ ज्ञान सम्पदा की साक्षी बनती है। उस प्रयाग की अभिराम साहित्यश्रीः की समृद्धि का परिचय देती है आर्यावर्त की आर्ष वाणी—

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो
मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे
ह्रदा इव स्नात उ त्वे ददृश्रे॥

संसार में सभी मनुष्यों के नेत्र और कान होते हैं किन्तु मन के आवेग सबके भिन्न-भिन्न होते हैं। यथा कुछ सरोवर गले तक जलयुक्त, कुछ कटि तक जलयुक्त तथा कुछ बारम्बार स्नान करने पर भी गहरे जल के अनुमान से परे होते हैं, ऐसे ही अथाह ज्ञान सम्पन्न, प्रज्ञा-विवेक गहन गाम्भीर्ययुक्त अननुमेय हैं—प्रयाग के संस्कृत पण्डित।

जन्मदात्री माँ **राधा रानी**

एवं

स्नेहप्रदात्री सासू माँ **फूल कुमारी**

(जिन्होंने लेखनी को संवारने के अवसर दिए)

के चरणों में सश्रद्ध .....

नान्दीवाक्

देवसंस्कृति, देववाणी, देवभूमि, देवनदी तथा देवतात्मा गिरि की जैसी पावन प्रतिष्ठापना भारतवर्ष में रही है वैसी विश्व के अन्य किसी देश अथवा भूक्षेत्र में नहीं। 'इमं में गङ्गे यमुने सरस्वति' मन्त्रांश से सिद्ध है कि देवनदी के रूप में इनकी प्रतिष्ठा वेदयुग में ही हो गई थी। इनके देवत्व का ही यह प्रभाव था कि आर्यसंस्कृति विश्व के जिन किन्हीं भूभागों में संक्रान्त हुई वहाँ भी गंगा तथा सरस्वती की प्रतिष्ठा हुई। इण्डोनेशिया के बालीद्वीप में अमरावती-क्षेत्र की 'पकेरिसान' तथा लोम्बोक द्वीप में 'सुरनदी' को मैं स्वयं गंगा के रूप में देख चुका हूँ। सरस्वती नामक नदी ईरान में भी प्रवहमान थी जिसका उल्लेख स्वयं डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल ने किया है।

ईसा पूर्व 484 वें वर्ष में ईरानी सम्राट् दाय के, शुषा नामक स्थान में विद्यमान शिलालेख में लिखा गया है—

पिशतपुह्या इदाकने हयावुषु आ।
उलाह्या हिन्दुहनु इनह्या हरनु वमिया अयहियु॥

अर्थात् इस राजप्रसाद के लिये कलाकौशल-मण्डित हाथी के दाँत हिन्दुदेश से मँगाए गए थे—सरस्वती नदी के मार्ग से। निश्चय ही यह नदी भारत में बहने वाली सरस्वती से भिन्न रही होगी।

गंगा तथा यमुना-सरीखी दो श्रेष्ठ देवनदियों का परस्पर संगत होना भी एक विलक्षण संयोग था। दोनों ही देवनदियाँ थीं। दोनों का आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक विग्रह तो था ही, मानवीय-स्तर पर भी वे जनमानस में प्रतिष्ठित थीं। सरस्वती, गंगा तथा यमुना क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं कृष्ण की प्रिया के रूप में स्मृत की जाती थीं। गंगा के वैशिष्टियों का तो अन्त नहीं था। वह जह्नु तथा हिमगिरि की पुत्री थीं। शान्तनु की अर्धाङ्गिनी तथा देवव्रत (भीष्म) की जन्मदात्री भी थी।

इन तीनों देवनदियों का स्वरूप इतना उत्कृष्ट एवं समान था कि सरस्वती के पश्चिम वाहिनी होने पर भी, उसे यमुना के ही साथ गंगा से संगत निरूपित कर, भारतीय वाङ्मय में **त्रिवेणी-संगम** की कल्पना कर ली गई। आज भी प्रयाग नगर (इलाहाबाद) की प्रतिष्ठा त्रिवेणी-संगम पर ही मानी जाती है। कुछ विद्वज्जन, रमणियों की त्रिवेणी में विद्यमान, तीसरी वेणी (सरस्वती) को गुप्त एवं अलक्षित मानते हैं।

सरस्वती के सन्दर्भ को दूर भी रखें तो गंगा-यमुना का संगम स्वयमेव अत्यन्त महनीय है। सृष्टि-रचना से पूर्व, तदर्थ शक्ति-सञ्चयार्थ यहीं पर भगवान् परमेष्ठी ने घोर तपस्या की तथा दश अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये। इन प्रकृष्ट यज्ञों का स्थल होने के कारण ही इसे 'प्रयाग' कहा गया। पुराणों तथा तद्नुवर्ती भारतीय साहित्य में। यद्यपि 'संगम तथा प्रयाग' दो भिन्न तथ्य है। संगम दो नदियों (गंगा तथा यमुना) का हुआ तथा प्रकृष्ट यज्ञ अश्वमेध-कोटिक हुए। परन्तु नदियों का संगम तथा अश्वमेध यज्ञों का सम्पादन जिस एक स्थल में हुआ वह 'तीर्थराज' के रूप में प्रख्यात हो गया। लोक में एक अन्वय-व्यतिरेकात्मक व्याप्ति प्रतिष्ठित हो गई—

यत्र यत्र नदी संगमस्तत्र तत्र प्रयागः
यत्र-यत्र न संगमस्तत्र तत्र न प्रयागः
यथा द्वयोर्नद्योः संगमे देवप्रयागः
रुद्रप्रयागः कर्णप्रयागः नन्दप्रयागः।

हिमालय क्षेत्र में दो नदियों के संगम पर स्थित स्थल का 'प्रयाग' के रूप में प्रतिष्ठित होना, निश्चय ही गंगा-यमुना के संगम तथा संगमस्थ प्रयाग के बाद ही सम्भव हो सका होगा। भारतीय धर्म एवं संस्कृति के साथ संगम-प्रयाग की यह परम्परा बृहत्तर भारत के भूक्षेत्रों में भी प्रतिष्ठित हुई। मैंने स्वयं बालीद्वीप में दो नदियों के संगम (चम्पुआन) पर स्थित मार्कण्डेय आश्रम को देखा।

प्रयाग को तीर्थराज कहा गया है। सन् 1583 ई॰ में शहंशाह अकबर ने इसी संगम क्षेत्र में दुर्गनिर्माण कर 'इलाहाबाद' नगर बसाया जो कड़ा सूबे का स्थानापन्न था। इस क्षेत्र का धार्मिक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा साहित्यि महत्त्व विलक्षण रहा है। मुझे हार्दिक आनन्द एवं परितोष है कि डॉ॰ उर्मिला श्रीवास्तव ने प्रयाग की पाण्डित्य-परम्परा को रेखांकित कर सहृदय-जगत् को उपकृत किया है। उनका श्रम, स्वाध्याय तथा प्रतिभा—तीनों ही स्तुत्य हैं।

मैं उर्मिला तथा उनके ग्रन्थ का भूरिशः अभिनन्दन करता हूँ।

अभिराज राजेन्द्र मिश्र

शिमला, 2 अक्टूबर 2015 ई॰।
आवास : सन राइज विला, लोअर समरहिल, शिमला—171005 (हि॰ प्र॰)
846/1-C बाघम्बरी गद्दी रोड, अल्लापुर, इलाहाबाद—211006।

प्ररोचना

विष्णुपदी गंगा एवं सूर्यतनया कालिन्दी से वलयित प्रयाग भारत के मानचित्र में उन महत्त्वपूर्ण नगरों में से एक है जो अपनी पवित्रता से मानव को आवागमन के चक्र से मुक्ति दिलाने के लिए प्रसिद्ध हैं। बाल्यकाल में पितृगृह से विलग हुई हिमपर्वत की दो सुताएँ सुदीर्घ यात्रा में धरती को रससिक्त करती हुई, कृषि को जलतृप्त करती हुई प्रयाग की भूमि पर अधीर होकर परस्पर प्रगाढतया परिरब्ध होती हैं। इस स्नेहाप्लावित मिलन की मूक साक्षी प्रयाग की धरा इनके अमृतजल से अभिमन्त्रित होकर इतनी अधिक आह्लादित एवं पुण्यवान् हो उठती है कि इसका एक-एक कण रजतीर्थ बन जाता है तब ब्रह्मा भी बाध्य होते हैं यज्ञीय अन्नधान्यादि प्रचुर शस्य श्यामला प्रयाग धरित्री का यज्ञभूमि के रूप में वरण करने को। इस प्रकृष्ट याग से तपःपूत प्रयाग की भौगोलिक सीमा ऋषि-मुनियों, कवि-साहित्यकारों की रचनास्थली के गौरव से स्पन्दित हो उठती है।

प्रयाग संस्कृत-संस्कृति की अमृतभूमि है। संस्कृत की मूलभावना त्याग और तप की महनीयता से ओत-प्रोत संस्कृति के साथ एकरूप-एकधार होकर संस्कृत रचना संसार का पाथेय बनती है। प्रयाग की साहित्य संवलित उर्वराभूमि में सुदूरतम प्राचीनकाल से महर्षि भरद्वाज से वागर्थ सर्जना का जो अंकुर प्रस्फुटित हुआ था, काव्यमेधा समृद्ध वह पादप विशाल तरु बन कर प्रयाग की धरा को साहित्य संवलित कर रहा है। काव्य के एकमात्र उत्कृष्ट प्रयोजन **सद्यः परनिर्वृतये** की स्थापना हेतु ब्राह्मी स्थिति में **सर्वजन सुखाय सर्वजन हिताय सर्वजन संवेद्य** काव्यप्रणयन ही प्रयाग के कवियों-साहित्यकारों की रचना का आन्तरिक रहस्य है। आत्मश्लाघा, ज्ञानदम्भ अथवा ख्यातिप्रचार की अपेक्षा कभी नहीं की उन्होंने। महर्षि भरद्वाज की अध्ययन-अध्यापन निष्ठ परम्परा के प्रहरी उनका व्यक्तित्व विलक्षण था और कृतित्व अनुपम। व्यक्ति का कर्तृत्व ही उसके व्यक्तित्व का प्रतिमान होता है—यह उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती थी उन पर। उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व में एकरूपता का प्रतिभान—**मधुमन्मे निष्क्रमणं**

मधुमन्मे परायणम् (अथर्ववेद, 1.34.3) श्रुतिवचन का पौनः पुन्येन स्मरण कराता है। **सर्वज्ञानमयो हि सः** (मनुस्मृति, 2.7) स्मृतिवचन को सार्थक करते हुए एक मौन साधक की भाँति अपने सीमित साधनों के अनुकूल अप्रकाशित संस्कृत धरोहर के उद्धार में अथवा प्रकाशित संस्कृत साहित्य रचना निबन्धन में व्यस्त थे वे। युग की मानसिकता को अपनी अन्तर्दृष्टि से परख कर साहित्य का पठन-पाठन-लेखन किया था उन्होंने इसीलिए कालसूर्य के युगान्तर में आरूढ़ हो जाने पर भी उनके काव्यों में सम्प्रेषणीयता है, उनकी रचनाओं में कालजयता है।

He made jewels out of clay—ज्ञान गम्भीर प्रयागस्थ अध्येताओं की प्रतिभा को व्याख्यायित करने के लिए अंग्रेजी भाषा की यह सामान्य उक्ति पर्याप्त है। वस्तुतः भारत के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गौरव गाथा के संरक्षण में प्रयागीय विद्वत् वर्ग की भूमिका विशिष्ट रही है परन्तु सृजनशीलता का लेखा-जोखा नगण्य। हमारे देश में स्वजनों की चिता के फूल चुनने की प्राचीन परम्परा है, देर से ही सही, उसी परिपाटी का अनुपालन करने का क्षुद्र प्रयास है—'प्रयाग की पाण्डित्य परम्परा'।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के नैतिक वाक्यों में सद्गुरु के जो लक्षण वर्णित हैं, प्रयाग के संस्कृत पण्डित उन लक्षणों से सर्वथा मण्डित, श्रद्धेय और नमस्य हैं। अपने श्रेष्ठ गुणों से भावी संस्कृत परम्परा हेतु वे साहित्यसेवी **आचरितुं योग्यः आचार्यः** की पाणिनीय व्याख्या को वस्तुतः सार्थक करते हैं। उनकी असाधारण प्रतिभा, मृदुभाषी व्यवहार, विद्वत्तापूर्ण वक्तृता संस्कृत शिक्षाजगत् के लिए वरदान है।

संस्कृत भाषा एवं साहित्य के उन्नयन तथा प्रतिष्ठापना हेतु सतत् प्रयासरत उन साहित्यवेत्ताओं का व्यक्तित्व श्रीमन्त महादेव शास्त्री के दशकों पूर्व अभिव्यक्त शिववचन में प्रकटता है—चिरकाल पर्यन्त लेखनी अपने दिव्यलीला विस्तार से हमारे हृदय को आनन्दित करती रहे—**प्रमोदयन्तु नो मनांसि प्रभूतकालं लेखनी ललितलीलाभिः।** उनके धीर गम्भीर व्यक्तित्व की मधुसुष्ठ, सरस, मधुशीतल स्नेहच्छाय में संस्कृत साहित्य रसिकजन उनकी संस्कृत साहित्य सर्जना का समग्र पाथेय ग्रहण कर कृतकृत्य हैं। संस्कृत के प्रति उनके निष्ठाभाव का आभास उनके साहित्य का आलोडन-विलोडन करने वाला सामान्य संस्कृत श्रद्धजन तो कर ही लेता है अतः उनके मौक्तिकाभ साहित्यकार-गीतकार-नाटककार व्यक्तित्व की सृजनयात्रा का लेखा-जोखा उनके विविध आराम-विरामों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना यहाँ अभीष्ट है।

सुधी समाज अवगत हो संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में उन सारस्वत

साधानारत वरेण्य-श्रद्धेय प्रतिभाओं के योगदान से—इसी बिन्दु को ध्यान में रख इस साहित्यिक धरा में अतीत से अद्यतन प्रवहमान संस्कृत साहित्य रचना का इतिहास लिपिबद्ध करने को कटिबद्ध हुई मैं। प्रयाग जनपद को अपने जन्म से गौरवाभिभूत करने तथा अपनी महनीय मेधा से सारस्वतोपायन उपलब्ध कराने वाली प्रतिभाओं का जीवनवृत्त संकलित कर पाना मेरे लिए असम्भव तो नहीं, श्रमसाध्य अवश्य था। उन स्वनाम-धन्य ज्ञानपिपासुओं में अनेक युग के अन्तराल में विलीन हो चुके थे, उनके वंशजों से बारम्बार याचना कर महाराजा शूद्रक की शुकसम्बन्धी जिज्ञासा के समान-जन्म कस्मिन्देशे ? भवान् कथं जातः ? केन वा नाम कृतम् ? का ते माता ? कस्ते पिता ? कथं वेदानामागमः ? कथं शास्त्राणां परिचय ? कुतः कलाः समासादिताः ? समग्र वृत्तान्त हस्तगत कर लिया। सौभाग्य से जो संस्कृत ज्ञान गरिमा सम्पन्न विद्वज्जन अद्यापि संस्कृत साहित्य सर्जना में सम्पृक्त हैं, उनसे स्वयं मिल कर अथवा सरलतम सम्पर्क साधन दूरभाष का प्रयोग कर सामग्री सञ्चित कर ली। पुस्तकालयों में आदिवस पृष्ठ-पृष्ठ आलोडन कर भी यथावश्यक सामग्री का संकलन किया। क्या कहूँ ? उन सम्मान्य गुरुजनों में से अनेक की सन्तानों ने अनेकशः सम्पर्क करने के बाद भी अपने पूज्य पितृश्री इत्यादि के विषय में सूचनाएँ उपलब्ध कराने का कष्ट नहीं किया। अन्यथा यह पुस्तक और अधिक उपादेय और अधिक प्रामाणिक होती।

अस्तु, ज्ञान गंगापथ के निर्माण में भगीरथ की भाँति मेरे सहयोगी रहे—डॉ० शिवशंकर त्रिपाठी (पूर्व सहायक सचिव, हिन्दी साहित्य सम्मेलन); प्रयाग की संस्कृत पाठशालाओं में अध्यापन कार्य में व्यापृत रहने वाले विगत अथवा विद्यमान आचार्यों के विषय में उनसे यथावश्यक सामग्री मिली। डॉ० ओम प्रकाश श्रीवास्तव (रजिस्ट्रीकरण अधिकारी, पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृति, उत्तर प्रदेश सरकार) ने मेरे अनुरोध पर प्रयाग जनपद में उपलब्ध संस्कृत शिलालेखों पर सम्पूर्ण सामग्री क्रमबद्ध रूप में प्रदान कर मेरे कार्य को सरल किया है, इन दोनों आत्मीय जनों के प्रति मेरा साधुवाद। इस कृति के बीजवपन में प्रेरणा थे मेरे पति - डॉ० आनन्द कुमार श्रीवास्तव (प्राचार्य, चौधरी महादेव प्रसाद महाविद्यालय, इलाहाबाद), लेखनयात्रा के सुदीर्घ पथ में वे ही मेरे सहयात्री थे, वे ही मेरा सम्बल। अनेक बार सामग्री सञ्चयन का साहस खो देने पर उनसे ही ऊर्जा मिली और ग्रन्थ की प्रति अस्तित्व में आई। मेरी वात्सल्यमयी सास श्रीमती फूल कुमारी ने पारिवारिक दायित्वों से मुक्त कर मुझे लेखन के लिए मुक्त किया। इन दोनों स्नेही स्वजनों के प्रति हृदय से मेरा आभार।

जन्म और मृत्यु—जीवन के दो अवश्यम्भावी छोर हैं जो साहित्यमर्मज्ञ,

विचारप्रवीण, लेखनकुशल आचार्यगण कल थे, वे आज हमारे मध्य अपनी महनीय जीवन कथा कहने को विद्यमान नहीं हैं। जो प्रातः स्मरणीय आज हैं, वे कल अस्तित्व में नहीं रहेंगे। युग बदला है आगे भी बदलेगा, न कुछ स्थिर था न कुछ अवशिष्ट रहेगा। इस अस्थिरता के केन्द्र में मात्र एक तत्त्व स्थाई है—कीर्ति। यह हाड़-मांस का शरीर क्षण भंगुर है, नश्वर है परन्तु कीर्तिर्यस्य स जीवति। अतः अपने अध्ययन समर्पित जीवन शैली और विलक्षण चिन्तन शक्ति से वे उद्दीपित व्यक्तित्व आप्रलयान्त यश के भागी होंगे—**स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते**,' (चाणक्यनीतिदर्पण, पृ॰ 34) वास्तव में इन साहित्येतिहास सिद्ध पुरुषों के जन्म से, जीवन से, कर्म से, विचार से, भावना से, रुचि से, अध्ययन से, अध्यापन से, पठन से, लेखन से, ज्ञान से, सारल्य से, वाणी से, व्यवहार से—धन्य है संस्कृत भाषा, धन्य है संस्कृत साहित्य, धन्य है साहित्य अध्येता, धन्य है आकाश, धन्य है प्राणवायु और धन्य-धन्य प्रयाग की पावन भूमि।

काल के अनन्त प्रवाह में साहित्य सर्जना की लहरें उठती-गिरती रहती हैं। एक लहर अपना योगदान कर अपनी सम्पत्ति साहित्यिक समाज को समर्पित कर सदा के लिए विलीन हो जाती है। वह अमूल्य योगदान विस्मृत न हो जाए, इस हेतु विगत का संरक्षण वर्तमान का कर्तव्य बनता है। उसी सञ्चित सामग्री से भविष्य को स्वाभिमान और स्फूर्ति मिलती है। संस्कृत भाषा एवं साहित्य धुरन्धर उन साहित्यशास्त्रियों के कालपरिमित जीवनवृत्त का संकलन मैंने अपनी संकुचित सामर्थ्यानुसार किया है तथपि बहुत कुछ छूट गया है। कामना है कि प्रयाग जनपद के पुस्तकालयों में प्रयागवीथिका की स्थापना हो, विश्वविद्यालय में प्रयाग अध्ययन प्रखण्ड का औपचारिक उद्घाटन हो। इन सारस्वत प्रविभागों के अन्तर्गत प्रयाग जनपद के एक-एक भूखण्ड के इतिहास, भूगोल, राजनीति, कृषि, वाणिज्य, साहित्य, भाषादि के शोधपरक विवेचन हों, उस समय यह ग्रन्थ साहित्य निपुण अध्येताओं के लिए पूर्वपीठिका का, आधारशिला का कार्य करे।

–उर्मिला श्रीवास्तव

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय : उपोद्घात ... 19

प्रयाग की पृष्ठभूमि, परिचय, महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थल, भौगोलिक स्थिति, प्राचीन गाथा, सर्वधर्मभावना, ऐतिहासिक भूमि, शिक्षा भूमि, त्रिवेणी माहात्म्य, स्नानपुण्य, दानपुण्य, मुण्डन संस्कार, श्राद्ध एवं पिण्डदान, देवभूमि, अक्षयवट, कल्पवास, कुम्भ पर्व

द्वितीय अध्याय : प्रयाग का साहित्यिक सन्दर्भ ... 50

प्रयाग का संस्कृत साहित्य को अवदान ... 50
प्रयाग की प्राचीन पण्डित परम्परा ... 51
प्रयाग की अर्वाचीन पण्डित परम्परा ... 54
दानसाहित्य ... 58
कौशाम्बी में संस्कृत सर्जन ... 58
शृंगवेरपुर में संस्कृत सर्जन ... 59
प्रतिष्ठानपुर में संस्कृत सर्जन ... 60
वारणावर्त में संस्कृत सर्जन ... 60
अलर्कपुर में संस्कृत सर्जन ... 60
प्रयाग की संस्कृत पाठशालाएँ ... 61
प्रयाग की संस्कृत संस्थाएँ ... 65
शंकराचार्य आश्रम ... 65
अद्यतन स्थिति ... 67

पृष्ठ संख्या

तृतीय अध्याय : प्रयाग के पूर्ववर्ती ऋषि/आचार्य ... 69

(1) महर्षि भरद्वाज ... 69
(2) अमर सिंह ... 79
(3) कुमारिल भट्ट ... 80
(4) भानुदत्त मिश्र ... 85
(5) स्वामी रामानन्द ... 87

चतुर्थ अध्याय : प्रयाग के अर्वाचीन संस्कृत पण्डित ... 96

(1) केशव भट्ट ... 96
(2) आदित्य राम भट्टाचार्य ... 96
(3) लाला सीताराम 'भूप' ... 99
(4) गङ्गानाथ झा ... 103
(5) गंगाप्रसाद उपाध्याय ... 107
(6) हरिहर कृपालु द्विवेदी ... 121
(7) प्रसन्न कुमार आचार्य ... 121
(8) कमलाकान्त मिश्र ... 122
(9) मिट्ठू लाल शास्त्री ... 128
(10) क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय ... 131
(11) बाबूराम सक्सेना ... 138
(12) सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी ... 143
(13) उमेश मिश्र ... 147
(14) स्वामी सत्यप्रकाशानन्द सरस्वती ... 153
(15) उमाशंकर श्रीवास्तव 'जानकार' ... 163
(16) राम बदन शुक्ल ... 164
(17) श्याम नारायण श्रीवास्तव ... 168
(18) तारिणीश झा ... 170
(19) प्रभात शास्त्री ... 171
(20) लक्ष्मीकान्त दीक्षित ... 175
(21) रामपाल त्रिपाठी ... 177

पृष्ठ संख्या

(22) राम प्रताप त्रिपाठी ... 177
(23) आद्याप्रसाद मिश्र ... 179
(24) चण्डिकाप्रसाद शुक्ल ... 182
(25) सन्त नारायण श्रीवास्तव ... 185
(26) गोविन्द चन्द्र पाण्डेय ... 186
(27) चन्द्रभानु त्रिपाठी ... 188
(28) महावीर प्रसाद लखेड़ा ... 192
(29) त्रिविक्रम पति ... 193
(30) जयशंकर त्रिपाठी ... 197
(31) विद्याधर धर्माधिकारी ... 199
(32) माणिक चन्द्र मिश्र ... 201

पञ्चम अध्याय : प्रयाग के समकालीन संस्कृत पण्डित ... 202

(1) राजकुमार शुक्ल ... 202
(2) सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव ... 203
(3) सुरेश चन्द्र पाण्डेय ... 204
(4) जगन्नाथ पाठक ... 206
(5) शिव शंकर त्रिपाठी ... 208
(6) ज्ञान देवी श्रीवास्तव ... 212
(7) कमलेश दत्त त्रिपाठी ... 213
(8) गयाचरण त्रिपाठी ... 215
(9) हरिशंकर त्रिपाठी ... 219
(10) भास्कर त्रिपाठी ... 221
(11) अभिराज राजेन्द्र मिश्र ... 224
(12) सुषमा कुलश्रेष्ठ ... 229
(13) गोपराजू रामा ... 234
(14) रहस बिहारी द्विवेदी ... 234
(15) राजलक्ष्मी वर्मा ... 236
(16) हरिदत्त शर्मा ... 238
(17) दामोदर राम त्रिपाठी ... 242

पृष्ठ संख्या

(18) मृदुला त्रिपाठी ... 243
(19) आनन्द कुमार श्रीवास्तव ... 244
(20) यदुनाथ प्रसाद दुबे ... 247
(21) भगवत् शरण शुक्ल ... 249
(22) सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय ... 251
(23) बनमाली बिस्वाल ... 253
(24) गिरिजा शंकर शास्त्री ... 258
(25) जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि' ... 261
(26) ललित कुमार त्रिपाठी ... 264

षष्ठ अध्याय : प्रयाग के प्रकीर्ण संस्कृत पण्डित ... 270

(1) महानन्द द्विवेदी ... 270
(2) रामहर्ष शुक्ल ... 270
(3) जयकिशोर झा ... 271
(4) जगत श्याम ब्रह्मचारी ... 271
(5) काली प्रसाद मिश्र ... 271
(6) रामशरण त्रिपाठी ... 271
(7) भूपेन्द्र पति त्रिपाठी ... 272
(8) रामसुख ... 272
(9) दयाशंकर मिश्र ... 272
(10) कृष्णकान्त शुक्ल ... 272
(11) रामानन्द मिश्र ... 273
(12) माणिक चन्द्र शुक्ल ... 273
(13) चन्द्रशेखर ... 273
(14) ब्रह्मदत्त द्विवेदी ... 273
(15) नकछेद राम ... 273
(16) राम कृष्ण त्रिपाठी ... 273
(17) गयादत्त त्रिपाठी ... 274

पृष्ठ संख्या

सप्तम अध्याय : प्रयाग में विदेशी विद्वान् ... 275

(1) जॉर्ज फ्रेडरिक विलियम थिबो ... 275
(2) लुडविग आल्सफोर्ड ... 277
(3) पाउल थीमे ... 277

अष्टम अध्याय : प्रयाग में आर्यसमाज के पण्डित ... 279

(1) क्षेमकरण दास त्रिवेदी ... 279
(2) गंगाप्रसाद उपाध्याय ... 279
(3) सत्यप्रकाश सरस्वती ... 280
(4) अयोध्या प्रसाद ... 280
(5) मूल चन्द अवस्थी ... 281

नवम अध्याय : प्रयाग के संस्कृत अभिलेख ... 282

1. समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रस्तर स्तम्भ लेख ... 282
2. सम्राट् यशःकर्ण का कौशाम्बी ताम्रपत्र लेख ... 284
3. यशःकर्ण की रानी वीक्कल देवी का कौशाम्बी ताम्रपत्र लेख ... 284
4. कुमारगुप्त का गढ़वा अभिलेख ... 285
5. कुमारगुप्त का गढ़वा अभिलेख, संवत् 98 ... 285
6. इलाहाबाद संग्रहालय यूप अभिलेख ... 285
7. भीमसेन का गिंजा शिलालेख ... 285
8. पभोसा गुफा अभिलेख ... 285
9. कनिष्क की मृण्मुद्रा ... 286

दशम अध्याय : प्रयाग की संस्कृत पाठशालाएँ ... 287

सन्दर्भ पुस्तक सूची ... 290

प्रथम अध्याय

उपोद्घात

प्रयाग की पृष्ठभूमि

भारतीय संस्कृति का मूल उत्स एकत्व की भावना है। नाना भेदात्मक प्रपञ्च की व्याख्या प्राचीन भारतीय मनीषी इस प्रकार करते हैं—जो इस एकल अद्वैत भाव को बलवती बनाए। भारतीय चिन्तनधारा सम्पूर्ण चराचर जगत् को ब्रह्म में अध्यस्त अथवा चेतन पुरुष की प्रकाशात्मिका भित्ति में उन्मीलित मानती है। वैदिक ऋषियों ने सभ्यता के विकास की सरणियों में सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक मान्यता एवं दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान करते हुए चतुर्दिक परिदृश्यमान विविधता में एकता का सूत्रपात किया। सम्पूर्ण विश्व को एकात्ममय मानने वाले ऋषियों ने विभिन्न परम्पराओं एवं धार्मिक मान्यताओं को वर्णाश्रम धर्म की नैतिक सुविचारित व्याख्या में बाँध कर आसेतु हिमाचल एक संस्कृति का विकास किया।

राष्ट्रीय एकता के इन उपायों में तीर्थों का चयन और उनकी यात्राओं का प्रबन्ध एक महत्त्वपूर्ण सशक्त माध्यम रहा है। सभ्यता के उषःकाल से ही भारतवर्ष में पवित्र नदियों, पर्वतों, सरोवरों एवं आश्रमों आदि की तीर्थयात्रा का प्रचलन रहा है। ऐसा कहा जाता है कि नियाग्रा और विक्टोरिया प्रपात यदि भारतभूमि में होते तो वहाँ भारतीयों ने अनेक मन्दिर स्थापित कर दिए होते और पर्वतों को काट कर मूर्तियों से अलंकृत कर दिया होता, तब इन स्थानों की यात्रा मात्र भौतिक मनोरंजन और पर्यटन के लिए ही नहीं, आध्यात्मिक सुख और मानसिक शान्ति के लिए भी की जाती, कोटि-कोटि श्रद्धालु जन इन पावन स्थलों की यात्रा से अनन्तकोटि पुण्य के भागी होते।

कृत्यकल्पतरु के तीर्थविवेचन काण्ड की भूमिका में कहा गया है कि जहाँ राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं ने देश को एकीकृत अथवा विखण्डित करने का कार्य किया है, वहाँ तीर्थयात्रियों ने धार्मिक विश्वासों पर आधारित शाश्वत मूल्यों से युक्त एकता का सूत्र पिरोया है। चतुर राजनैतिकता के द्वारा भारत की एकता की

सुरक्षा के बहुत पहले से ही तीर्थयात्रियों के चरणों ने अखण्ड भारत की रचना कर दी थी। आर्यावर्त के पुत्रों के लिए समस्त भूमि पवित्र थी, नदियाँ पावन थीं, वृक्ष पूज्य थे, शैलशृंग नमस्य थे, सरोवर रक्षणीय थे और आश्रम श्रद्धेय। वस्तुतः मातृभूमि के प्रति नतमस्तक होने का यह एक व्याज था। सृष्टि के प्रारम्भकाल से ही इस भूमि से जुड़े होने से यहाँ की प्रत्येक वस्तु से उन्हें अपार मोह था। उन्होंने धरा के केवल भौतिक रूप को ही नहीं देखा था उसमें अध्यात्म की, देवत्व की कल्पना भी की थी। एक नदी मात्र जलस्रोत नहीं—दैवीरूप है, एक स्थल केवल भूखण्ड नहीं—पालन पोषण की क्षमता से सम्मान्य है, एक कुटी केवल ऋषि का आश्रयस्थल नहीं—आश्रम का अंश होने से तपःपूत है। इन सभी स्थलों की पावन रश्मियाँ, पवित्र वातावरण जन-जन की आन्तरिकता को अनुप्राणित करने में समर्थ हैं ऐसा विश्वास अखण्ड है।

प्रयाग : एक परिचय

भारत के मानचित्र पर प्रदीप्त प्रकाशस्तम्भ के समान, पुण्यसलिला गंगा, सूर्यतनया यमुना एवं अनुमानगम्या सरस्वती का पावन संगम स्थल, आदिकवि वाल्मीकि, भरद्वाज एवं शृंगी आदि अनेक महर्षियों की कर्मभूमि प्रयाग धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से सदैव सम्पन्न एवं समृद्ध रहा है। 'प्र' उपसर्ग पूर्वज 'यज्' धातु से निष्पन्न प्रयाग में 'प्र' उपसर्ग श्रेष्ठता वाचक एवं 'याग' शब्द यज्ञवाची है। शतपथ ब्राह्मण ने यज्ञ को उत्कृष्टतम कर्म स्वीकार किया है—यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्म।[1] ब्रह्मपुराण के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में इस क्षेत्र में प्रकृष्ट यज्ञ हुए, अतः अपनी उत्कृष्टता के कारण यह प्रयाग कहलाया। यज्ञस्थलों में प्रधानता के कारण इसे प्रयागराज भी कहा जाता है।[2] स्कन्दपुराण के अनुसार—प्रकृष्टं सर्वयागेभ्यः प्रयागमिति गीयते।[3] उत्कृष्ट यज्ञादि और दान-दक्षिणादि से परिपोषित देखकर ही विष्णु, शङ्कर आदि देवताओं ने इसका प्रयाग नामकरण किया।[4] महाभारत के वनपर्व के अनुसार स्वयं ब्रह्मा ने यहाँ अश्वमेध यज्ञ किया, इसी कारण यह प्रयाग कहलाया। मत्स्यपुराण के अनुसार तो पूरा प्रयाग ही प्रजापति की यज्ञवेदी है। वराहपुराण के अनुसार ब्रह्मा के यज्ञ की पाँच वेदियाँ हैं, जिनमें मध्यवेदी प्रयाग है।[5] हरिवंशपुराण में आचार्य जिनसेन

---

1. शतपथ ब्राह्मण 1.7.1.5.
2. प्रकृष्टत्वात् प्रयागोऽसौ प्राधान्याद् राजशब्दवान्, त्रिस्थली में उद्धृत ब्रह्मपुराण, पृ॰ 13.
3. स्कन्दपुराण 4.7.49.
4. दृष्ट्या प्रकृष्टयागेभ्यो पुष्टेभ्यो दक्षिणादिभिः।
प्रयागमिति तन्नाम कृतं हरिहरादिभिः।। स्कन्दपुराण, 4.22.61.
5. अन्य वेदियों में पूर्व वेदी गया, दक्षिणवेदी तिरुजा, पश्चिम वेदी पुष्कर, उत्तरवेदी

ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि प्रजा ने जिस स्थान पर भगवान् ऋषभदेव का पूजन किया, प्रकृष्टता के कारण वह स्थान प्रयाग कहलाया। आचार्य रविषेण ने पद्मपुराण में कहा है कि भगवान् ऋषभदेव ने जिस स्थान पर बहुत बड़ा त्याग किया, प्रकृष्ट त्याग से वह स्थान प्रयाग कहलाया। सभी जीवों के अधीश ब्रह्मा ने यहाँ अनेक यज्ञ किए तथा इस क्षेत्र के अधिष्ठातृ देव बन कर रहे अतः इस क्षेत्र को प्रजापति क्षेत्र भी कहते हैं।[1] इस भूमि में चक्रवर्ती राजाओं ने भी अनेक यज्ञ किए थे—यज्ञयते क्रतुभिर्देवास्तया चक्रधरा नृपाः। पद्मपुराण के अनुसार ग्रहों में सूर्य के सदृश तीर्थों में प्रयाग सर्वोत्तम है। अतः इसे भास्करक्षेत्र भी कहा जाता है।[2] पद्मपुराण के ही अनुसार जिस प्रकार जगत् की उत्पत्ति ब्रह्माण्ड से होती है उसी प्रकार प्रयाग से अन्य तीर्थों की उत्पत्ति होती है। तीन नदियों—गंगा, यमुना, सरस्वती के संगम तथा ब्रह्मा द्वारा सम्पादित यज्ञों से प्रयाग का एक नाम तीर्थराज भी है। मत्स्यपुराण भी सभी तीर्थों में श्रेष्ठ होने के कारण इसे 'तीर्थराज' संज्ञा देता है। त्रैलोक्य के समस्त तीर्थों में पवित्रतम तीर्थ प्रयाग में ज्ञान यज्ञों के निरन्तर प्रवर्त्तमान होने से इसकी महत्ता निर्विवाद है।

हिन्दू धर्म में दो प्रकार के तीर्थ माने गए हैं—कामद तथा मोक्षद—जो तीर्थ कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं वे मोक्षद नहीं है तथा जो मोक्ष देने वाले हैं वे कामद नहीं है। प्रयाग ही विश्व में ऐसा तीर्थ है जो कामद भी है मोक्षद भी क्योंकि यह तीर्थराज 'भुक्ति' 'मुक्ति' दोनों के सम्पादन में समर्थ है। पद्मपुराण में स्पष्ट कहा गया है कि जैसे ग्रहों में सूर्य और नक्षत्रों में चन्द्रमा अत्युत्तम है उसी प्रकार साढ़े तीन कोटि तीर्थों में प्रयाग नगरी सर्वोत्तम है—

ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं प्रयागाख्यमनुत्तमम्॥

प्रयाग नगरी में ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीनों देवताओं का वास होने से देवगण, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषिगण प्रयाग मण्डल को दुष्कर्मों से बचाते रहते हैं। इस देवरक्षित पवित्र तीर्थों के स्थलों पर देवों का वास रहता है, इस भावना से उत्पन्न स्पष्ट लाभ एवं विश्वास के कारण प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने तीर्थों की यात्राओं पर बल दिया। तीर्थ तीन कारणों से पवित्र माने जाते हैं, यथा—स्थल की कुछ आश्चर्यप्रद प्राकृतिक विशेषताओं के कारण, किसी जलीय स्थल की रमणीयता के कारण या किसी तपःपूत ऋषि या मुनि के वासस्थान के कारण। अतः तीर्थ

स्यमन्तक पञ्चक (कुरुक्षेत्र) है। वामनपुराण, अध्याय 22.

1. एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्, मत्स्यपुराण, 108.15.
2. गंगायां भास्करक्षेत्रे मुण्डनं यो न कारयेत्, पद्मपुराण, 6.4.23 तथा शब्दकल्पद्रुम 3.288.

से तात्पर्य है कि वह स्थान या जलयुक्त स्थान जो अपने विलक्षण स्वरूप के कारण पुण्यार्जन की भावना को जागृत करे। ऋग्वेद में **'अम्बितमे नदी'** में सरस्वती कहकर सरस्वती नदी के प्रति श्रेष्ठता की भावना व्यक्त की गई है।

ब्रह्मपुराण में तीर्थों को चार कोटियों में बाँटा गया है—1. दैव, 2. आसुर, 3. आर्ष, 4. मानुष। इन तीर्थों को क्रमशः कृत (सत्य), त्रेता, द्वापर एवं कलियुग से सम्बन्धित माना गया है। भारत के प्राचीनतम साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इन तीर्थों में निगूढ़ पवित्र शक्ति महान् पापों और कलुषों को जीर्ण-शीर्ण कर देती है। बालक हो अथवा वृद्ध, स्त्री हो अथवा पुरुष, राजा हो अथवा रंक, दरिद्र हो अथवा समृद्ध; पापी हो अथवा पुण्यात्मा, तीर्थयात्रा सबको मुक्त कर देती है, वह भी निःस्वार्थ भाव से। तीर्थाटन सभी के लिए सुलभ है। द्विज और शूद्र, संन्यासी और अस्पृश्य, गृहस्थ और ब्रह्मचारी का भेद यहाँ मिट जाता है, छुआछूत का भाव स्थगित हो जाता है, अवशिष्ट रहती है केवल तीर्थयात्रा की पावन अनुभूतिः—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम।
न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नातास्तीर्थे महात्मन्॥[1]

महाभारत में कहा गया है कि मानसिक पवित्रता ही मनुष्य को तीर्थों का फल प्रदान करती है। मछलियाँ पवित्रतम तीर्थों में नित्य स्नान करती है, कपोत मन्दिर प्रांगण में आजीवन वास करते हैं किन्तु प्रवृत्ति के अभाव में क्या वे मुक्त हो पाते होंगे, कदापि नहीं। इस प्रकार जीव केवल भौतिक संयोग के कारण ही तीर्थ का सम्पूर्ण फल नहीं प्राप्त कर सकता है, उसके लिए विशिष्ट मानसिकता की आवश्यकता होती है। स्कन्दपुराण में कहा गया है कि व्यक्ति स्वभावना के अनुरूप ही मन्त्र, तीर्थ, द्विज, देवता और गुरु से लाभ प्राप्त कर सकता है—

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

वस्तुतः तीर्थ उस स्थल को कहते हैं, जहाँ से पार किया जा सके। यह स्थल नदी भी हो सकती है, पर्वत भी, अरण्य भी हो सकता है आश्रम भी। किसी प्राचीन धार्मिक घटना अथवा शीर्ष पुरुष से सम्बद्ध होने के कारण ये स्थल तीर्थ को महत्त्व प्रदान कर देते हैं। महाभारत के अनुसार जिस प्रकार शरीर में आँख, नाक, कान आदि पञ्चेन्द्रियों की प्रधानता है उसी प्रकार देश में भी कुछ स्थल अधिक पवित्र होने के कारण तीर्थ माने गए हैं।

भारत के भौगोलिक पर्यावरण को यथा हिमालय ऋतुओं के सुखद परिवर्तन से समृद्ध करता है, उसी प्रकार भारत के मानचित्र पर उत्तरस्थ प्रयाग राष्ट्र की

1. महाभारत, वनपर्व, 80.51.

जनता को अमृतकणों से तृप्त कर विष की बूंदों से रक्षित करता है। ऋग्वेद में प्रयाग की भौगोलिक स्थिति का स्पष्ट उल्लेख होने से प्रयाग की तीर्थ के रूप में प्राचीनतम धार्मिक महत्ता निर्विवाद है। ऋग्वेद में कहा गया है कि जो लोग सित (श्वेत) असित (कृष्ण) नदियों के संगम पर स्नान करते हैं वे स्वर्ग को आरोहण करते हैं, जो धैर्यशाली वहाँ अपना शरीर त्याग देते हैं वे मोक्ष पाते हैं—

सितासिते सरिते यत्र सङ्गते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते॥[1]

प्रयाग की पृष्ठभूमि—भारतवर्ष विश्व की आत्मा है और प्रयाग भारत का प्राण। इस देश को जीवनदायिनी शक्तियाँ प्रयाग की धरती से ही मिलती रही हैं। आर्य संस्कृति के उत्थान के इतिहास का एक-एक गौरवशाली पृष्ठ अंक में समेटे प्रयाग की पावन धरा की महिमा का न आदि है न अन्त। हिमालय और विन्ध्य के वनों से समृद्ध तथा गंगा-यमुना की धाराओं से सिंचित पृथ्वी की जंघास्वरूप प्रयाग की भूमि ने राष्ट्र का मस्तक ऊँचा रखने में सदा सहयोग दिया है। अनेकानेक ऋषियों की साधना की साक्षी प्रयाग नगरी ने अपने सदाचरण से पंचतत्त्वों—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर की पवित्रता को अक्षुण्ण रखा है। प्रजापति ब्रह्मा की पाँच यज्ञवेदियों में से एक—मध्यवेदी की महत्ता से मंडित प्रयाग को 'प्रजापति क्षेत्र' कहलाने का गौरव मिला है। ब्रह्मा द्वारा प्रकृष्ट याग सम्पन्न किए जाने के कारण इस भौगोलिक क्षेत्र की माटी का एक-एक कण पवित्र है। मध्यदेश की सारभूता इस धरा से ही सृष्टि के विकास निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी। गंगा और यमुना के मध्य से पृथ्वी की जंघा की भांति सुख-सौभाग्य से सुदृढ़ प्रयाग नगरी धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थों से सदा सेवित रही है। सतयुग—त्रेता—द्वापर—कलि चारों युगों का, दया-दान-दक्षिणा आदि षड्‌गुणों का अक्षय्य भंडार मानों इसी नगरी की सीमाओं में समाहित है तभी तो अक्षय क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध प्रयाग की धरा महाप्रलय के पश्चात् भी अक्षय रहती है। सब कुछ आत्मसात् कर लेने वाले विनाशकारी प्रलयकाल में भी अक्षय रहने वाला 'अक्षयवट' इसी अक्षुण्णता का साक्षी है। प्रलय के पश्चात् निःस्तब्ध-शान्त प्रकृति के निःशब्द वातावरण में शेषशायी भगवान् विष्णु इसी नगरस्थ अक्षयवट के श्यामल पत्तों पर बालमुकुन्द के रूप में अंगुलिपान करते हुए अपनी अवशिष्ट निद्रा को पूर्णता देते हैं। उनके जागरण के प्रथम क्षण से ही उनके संकल्पानुसार सृष्टि सृजन का चक्र चलने लगता है। सृजन का सन्देश देने वाली यह नगरी मोक्षदायिनी प्रकृष्ट तीर्थ भी है क्योंकि सित-गंगामय और

---

1. ऋग्वेद, 10.75, खिलमन्त्र।

असित-यमुनामय प्रयाग की पापविनाशिनी सामर्थ्य के विषय में कहा गया है कि अन्य स्थानों पर हुए पापकर्मों का नाश पुण्य क्षेत्र के दर्शन से, पुण्यक्षेत्रों के पापों का विनाश कुम्भकोण तीर्थ में, कुम्भकोण के पापों का प्रक्षालन वाराणसी में, वाराणसी के पापों का शमन प्रयाग में, प्रयाग के पाप यमुना में, यमुना के पाप गंगा में, गंगा के पाप सरस्वती में, सरस्वती के पाप त्रिवेणी में नष्ट होते हैं। सुदीर्घ मानव जीवन में ज्ञान या अज्ञान में घटित पापों से मुक्ति दिलाने के लिए ख्याति प्राप्त यह नगरी दर्शनमात्र से पापक्षयकारी है। समुद्रपर्यन्त इस पृथिवी पर जितने भी तीर्थ हैं, उन सबमें श्रेष्ठ तीर्थराज प्रयाग है, जो समग्र तीर्थों का जन्मदाता तथा समग्र तीर्थों के फलों का पुण्यप्रदाता है। प्रयागराज देवलोक और पितृलोक सम वैभव प्रदाता तथा चतुर्वर्ग—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधक है।

प्रयाग : महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थल

धर्म भारतीय जीवन का सर्वस्व है। प्रयाग अनादिकाल से धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। धर्म-कर्म के द्वारा मनुष्य पूर्वजन्म के पापों का क्षय और जन्मान्तर के लिए पुण्यों का अर्जन करता है जिससे स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। साधारण जनों के लिए साधना कठिन व तपस्या दुष्कर होने से व्रत, तीर्थाटन, दान तथा स्नान का विधान है। इस प्रकार के सत्कर्मों के सम्पादन के लिए प्रयागराज को सर्वोत्तम माना जाता है। सर्वश्रेष्ठ तीर्थराज प्रयाग की महिमा शास्त्रों, धर्मग्रन्थों, पुराणों व परवर्ती साहित्य में प्रचुर मात्रा में वर्णित है।

मत्स्यपुराण के उल्लेखनुसार प्रयाग के परिमाण में ब्रह्मा-विष्णु-महेश त्रिदेवों का वास है, प्रतिष्ठान के उत्तर में गुप्त रूप में ब्रह्मा, वेणीमाधव में विष्णु तथा अक्षयवट में शिव का निवास है। अतएव गन्धर्वों के साथ देवगण, सिद्धगण एवं ऋषिगण प्रयाग मंडल को दुष्ट वातावरण से बचाते रहते हैं। मत्स्यपुराण के ही अन्य उल्लेखानुसार प्रयाग के दर्शन, नाम संकीर्तन तथा मृत्तिका स्पर्श से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है—

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नाम संकीर्तनादपि।
मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात् प्रमुच्यते।।[1]

सत्य ही शास्त्रकारों ने आत्महत्या को पाप कहा है किन्तु प्रयाग में आत्महत्या करके मोक्ष के साधनभूत शरीर के त्याग की बात कही गई है। प्रयाग में मृत्यु का वरण करने वाले पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त होते हैं। यदि व्यक्ति की मृत्यु तीर्थयात्रा के मध्य हो जाए, मरणासन्न व्यक्ति प्रयाग का स्मरण करे

1. मत्स्यपुराण, 204.2.

तो प्रयाग में न रह कर भी वह परमपद का भागी होता है। मत्स्यपुराण में वर्णित है कि जो व्यक्ति अपने देश में, घर में, तीर्थयात्रा में अथवा किसी वन में प्रयाग का स्मरण करता हुआ मृत्यु को प्राप्त करता है, वह ब्रह्मलोक का अधिकारी होता है, पुण्य क्षीण होने पर ब्रह्मलोक से परिभ्रष्ट हो जम्बूद्वीप का अधिपति बनता है। गोघाती, चाण्डाल, शठ, दुष्टचित्त, बालघाती या मूर्ख भी प्रयाग में शरीर तजकर चतुर्भुज रूप में चिरकाल तक बैकुण्ठ में निवास करता है—

गोघ्नो वापि च चाण्डालो दुष्टो वा दुष्टचेतनः
बालघाती तथा विद्वान् म्रियते तत्र वै यदा।
सर्वे चतुर्भुजं भूत्वा वैकुण्ठे वसते चिरम्।।[1]

प्रयाग : भौगोलिक स्थिति

पुराणों में प्रयाग को तीन खण्डों में विभाजित कर उसे त्रिवेदी की संज्ञा दी गई है। इनमें प्रथम 'प्रयाग मण्डल' है जो पाँच योजन विस्तृत है, उसे 'बहिर्वेदी' कहा गया है। द्वितीय 'प्रयाग क्षेत्र' है जिसे 'प्रजापति क्षेत्र' भी कहते हैं। प्रयाग का विस्तार यही 'मध्यवेदी' है। तृतीय त्रिवेणी है जिसे 'अन्तर्वेदी' कहा गया है। प्रयाग मण्डल की विस्तृति पंचयोजन है, इस मण्डल में प्रवेश करने वाला पुरुष प्रत्येक पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है—

पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्।
प्रविष्टमात्रे तद्भूमावश्वमेधः पदे पदे।।[2]

मत्स्यपुराण में एक स्थल पर प्रयाग के क्षेत्रफल की परिभाषा दी गई है। गंगा के बाएँ किनारे पर प्रयागस्थ प्रतिष्ठान इस मण्डल की पूर्वी सीमा निर्धारित करता है। प्रयाग की अवस्थिति गंगा नदी के पूर्व तट पर थी, जो आजकल झूंसी के नाम से प्रसिद्ध है। यमुना तट पर स्थित कम्बल तथा अश्वतर नागों द्वारा पश्चिमी सीमा निर्धारित की गई है। बहुमूलक तथा वासुकिहृद क्रमशः दक्षिणी और उत्तरी सीमाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। यदि उपर्युक्त क्रम से कोण सूत्रों का साधन किया जाए तो प्रयाग का चतुरस्र क्षेत्र ज्ञात होता है—

प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ।
भोगवत्यथ या चैषा वेदिरेषा प्रजापतेः।।[3]

निःसन्देह त्रिवेणी प्रयाग की हृदयस्थली और अधिकतम प्रभावी पुण्यक्षेत्र है। हिमाचल प्रदेश से प्रयाग तक की लम्बी दूरी तय करके प्रयाग में दो

---

1. कूर्मपुराण, अध्याय 37.
2. मत्स्यपुराण, 108.9.
3. मत्स्यपुराण, 109-8.

नदियाँ—गंगा-यमुना आलिंगित हैं, सरस्वती इस मिलन का स्वागत करती है, यही संगमन त्रिवेणी है। अरैल, झूँसी और किले के मध्य संगम त्रिवेणी की अवस्थिति मानी गई है। पुराणों में इसका विस्तार नदी की धारा से 20 धनुष (80 हाथ या 120 फीट) बताया गया है। पुराणों के अनुसार मूलवेणी अक्षयवट के पास, मध्यवेणी संगम के पास तथा अन्त्यवेणी यमुना पार अलर्क (अरैल) के निकट सोमेश्वर महादेव तक विस्तृत है—

आ प्रयागं प्रतिष्ठानाद्यत्पुरा वासुकेर्ह्रदात्,
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागश्च बहुमूलकः।
एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥[1]

इलाहाबाद जनपद 24.7 डिग्री और 25.47 डिग्री अक्षांश तथा 81.9 डिग्री तथा 82 डिग्री देशान्तर के मध्य स्थित है। पूरब से पश्चिम तक लम्बाई 117 किलोमीटर एवं उत्तर से दक्षिण तक की चौड़ाई 101 किलोमीटर है। जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल 7261 वर्ग किलोमीटर तथा घनत्व 523 वर्ग किलोमीटर है। इलाहाबाद नगर 65 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है।[2]

प्राचीनतम उपलब्ध उल्लेखों के अनुसार प्रयाग आरम्भिक शताब्दियों में कोशल राज्य का अंग था। चीनी यात्री फाह्यान ईस्वी सन् 414 में कोशल जनपद के अंग प्रयाग में आए थे। छठी शताब्दी ईसापूर्व में इलाहाबाद जनपद का क्षेत्र वत्स महाजनपद के अन्तर्गत था। इस महाजनपद की प्रसिद्ध नगरी कौशाम्बी प्रयाग की राजधानी थी।[3] प्रयाग जनपद के चोपनी, माण्डा, कोल्डीहवा, महेगढ़ा आदि स्थलों से पाषाणकाल तक की पुरा सामग्री उत्खनन द्वारा प्रकाश में आई है।[4] यहाँ स्थित कौशाम्बी, शृंगवेरपुर, भीटा, कड़ा, झूंसी, भरद्वाज आश्रम, लाक्षागिरि तथा दुर्वासा आश्रम आदि स्थलों के उत्खनन में 1100-700 ईसा पूर्व तक की पुरासामग्री प्राप्त हुई है।[5]

प्रयाग : प्राचीन गाथा

प्रयाग उन पवित्र 52 पीठों में से एक पवित्र स्थल है, जहाँ सती के अंग कट कर गिरे थे। प्रयाग को सती की पीठ गिरने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त एक शक्तिपीठ अलोपशंकरी नाम से प्रसिद्ध है जहाँ सती की हस्तांगुलि गिरी थी। सीता समाहित स्थल सीतामढ़ी यहीं वाल्मीकि आश्रम में

1. मत्स्यपुराण 11.4, महाभारत वनपर्व, 85.86 आदिपर्व, 35.16.
2. तीर्थराज प्रयाग, रतिभान त्रिपाठी, पृ० 42.
3. ई० वी० जोशी, उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजीटीयर, इलाहाबाद तथा इलाहाबाद 1978.
4. वी० डी० मिश्रा, सम आस्पेक्ट ऑव प्री हिस्ट्री, इला० 1977, पृ० 82.
5. देवप्रकाश शर्मा, श्री रामलीला स्मारिका, पथरचट्टी, 19वाँ पुष्प, 1989, पृ० 187.

अवस्थित है। यही सोम, वरुण और प्रज़ापति की जन्मस्थली है।[1] प्रयाग के पवित्र संगम के निर्मल तीर्थ में भक्त प्रह्लाद ने स्नान कर इस धरा को सम्मान दिया था, पश्चात् यमुना तीर्थ में वटेश्वर रुद्र को देख योगशायी माधव का दर्शन किया था।[2] पुरुवंश के प्रतापी राजा पुरुरवा और स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी की प्रेमकथाएँ तात्कालिक राजधानी प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) के ध्वंसावशेषों में आज भी दबी पड़ी हैं। उर्वशी और पुरुरवा के प्रेम का प्रतीक उर्वशी कुण्ड आज भी अपने अलौकिक प्रेम का मूल सन्देश दे रहा है। यशस्वी राजा दुष्यन्त, रूपसी शकुन्तला और पराक्रमी पुत्र भरत के जीवन की अनेक घटनाएँ इसी प्रतिष्ठानपुर में घटित हुई थीं।

सूर्यवंशी राजा राम इसी नगरी को मार्ग बना 14 वर्ष के लिए पत्नी और भाई के साथ वन को चले गए। राम ने बहिन शान्ता और श्रृंगवेरपुरवासी उनके पति श्रृंगी ऋषि के पास यात्रामार्ग में दो दिन का अल्पविराम यहीं किया था। धीवर राजा केवट ने उतराई निश्चित किए बिना राम को नाव पर चढ़ने नहीं दिया था, रामघाट पर उतराई में शुल्कस्वरूप लिया था—भगवान् राम के चरण धोकर चरणामृत पीने का अधिकार। महर्षि भरद्वाज का वैमानिक तकनीकी विश्वविद्यालय यहीं स्थित था जिसमें राम के पवित्र चरण पड़े थे, महर्षि से विचार चर्चा हुई थी और आगे के गन्तव्य मार्ग का निर्देश मिला था।

भगवान् कृष्ण और विप्र सुदामा के गुरु महर्षि सन्दीपनि ऋषि के आश्रम के चिह्न प्रयाग नगर से 25 किलोमीटर की दूरी पर संगेतीघाट पर नौबस्ता गाँव के समीप आज भी विद्यमान हैं। उत्तर भारत की प्राचीनकालिक राजधानी—प्रतिष्ठानपुर, ऐल राजा की बसाई हुई नगरी इलावास (आधुनिक इलाहाबाद) में भरतवंशी नहुष, ययाति, पुरु, भरत आदि महान् राजाओं ने राज्य किया था। गालव मुनि गरुड़ को साथ ले प्रतिष्ठानपुर में राजा ययाति के समीप आए थे। राजा ने अपनी माधवी नामक पुत्री मुनि को पत्नी रूप में दी थी।[3] समुद्रगुप्त के प्रतिष्ठान दुर्ग के अवशेष खनन में आज भी उपलब्ध होते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर ने प्रयाग का माहात्म्य जान कर गंगा तट पर दस अश्वमेध यज्ञ सम्पादित किए थे जिनकी स्मृति दशाश्वमेध घाट आज भी कराता है।[4] महाभारत में वर्णित लाक्षागृह, जो छलपूर्वक पाण्डवों की हत्या के लिए बनाया

1. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 55.
2. महाभारत, वनपर्व, अध्याय 95.4-5.
3. महाभारत, उद्योगपर्व, अध्याय 114.
4. महाभारत, वनपर्व, अध्याय 95.4-5.

गया था, प्रयाग जनपद की सीमा में ही स्थित है।[1] प्राचीन किंवदन्तियों के अनुसार महाभारत युद्ध के युगों पश्चात् हस्तिनापुर बाढ़ में बह गया, कुरुवंश में जो जीवित बचे, वे प्रयाग जनपद—कौशाम्बी में आकर बस गए। महाराजा उदयन के वत्सराज की राजधानी कौशाम्बी, जहाँ भगवान् बुद्ध ने स्वयं चातुर्मास घोषिताराम में व्यतीत किया था, प्रयाग का ही भूखण्ड है। यहीं सम्राट् हर्ष ने अपनी भौतिक सम्पत्ति का अपूर्व 'सर्वस्व दान' करके सर्वत्यागी राजा हरिश्चन्द्र के आदर्श की पुनरावृत्ति की थी। सम्राट् अशोक ने धर्मचक्र प्रवर्तन हेतु अपनी एक लाट इसी नगर में स्थापित की थी, जो आज भी सम्राट् अकबर द्वारा गंगा-यमुना के संगम तट पर स्थित किले में स्थापित है। बौद्धकाल का प्रसिद्ध स्थल सहजाति (भीटा) जो गुप्तवंश की राजधानी थी, इसी जनपद में स्थित हो कर स्वर्णयुग की कथा कह रहा है। बौद्ध गुरु के विश्वासघात के पश्चात्ताप स्वरूप यहीं संगमतट पर वैदिक विद्वान् कुमारिल भट्ट ने आत्मदाह का आयोजन कर लिया था। भगवान् कृष्ण के प्रतिरूप श्री वल्लभाचार्य ने पृथिवी की प्रदक्षिणा करते हुए संवत् 1548 में अरैल (अलर्कपुरी) में प्रयागवास काल में मायावादियों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था।

प्रयाग : सर्वधर्मभावना

जातीय विभेद से ऊपर उठ कर इस नगरी ने हिन्दू सन्तों, सिक्ख गुरुओं, जैन श्रमणों और बौद्ध भिक्षुओं को समान स्नेह से अपने अंक में समेटा है। भगवान् आदिनाथ ने इसी नगर के प्रसिद्ध अक्षयवट के नीचे केशलुञ्चन आदि कठोर व्रत कर, शरीर परित्याग करने के पश्चात् कैवल्यज्ञान प्राप्त किया था। चैतन्य महाप्रभु की भगवद् भक्ति से यह नगर पवित्र हुआ है। भगवान् शंकराचार्य के उपदेशों ने इसका गौरव बढ़ाया है। गुरु नानक, गुरु गोविन्द सिंह, महर्षि दयानन्द, सन्त कबीर और तुलसीदास की चरणरज इस नगरी ने अपने मस्तक पर धारी है। शृंगी ऋषि की साधना और तपस्या से इसने अपने वातावरण—जल, वायु, मिट्टी को पवित्र किया है। लगभग सवा तीन सौ साल पहले गुरु तेग बहादुर ने प्रयाग वास कर वर्तमान कल्याणी मन्दिर के पास प्रवहमान गंगा में स्नान कर गुरु माता को तेजस्वी पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया था। इस नगरी ने सन् 1499 में बंगाल के प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य महाप्रभु चैतन्य की लीलाओं का आनन्द लिया है, वैष्णवाचार्य रामानन्द के प्रवचन सुने हैं, कृष्ण सम्प्रदायी, पुष्टिमार्गी वल्लभाचार्य के उपदेश गुने हैं, कड़े के सन्त बाबा मलूकदास (सन् 1574-1682) के भजन गाए हैं, श्रीधर—मुरलीधर की

1. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 142.

राग-रागिनियों का रस पिया है, श्रृंगवेरपुर के तोषनिधि कवि के 'नख-शिख' वर्णन का आनन्द लिया है, मुंशी सदासुखलाल के 'सुखसागर' से श्रीमद्भागवत की कथाओं का अमृतास्वादन किया है, सन्त प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के ऊर्जावान् चरित्र से पवित्रता को ग्रहण किया है।[1]

प्रयाग बौद्धों हेतु भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण रहा है। प्रयाग नगरी में प्रत्येक शुक्लपक्ष की द्वितीया तथा पूर्णिमा को बौद्धभिक्षु गंगातट पर एकत्र होकर उस अवधि में किए हुए अपने पापों या दोषों का प्रायश्चित्त करते थे। कालान्तर में यह प्रथा गृहस्थों में फैली जो यथाशक्ति पुण्यदान करने लगे। सम्राट् हर्ष के समय यहं प्रायश्चित्त हर छठे वर्ष हुआ करता था जिसे लोग 'आनन्द की खेती' कहते थे। महाराज हर्ष ने इसका अनुष्ठान ह्वेनसांग के सामने भी (7वीं शती) किया था।[2] सम्राट् हर्षवर्धन ने इसी पवित्र भूमि को पवित्र अनुष्ठेय कर्मों के लिए चुना था और इस प्रकार विश्वबन्धुत्व के प्रतीक कुम्भ मेले का आकर्षण आर्यावर्त में चतुर्दिक फैला था। धर्मप्रधान इस तीर्थ के प्रभाव से मुगल सम्राट् अकबर भी अछूता नहीं रह सका, उसने 'दीनइलाही' धर्म का आरम्भ इसी तीर्थ से किया था, फलतः इस तीर्थ का नामकरण इलाहाबाद हुआ। एक उल्लेख्य तथ्य यह है कि प्रयाग के संस्कृत पंडितों ने अकबर बादशाह के एक हज़ार नाम संस्कृत भाषा में लिख कर उन्हें भेंट किए थे। मुगलकाल में सूफी सम्प्रदाय के शेखों ने अनेक दायरे और सराय स्थापित किए। अबुल फजल, अब्दुल कादिर, सुजान राय खत्री आदि के उल्लेख प्रयाग की गंगा-यमुनी संस्कृति की कथा कहते हैं।

प्रयागः ऐतिहासिक भूमि

इस नगर ने युगों के बदलते परिवेश को देखा है, इतिहास के उत्थान-पतन को देखा है। राष्ट्र की ऐतिहासिक गरिमा का साक्षी है यह नगर, प्रतिष्ठानपुर चन्द्रवंशी राजाओं की राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा तो कौशाम्बी भी चन्द्रवंशी राजा कोशम्ब की कृपा से राजधानी बनकर अभिभूत हुआ। उसके बाद तो सम्राट् चन्द्रगुप्त, सम्राट् अजातशत्रु, सम्राट् बिन्दुसार, सम्राट् अशोक अदि अनेक महान् मगध सम्राटों के राज्यकाल में प्रयाग उनकी राज्यसीमा का एक अंग बना। सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपने चक्रवर्तित्व शासनकाल में हूणों को परास्त कर अशोक द्वारा प्रयाग जनपद में स्थापित स्तम्भ पर विजयवर्णन अंकित करवाया था। शक्तिशाली थानेश्वर सम्राट् श्री हर्ष का राज्य विस्तार तो प्रयाग तक था ही, दानविस्तार भी प्रयाग के प्रसिद्ध कुम्भ मेले में प्रदर्शित होता था। पाण्डवों

1. प्रयागप्रदीप, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव, 1937, पृ॰ 30.
2. प्रयागप्रदीप, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव, 1937, पृ॰ 114.

को जलाकर मार डालने की योजना से दुर्योधन ने प्रसिद्ध लाक्षागृह का निर्माण इसी अंचल में कराया था। प्रागैतिहासिक काल में राजा इला द्वारा स्थापित तथा न्यायप्रिय शासक अल़र्क द्वारा स्थापित अलर्कपुरी (अरैल) में पाण्डवों ने भी अज्ञातवास के कुछ दिवस व्यतीत किए थे।

आदि शंकराचार्य की धार्मिक दिग्विजय पताका प्रयाग नगरी में संगम तट से ही फहरानी शुरू हुई थी। प्रयाग आगमन के द्वितीय अवसर पर संगम स्थित शास्त्राचार्य सभा मण्डप में उनका आचार्य मण्डन मिश्र के साथ प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था।[1] संगम तट पर आत्मदाह के लिए प्रस्तुत नैनीवासी आचार्य कुमारिल भट्ट से अन्तिम क्षणों में आशीर्वाद प्राप्त कर शास्त्रार्थ विजयी आचार्य शंकर निकल पड़े थे आचार्य मण्डन मिश्र की सहायता से वैदिक धर्म को सुदृढ़ करने का संकल्प पूर्ण करने। सम्राट् पुरुरवा तथा अर्जुन के वंशज सम्राट् उदयन द्वारा स्थापित तथा मध्य प्रदेश के वत्स शासकों द्वारा शासित कुशाम्ब राज की नगरी कौशाम्बी लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की कृपादृष्टि से सम्पन्न थी। गौतम बुद्ध ने ईसा से 450 वर्ष पूर्व कौशाम्बी के संघाराम में वास करके इस धरा को अपने प्रवचनों से धन्य किया था। महावीर स्वामी ने यहीं कुछ काल तक प्रवास कर प्रजा को 'अहिंसा परमो धर्मः' का पाठ पढ़ाया था। चैतन्य महाप्रभु और उनके शिष्य गौड़ीय सम्प्रदायी रूपगोस्वामी ने दशाशवमेध घाट पर वल्लभ भट्ट के आश्रम में दस दिन विश्राम कर कृष्णभक्ति काव्य यहाँ रचे और गाए थे।[2] प्रसिद्ध सन्त रामानुजाचार्य ने अपने 84 शिष्यों के साथ प्रयाग-प्रवास किया था। मराठी सन्त तुकाराम के प्रयाग प्रवास में उनका उपदेश सुनने को भारी भीड़ एकत्र होती थी।[3] सन्त पलटूदास ने भी जीवन के अनेक वर्ष प्रयाग में व्यतीत किए थे।[4] प्रथम एवं अन्तिम सिख गुरु-गुरु नानक तथा गुरु गोविन्द सिंह दोनों ने ही प्रयाग यात्रा एवं प्रवास काल व्यतीत किया था।

लंका विजय कर लौटते हुए भगवान् राम ने 'वत्सदेश' कह कर माँ सीता को प्रयाग और सफल मनोकामना वाले अक्षय वट का दर्शन कराया था। सोम, वरुण और प्रजापति देवों की जन्मस्थली प्रयाग वास्तव में गंगाजल सदृश अमृत से पवित्र धराधाम और प्रजापति के समान सबका हित करने वाला है। ऋग्वेद की ऋचाओं का प्रणयन सिन्धु-सरस्वती नदी के तट पर हुआ था किन्तु ऋषियों ने उनका क्रियान्वयन सरस्वती नदी की सम्मानपूर्ण कल्पना के साथ गंगा के तट

1. हिन्दी के बहाने, हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० 89.
2. चैतन्य चरितामृत, पृ. 322.
3. इलाहाबाद-प्रौस्पेक्ट एण्ड रिट्रोस्पैक्ट, विशम्भर नाथ पाण्डेय, पृ० 218.
4. सारवचन संग्रह, पृ० 86.

पर कर प्रयाग नाम को सार्थक किया था।

प्रयाग : प्राचीन राजनैतिक केन्द्र—प्रयाग नगर ने ईसा पूर्व काल से ही राजनीति की गहरी चालें देखीं-समझीं। गंगा-यमुना दोआब पर प्रभुत्व पाने हेतु अनेक शक्तियाँ संघर्षरत रहीं, नदी तट पर स्थित होने के कारण सामरिक दृष्टि से यह क्षेत्र विशिष्ट रहा। ईसा से पूर्व चन्द्रवंशी ऐल राजा पुरुरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुरी के अन्तर्गत प्रयाग को रखा गया। प्रयाग से लगभग 30 मील पश्चिम यमुना के दाहिने किनारे पर चन्द्रवंशी राजा कुशाम्ब ने अपने नाम पर कौशाम्बी नगरी बसाई, अति प्राचीन काल में प्रयाग इसी कौशाम्बी राज्य के अन्तर्गत था। ईसा पूर्व चौथी शती में चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के शासक हुए, सम्पूर्ण उत्तर भारत को अपने अधीन कर उन्होंने वत्सदेश प्रयाग को भी अपने शासन में लिया। ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में मौर्यवंशी सम्राट् बिन्दुसार ने अपने पुत्र और चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र सम्राट् अशोक को पश्चिमोत्तर राज्यों का क्षत्रप नियुक्त किया। अशोक ने कौशाम्बी में अपना एक पत्थर का कीर्ति स्तम्भ खड़ा किया (यह स्तम्भ इसी काल में प्रयाग लाया गया, आज यह शिरखंडित दशा में मिन्टो पार्क में अवस्थित है)। ईसा पश्चात् तृतीय शताब्दी में प्रचंड प्रतापी समुद्रगुप्त के आधिपत्य में प्रयाग की व्यवस्था रही। ईसा पश्चात् चौथी शती में चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में भी प्रयाग मगध के शासन के अन्तर्गत रहा, उस समय चीनी यात्री फाह्यान कौशाम्बी राज्य में आए थे। मगध के शासकों की शक्ति क्षीण होने पर मध्य भारत के राजा यशोवर्मन् ने छठी शताब्दी में पश्चिमोत्तर राज्यों पर अधिकार किया और प्रयाग को भी उसमें सम्मिलित किया। यशोवर्मन् की मृत्यु के पश्चात् सातवीं शती में उनके पुत्र को थाणेश्वरराज हर्षवर्धन ने परास्त करके कान्यकुब्ज (कन्नौज) को अपनी राजधानी बनाया, प्रयाग कन्नौज राज्य का अंग हुआ। सातवीं शती के उत्तरार्ध में कन्नौज सम्राट् हर्षवर्धन के मरणोपरान्त प्रयाग आठवीं शताब्दी तक गौड़ के पाल नरेशों गोपाल, त्रिलोचनपाल और धर्मपाल के अधीन रहा। नवीं शती में परिहार राजपूतों के राज्य करने पर यह नगर ग्यारहवीं शताब्दी तक परिहार राजाओं की शासन व्यवस्था में रहा। ग्यारहवीं शती समाप्त होते-होते गहरवार नरेशों के शासन में आने पर उनकी राजधानी कड़ा का एक नगर बना। मुगलों के भारत में आने तक प्रयाग अन्तिम गहरवार नरेश राजा जयचन्द्र की कन्नौज राज्य की सम्पत्ति बना रहा।

प्रयाग : मध्यकालीन इतिहास—बाहरवीं शताब्दी में शहाबुद्दीन गोरी ने कड़ा का राज्य जयचन्द्र से छीन लिया, प्रयाग पर पहला विधर्मी शासन स्थापित हुआ। उसके बाद तो कुतुबुद्दीन ऐबक, जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी

आदि कड़े के मालिक और देश के बादशाह हुए। चौदहवीं शताब्दी में मोहम्मद तुगलक की बादशाहत में इसे जौनपुर की सूबेदारी में मिला दिया गया। पन्द्रहवीं शताब्दी में सिकन्दर लोदी के शासन काल में हुमायूँ को पुनः कड़े की सूबेदारी में प्रयाग भी दिया गया। सोलहवीं शती में अकबर कड़ा होता हुआ प्रयाग आया, यहाँ गंगा तट पर सुरक्षित स्थान देखकर 14 नवम्बर सन् 1583 में भारतीय और ईरानी वास्तुकला को प्रदर्शित करने वाले किले की नींव रखवाई जिससे उत्तर भारत में बगावत करनेवाले बागी सूबेदारों पर नजर रखी जा सके। ऐसी भी मान्यता है कि यह किला सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित था, अकबर ने केवल उसका जीर्णोद्धार कराया।

कहा जाता है कि अकबर ने अपनी गंगा यमुनी नीति के अन्तर्गत अपने इलाही धर्म के अनुसार हिन्दू और मुसलमान दोनों को खुश करने के लिए दुराग्रहपूर्वक किले के चारों ओर बसे नगर का नाम रखा 'इलाहाबास'। वह प्रायः यहाँ आकर ठहरता और चार भागों में बँटे किले में आमोद-प्रमोद में समय व्यतीत करता। सन् 1580 में अकबर ने जौनपुर और कड़ा की सूबेदारी तोड़कर प्रयाग को अपने बारह सूबों (प्रान्तों) में स्वतंत्र स्थान दिया। उसने इस नगर को सूबा-ए-इलाहाबाद का प्रधान प्रधान प्रतिष्ठान बना दिया। आइने अकबरी और तबकाते अकबरी द्वारा इस तथ्य की पुष्टि होती है।[1] सोलहवीं सदी में सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के कारण पहले अकबर का पुत्र दानियाल और फिर पुत्र जहाँगीर (सन् 1599-1605) यहाँ का सूबेदार रहा। जहाँगीर ने अपने पुत्र परवेज़ को इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त किया। जहाँगीर के शासनकाल में उसके एक बेटे खुसरो ने तख्त छीनने की कोशिश की, पहले तो बादशाह ने उसे अंधा कर के इलाहाबाद में कैद किया, पर अपने भाई शाहजहाँ के हाथों वह मारा गया और खुसरो बाग में मुगलकालीन नक्काशी के नायाब नमूने वाले मकबरे में उसकी समाधि बनी। यहाँ बाग में खुसरो उसकी माँ और बहन सुल्तानुन्निसा की कब्रे हैं। ये मकबरे काव्य और कला के सुन्दर प्रतीक हैं। फारसी भाषा में जीवन की नश्वरता पर जो कविता यहाँ अंकित है वह हृदय का अन्दर तक स्पर्श करती है। सत्रहवीं शती में ही शाहजहाँ गद्दी पर बैठा और इलाहाबास के स्थान पर 'इलाहाबाद' नाम प्रचलित हो गया। सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध में औरंगज़ेब अपने पिता शाहजहाँ को कैद करके सिंहासन पर बैठा तो प्रयाग के किले पर (औरंगज़ेब के विरोधी और दारा के मित्र) भाई शुज़ा का अधिकार था। औरंगज़ेब की सेना ने शुज़ा पर हमला किया, इस युद्ध में शुज़ा

---

1. तीर्थराज प्रयाग का माहात्म्य, डॉ॰ गिरिजा शंकर शास्त्री, पृ॰ 235; शतवार्षिकी (2012-2013) विज्ञान परिषद् प्रयाग।

की हार हुई, किले पर औरंगज़ेब की ओर से सूबेदार नियुक्त हुआ।

इतिहास सदा एक सा नहीं रहा, अठारहवीं सदी आते-आते महाराष्ट्र में शिवाजी अपनी विलक्षण सूझ-बूझ से औरंगज़ेब की कैद से निकलकर (सन् 1666) प्रयाग आए और पुत्र संभाजी को कवि केशवभट्ट (कुलिश नाम्ना प्रसिद्ध) कलश के अभिभावकत्व में छोड़ गए। उस समय यहाँ महाराष्ट्र के पेशवाओं का राज्य था। नागवासुकी मन्दिर की वर्तमान संरचना मराठाकालीन ही है। बुन्देला राजा वीर छत्रसाल की भी अठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में यमुना पार प्रयाग तक बादशाहत रही, प्रयाग के किले में रहने वाले मोहम्मद खाँ से उन्होंने 1725 ई०—1730 ई० तक लगातार युद्ध भी किया। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दिल्ली के बादशाह शाहआलम ने शुजाउद्दौला को प्रयाग में मनसबदारी दी। उन्होंने सन् 1764 में बक्सर की लड़ाई में अंग्रेज़ों से हारकर संधि की और 50 लाख रुपये में अंग्रेज़ों से प्रयाग का सौदा करके उसे खरीद लिया। शुज़ाउद्दौला के मरने पर उसके पुत्र आसफुद्दौला से अंग्रेज़ 76 लाख रुपये सालाना वसूलने लगे। यह रकम देना कठिन था, अतः सन् 1801 में अंग्रेज़ों के साथ लखनऊ में की गई संधि के अनुसार प्रयाग का जिला और किला दोनों सदा के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप दिए गए और गंगा-यमुना के दोआब—प्रयाग पर मुसलमानी शासन का अन्त हुआ।

प्रयाग में अंग्रेज़ी राज—महारानी विक्टोरिया का 1 नवम्बर सन् 1858 का प्रसिद्ध घोषणा पत्र लॉर्ड कैनिंग द्वारा प्रयाग में मिन्टोपार्क (मदन मोहन मालवीय पार्क) में पढ़ा गया।[1] अंग्रेज़ी शासन में इलाहाबाद जिले के पहले गवर्नर थे मिस्टर अहमूटी, जिनके नाम से मुट्ठीगंज बसा है। अंग्रेज़ों ने यहाँ सभी बड़े सरकारी कार्यालय, उच्च न्यायालय आदि खोलकर इसे प्रान्त की राजधानी बनाया। 1857 का गदर होने पर अंग्रेज़ राजधानी उठाकर लखनऊ ले गए। महँगाव के मौलवी लियाकत अलीं का स्वतन्त्रता के संघर्ष में अविस्मरणीय योगदान रहा। लगभग सवा साल के उपद्रव के अन्तराल में अंग्रेज़ सरकार ने प्रयाग में बलवाइयों का बुरी तरह दमन किया। उपद्रव शान्त होने पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से शासन निकलकर महारानी विक्टोरिया के हाथ में चला गया।

प्रयाग में नवजागरण—स्वतन्त्रता संग्राम की पृष्ठभूमि पर महात्मा गाँधी और पंडित मोतीलाल नेहरू के आगमन से सम्पूर्ण देश के समान ही इलाहाबाद के आन्दोलन को भी एक निश्चित दिशा मिली। पंडित जवाहर लाल नेहरू के राजनीतिक जीवन को अपना लेने के साथ ही उनका निवास स्थान आनन्द भवन

1. इलाहाबाद डाक टिकट प्रदर्शनी विशेषांक 09-10 जनवरी, 2015, इलाहाबाद।

तथा कार्यालय स्वराज भवन स्वतन्त्रता आन्दोलन के मन्त्रणा केन्द्र हुए और इलाहाबाद नवजागरण के लिए तथा स्वराजभवन एक राजनीतिक गढ़ बन गया। सरदार वल्लभ भाई पटेल, श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा, पं० मदन मोहन मालवीय, श्री लाल बहादुर शास्त्री और भी न जाने कितने प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध स्वतन्त्रता के दीवाने नेताओं का जमघट यहाँ लगने लगा। विश्वविद्यालय की युवा शक्ति मानों गाँधी और नेहरू को आदर्श मान उनके पीछे चल पड़ी। यह तो हुई नरम दल की बात। गर्म दल के जोशीले नेताओं ने भी खूब उपद्रव किये। चंद्र शेखर आज़ाद यहीं राजकुमार अल्फ्रेड ड्यूक ऑफ एडिनबरा के प्रयाग आगमन की स्मृति में निर्मित अल्फ्रेड पार्क में छिपे, उनकी मुखबिरी करने वाले उन्हीं के दल के एक सदस्य से सूचना पाकर अंग्रेज़ों ने उन्हें 27 फरवरी, सन् 1931 को घेर लिया। आज़ाद ने अंग्रेजों से लोहा लेते हुए ब्रिटिश पुलिस अध्यक्ष नॉट बाबर और पुलिस अधिकारी विशेश्वर सिंह को घायल कर कई पुलिसजनों को मार गिराया और अन्ततः खुद को गोली मारकर आजीवन आज़ाद रहने की सौगन्ध पूरी की। शहीद पद्मधर की कुर्बानी को समेटे प्रयाग राष्ट्रवाद का केन्द्र बिन्दु रहा है। आज उनकी मृत्युभूमि पर उनकी मूर्ति स्थापित है।

सन् 1919 के रोलेट एक्ट को अंग्रेज़ सरकार द्वारा वापस न लेने पर जून सन् 1920 में इलाहाबाद में एक सर्वदलीय सम्मेलन में स्कूल, कॉलेज और अदालत के बहिष्कार की घोषणा हुई। इस प्रकार प्रथम असहयोग आन्दोलन की रूपरेखा इलाहाबाद से प्रारम्भ हुई।

महात्मा गांधी के प्रयत्नों और जनता की अदम्य इच्छा से सन् 1947 की 15 अगस्त आज़ादी का शुभ संदेश लेकर आई, हजारों वर्षों की दासता से भारतवासियों को मुक्ति मिली। पंडित जवाहर लाल नेहरू के रूप में देश को पहला प्रधानमन्त्री इलाहाबाद ने ही दिया। उसके बाद तो देश-प्रदेश के पटल पर अनेक प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, मुख्यमंत्री आदि इलाहाबाद की भूमि पर पले, बढ़े। अनेक आज भी पद प्रतिष्ठित रह कर नगर की शोभा वृद्धि कर रहे हैं।

प्रयाग : शिक्षा भूमि

शिक्षा के क्षेत्र में आदि काल से ही प्रयाग स्थित कुलपति भरद्वाज का आश्रम प्रसिद्ध रहा है जिसमें दस हजार विद्यार्थी तकनीकी शिक्षा प्राप्त करते थे। देश के कोने-कोने से ब्रह्मचारी इस आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने आते थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1887, 17 नवम्बर में होने से इलाहाबाद विद्या (और राष्ट्रवाद) के क्षेत्र में अग्रणी हो गया। म्योर सेन्ट्रल कॉलेज के नाम से प्रसिद्ध यह शिक्षण संस्थान आरम्भ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से

सम्बद्ध था। सर एल्फ्रेड लॉयल, जो तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर और शिक्षा प्रेमी थे, पहले वाइस चांसलर बने। उच्चस्तर की शिक्षा-दीक्षा का विद्यालय होने के कारण इसे 'पूरब का ऑक्सफोर्ड' कहा जाता था। प्रशासनिक सेवाओं में इस विश्वविद्यालय में अध्ययनरत अनेकों विद्यार्थियों का चयन होता था। 14 जुलाई सन् 2005 में इस विश्वविद्यालय को केन्द्रीय विश्वविद्यालय का स्तर दिया गया है। इससे सम्बद्ध ग्यारह महाविद्यालय हैं जिनमें युवक-युवतियों की सम्मिलित तथा पृथक् रूप से शिक्षा दान का प्रबन्ध है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाली विभूतियों में राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मन्त्रिगण, न्यायमूर्ति, साहित्यिकों, वैज्ञानिकों की सूची लम्बी है। इस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध स्वरूप रानी नेहरू मेडिकल कालेज था, जो आज स्वतन्त्र रूप से (राज्य सरकार के निरीक्षण में) कार्य कर रहा है। इसके अन्तर्गत मोती लाल नेहरू रीज़नल इंजीनियरिंग कॉलेज भी था जिसे पृथक् कर डीम्ड यूनिवर्सिटी बना दिया गया है। इन्फार्मेशन टेक्नॉलॉजी की शिक्षा के लिए ट्रिपल आई॰ टी॰ तथा प्राइवेट इंजीनियरिंग कॉलेज हैं। वीमेन्स् वोकेशनल ट्रेनिंग कॉलेज, टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, कारपेंटर्स स्कूल, बालक-बालिकाओं के पृथक्-पृथक् पॉलिटेक्निक, मदरसे, संस्कृत पाठशालाएँ, गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ आदि ने इस नगर को शिक्षा के क्षेत्र में विशेष ख्याति दिलाई है। हिन्दी प्रचार-प्रसार में कटिबद्ध हिन्दी साहित्य सम्मेलन हिन्दी भाषा और साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी अकादमी, भारती भवन, सेण्ट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, आर्य समाज चौक पुस्कालय, आर्य समाज कटरा पुस्तकालय तथा विश्वविद्यालय पुस्तकालयों की अवस्थिति के कारण यह नगर पर्याप्त स्तरीय साहित्य से समृद्ध है। यूनानी तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा विद्यालय, नैनी इंजीनियरिंग कॉलेज भी विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक शिक्षाएँ प्रदान करने में व्यस्त हैं। संगीत शिक्षा के क्षेत्र में प्रयाग संगीत समिति की समता नहीं, जो बालक-बालिकाओं को प्रयाग में तो शिक्षित पटु करती है, देश-विदेश में भी इसकी शाखाओं में देशी-विदेशी विद्यार्थी भारतीय संगीत की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। सन् 1914 में सर सुन्दर लाल, डॉक्टर गंगा नाथ झा आदि विद्वानों के प्रयत्नों से स्वामी सत्यप्रकाशानन्द सरस्वती के सम्मान में विज्ञान परिषद् की स्थापना हुई। इस संस्था का उद्देश्य विज्ञान सम्बन्धी साहित्य का हिन्दी में प्रकाशन है। यहाँ से आज भी 'विज्ञान' नामक हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन होता है। क्रीडा सम्बन्धी शिक्षा और अभ्यास के लिए सन् 1872 में मेयो हॉल स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स् की स्थापना हुई, जहाँ सभी आधुनिक खेलों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध है। विश्व में चमत्कारपूर्ण परिणाम के लिए प्रसिद्ध योग शास्त्र सम्बन्धी

प्रशिक्षण और ध्यान की विधि सिखाने के लिए झूंसी में योगी सत्यम् द्वारा स्थापित योग अनुसन्धान केन्द्र जनसाधारण तक योग की विशिष्टताओं का सम्प्रेषण कर रहा है। हिन्दी और उर्दू भाषा की श्रीवृद्धि के लिए स्थापित हिन्दुस्तानी एकेडमी अपनी इस प्रकार की गतिविधियों से समाज को साहित्यिक योगदान दे रही है। देश का चतुर्थ प्राचीनतम उच्च न्यायालय आगरा (सन् 1866) से स्थानान्तरित होकर सन् 1869 में इलाहाबाद आया और यहाँ विधिक शिक्षा के प्रचार और व्यवसाय की नींव पड़ी।

आज प्रयाग/इलाहाबाद प्रदेश की राजधानी नहीं है अतः राजनैतिक दृष्टि से इसे वह गौरव भी हस्तगत नहीं है जो भगवान् बुद्ध के काल से ही बहुत पूर्व से मिलता रहा है। तथापि अनेक राजकीय कार्यालयों के मुख्य भवन, विश्वविद्यालय की देशव्यापी छवि, संगम की पवित्र अक्षुण्णता और कुम्भ पर्व की विराट् स्वतः स्फूर्त ऊर्जा ने इस नगरी को धार्मिक राजधानी का स्तर अवश्य प्रदान किया है। युग बीते और युग बीतेंगे किन्तु प्रयाग में पुण्य का पावन यज्ञ सदा प्रवर्तमान रहेगा, यही प्रयाग का प्रयागत्व है।

प्रयाग : त्रिवेणी महात्म्य

गंगा नदी के दो किनारे, यमुना नदी के दो किनारे तथा संगम के दो किनारों के तट पर बसा होने से प्रयाग षट्कूल समृद्ध है। बीस धनुष लम्बे नीले श्वेत जल के संगम को त्रिवेणी कहते हैं—धनुर्विंशतिः विस्तीर्णः सितनीलाम्बुसङ्गमे (पद्मपुराण)। प्रयाग के त्रिवेणी संगम के समतल स्थल पर ब्रह्मा ने सकल देवों, ऋषियों के समक्ष तुला पर तीर्थों की गुरुता का माप किया था। तुला के एक पलड़े पर प्रयाग, दूसरे पलड़े पर सप्तपुरियों, सात समुद्रों, सात द्वीपों, सप्तनदी, सप्तखण्डों, तीनों भुवनों को रखा, तब दोनों पलड़े बराबर हुए। इस विस्मयात्मक घटना का रहस्य पूछने पर शेषनाग ने ब्रह्मा को बताया—प्रयाग विराट् पुरुष का मस्तक है, मस्तक स्वतः श्रेष्ठांग है। प्रयाग को यह महत्ता त्रिवेणी माहात्म्य के फलस्वरूप मिली है। यहाँ की श्वेत और श्याम नदियों का जल देवताओं को भी दुर्लभ है। उस जल से स्नान करने वाले सहज स्वर्ग प्राप्त करते हैं—

सितासिते यत्र तरंगचामरे नद्यौ विभाते मुनिभानुकन्यके।
नीलातपत्रं वट एव साक्षात् स तीर्थराजो जयति प्रयागः।।

शरीर की अगणित नाड़ियों में से तीन नाड़ियाँ प्रमुख हैं—इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना। इडा बाएँ नासारन्ध्र से तथा पिंगला दाएँ नासारन्ध्र से प्रवेश करके मध्य में स्थित सुषम्ना के साथ ब्रह्मरन्ध्र में मिल कर एक हो जाती है। योगदर्शन में शीतल-उज्ज्वलगंगा को इडा, उष्ण-नील यमुना को पिंगला तथा

शीतोष्ण-रक्तवर्णा सरस्वती को सुषुम्ना कहा जाता है। आत्मा की इस त्रिकुटी में स्नान करके जिस प्रकार योगी मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार त्रिवेणी में स्नान करने वाला मुक्त हो जता है—

इडा भोगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।
इडा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती॥[1]

ओ३म् के तीन अक्षरों में से 'अ' सरस्वती का प्रतीक है, सरस्वती शारदा होने से ऐश्वर्य और वीर्य की प्रधानता से प्रद्युम्न शक्ति सम्पन्न है। उ यमुना का प्रतीक है, यमुना सूर्यपुत्री होने से तेज की प्रधानता से युक्त अनिरुद्ध शक्ति सम्पन्न है। म गंगा का प्रतीक है, गंगा ज्ञान की प्रधानता से युक्त संकर्षण शक्ति सम्पन्न है। इस प्रकार ब्रह्म के प्रतीक ओ३म् के समान पवित्र त्रिवेणी मोक्षदायिनी है। योग साधना में कुण्डलिनी को जागृत कर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचना, वहाँ शून्य में इडा-पिंगला-सुषुम्ना का सम्मिलन योगी की अमरत्व की स्थिति है। उसी अमरत्व साधना के समानान्तर प्रयाग में तीन नदियों की कल्पना को चरितार्थ किया गया है।

गंगा के उद्गम के विषय में विष्णु पुराण में कहा गया है कि गंगा विष्णु के बाएँ चरण के अंगूठे के नख से स्रोतरूप से निकली हैं, उस गंगा को ध्रुव अपने मस्तक पर दिन-रात धारण करते हैं—

वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठ नखस्रोतो विनिर्गताम्।
विष्णोर्विभक्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः॥[2]

देवप्रयाग में अलकनन्दा तथा भागीरथी के संगम के पश्चात् जो मुख्य धारा बनती है उसे गंगा के नाम से जाना जाता है। गंगा कुल लम्बाई (2510 किलोमीटर) और जलग्रहण क्षेत्र दोनों दृष्टियों से विश्व की विशालतम नदियों में सें एक है। अपने विशिष्ट गुणों के कारण माँ के रूप में पूजित यह नदी भारत की विशालतम जनसंख्या का पोषण करती है। औषधि रूप गंगाजल में रेडॉन और आयोडीन की उपस्थिति से हानिकारक बैक्टीरिया के मरने की प्रबल सम्भावना रहती है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार गंगाजल में बैक्टीरियो-फेज (जीवाणुभोजी) नामक अतिसूक्ष्म जीवाणु होते हैं जो बैक्टीरिया को नष्ट कर देते हैं। परन्तु अब जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि गंगा जल को बिना उपचरित किए इसकी स्वच्छता को बनाए रखना कठिन कार्य है।[3]

---

1. भारत को प्रयाग की देन, श्री हरेन्द्र प्रताप सिन्हा, पृ० 27.
2. विष्णुपुराण, 2.8.111.
3. राष्ट्रीय नदी गंगा, डॉ० दीनानाथ तिवारी, पृ० 34, शताब्दी वर्ष स्मारिका (2012-2013) विज्ञान परिषद्, प्रयाग।

पवित्र गंगा श्रवण, दर्शन, स्पर्शन, जलपान, स्नान तथा यशोगान से प्राणियों को नित्यप्रति पवित्र करती रहती है। 'गंगा' यह नाम सौ योजन की दूरी से भी उच्चारण किए जाने पर जीवन के तीन जन्मों में संचित पापों को नष्ट कर देता है।[1] श्रद्धालु जन इस पुण्यसलिला गंगा में स्नान कर अपने कुल तथा माता-पिता को नर्क से मुक्ति दिला देते हैं तथा स्वयं भी स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। स्नानार्थ गंगा की धारा में प्रवेश करते ही मनुष्य के ब्रह्महत्यादि कठोर पापसमूह भी नष्ट हो जाते हैं। गंगा के पवित्र जल का पान करने वाला पूर्व संचित पापों से मुक्त हो जाता है गंगा के सदृश पापक्षयकारी अन्य कोई नहीं—

सर्वोषमापि तीर्थनां श्रेष्ठा गंगा धरातले।
न तस्या सदृशं किञ्चित् विद्यते पापनाशनम्॥[2]

गंगा जल में स्नान करने से पाप का नाश होकर अपूर्वपुण्य और आरोग्य की प्राप्त होती है। गंगा के प्रवाह में पुत्रों द्वारा पितरों के लिए श्रद्धापूर्वक किया गया एक दिन का भी तर्पण उन्हें सौ वर्ष तक दुर्लभ तृप्ति प्रदान करता है। गंगातट पर अनुष्ठित महायज्ञों में राजाओं ने ईश्वर का स्मरण कर इहलोक और परलोक की सिद्धि की है। गंगाजल में स्नान करके निष्पाप हुए योगियों, संन्यासियों ने भगवान् केशव में चित्त समाहित कर अतिदुर्लभ निर्वाणपद प्राप्त किया है। पुराकाल से आज तक जन-जन के लिए उपयोगी गंगा भारतवर्ष की अधिकतम जनसंख्या की जीवनदायिनी है। गंगा के अभाव में हिन्दू जीवन अधूरा है। जन्म से मृत्यु तक मुण्डन, स्नान, दान, पूजन, तर्पण, श्राद्धादि सभी धार्मिक कृत्य गंगातट पर ही सम्पन्न होते हैं। राजा भगीरथ की साठ हजार वीर सन्तानें आदिवस गंगा की रक्षा करती हैं। मध्यकाल में मुहम्मद बिन तुगलक ने औषधीय गुण जानकर गंगाजल का सेवन आरम्भ किया था—वहाँ से लेकर बहादुर शाह जफर (सन् 1857) तक सभी मुगल शासकों ने केवल गंगा जल ही पिया। ऐसी पवित्र गंगा की धारा प्रयागवन की भूमि को क्षालित करती हुई इसे तपोवन सदृश महत्त्व प्रदान करती है।[3] प्रयाग जनपद में गंगाधारा की लम्बाई लगभग 125 किलोमीटर है।

यमुना त्रिवेणी की दूसरी पुण्यसलिला विशाल नदी है। प्रयाग जनपद में यमुना की लम्बाई 101 किलोमीटर है। यह इलाहाबाद में किले के पास गंगा में मिलकर अपना अस्तित्व समाप्त कर देती है। सूर्यपुत्री होने से सूर्यदेव स्वयं यमुना की रक्षा करते हैं। हिमालय की प्रसिद्ध उपत्यका से निकल कर उत्तरभारत

---

1. विष्णुपुराण 2.8.118, 123.
2. बृहन्नादारीय पुराण ग॰ मा॰ 1.41.47.
3. महाभारत, वनपर्व, अध्याय 85.97.

को अपने जलप्रवाह से उर्वर बनाती हुई यह नदी प्रयाग में गंगा के साथ एकाकार हो जाती है। यमुना का जल नील, हरित अथवा श्याम वर्ण का है। गंगा और यमुना नदी का मिलन स्थल ही त्रिवेणी नाम से प्रसिद्ध है। गंगा के समान ही यमुना नदी पवित्रतमा और श्रद्धेय है, ऋग्वेद की ऋचा से यह स्पष्ट है—**इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोत्रं सचता परुष्ण्या।**

भगवान् श्री कृष्ण की बाल लीलाओं की साक्षी है यमुना। कृष्ण की कन्दुक क्रीड़ा तथा शेषनागदमन यमुना के अतल जल में ही सम्पन्न हुए थे। यमुना का विवाह श्री कृष्ण के साथ हुआ था, श्रीकृष्ण की पत्नी होने से यमुना की महत्ता द्विगुणित हो जाती है। प्रयाग में यमुना तट पर मार्कण्डेय ऋषि द्वारा प्रेरित होकर सम्राट युधिष्ठर ने दस अश्वमेघ यज्ञ किए और मृत पूर्वजों की आत्मा की शान्ति हेतु प्रार्थना की। अतः यमुना तटस्थित दशाश्वमेध घाट अद्यापि पवित्र स्वीकार्य है। सन्तों ने यमुना की प्रशस्ति में कहा है—

कालिन्दीं कलगामिनीं कलरवां श्री कृष्णकान्तां भजे।[1]

सरस्वती[2] का प्रचुर वर्णन ऋग्वेद में उपलब्ध है। ज्ञात होता है कि ऋग्वैदिक काल में सरस्वती जलपूर्ण विशाल नदी थी, जो यमुना एवं शुतुद्रि के मध्य प्रवाहित थी। अवान्तरकाल में भौगोलिक कारणों से सरस्वती राजस्थान के रेतीले प्रदेश में अन्तर्हित हो गईं। वहाँ से अदृश्य होकर गंगा-यमुना की धारा के मध्य प्रकट हुई है, ऐसी मान्यता है। गंगा तट पर स्थित सरस्वती कूप और सरस्वती घाट सरस्वती नदी के अस्तित्व का आभास दिलाते हैं।

महाभारत में यमुना और सरस्वती के पश्चिम में अरब सागर में गिरने का उल्लेख प्राप्त होता है। कालान्तर में भूतात्त्विक परिवर्तन के कारण जब राजस्थान का दक्षिण पश्चिमी भाग और गुजरात का कच्छ प्रदेश उत्थित हो गया तो इन दोनों नदियों का प्रवाहमार्ग परिवर्तित हो गया। इस क्रम में सरस्वती नदी का प्रवाह यमुना के प्रवाह में सम्मिलित हो गया और यमुना पूर्व दिशा में प्रवाहित होने लगी। यमुना और सरस्वती का जल अन्तर्निहित था इसीलिए अन्तर्निहित सरस्वती की कल्पना कर ली गयी। प्रत्यक्षतः तो गंगा और यमुना का संगम ही दृश्यमान था।

वस्तुतः प्रयाग में सरस्वती आकार सापेक्ष नहीं है। लुप्त हुई सरस्वती तट प्रदेश को छोड़कर गंगा तट पर स्थाई वास बना लेने वाले आर्यजनों ने गंगा-यमुना के मध्य सरस्वती की कल्पना करके अपने दुःखी चित्त को सन्तोष दिया है। प्रयाग नगरी आदिकाल से विद्यानगरी के रूप में प्रसिद्ध रही है। महर्षि

1. आचार्य वल्लभ।
2. सरस्वती को अरुणा नदी भी कहा गया है—भूपरिक्रमणम् (विद्यापति), 3.2.

भरद्वाज का दस सहस्त्र विद्यार्थियों से पूरित वैमानिक तकनीकी गुरुकुल तथा माघमास और कुम्भ पर्व के अवसर पर ऋषि-महर्षियों के प्रवचन, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ की ज्ञानधारा यहाँ सदा प्रवाहित रही है जो अदृश्य सरस्वती का प्रतिरूप है।

प्रयाग में सरस्वती की कल्पना पौराणिक चिन्तन का परिणाम है। प्रयाग में गंगा और यमुना को सरस्वती द्वारा विदर्भित घोषित करके प्रयाग का 'तीर्थराजत्व' सिद्ध किया गया है। यदि गंगा और यमुना के साथ किसी अन्य नदी का संगम होता तो इस संगम को त्रिवेणी न कह कर चतुर्वेणी कहना पड़ता।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में लंका विजय कर लौटते हुए राम के मुख से संगम तट के पावन सौन्दर्य की महिमा कहलाई है।[1] ऐसे स्थल पर महर्षि दयानन्द का कुम्भ मेले में आगमन और नास्तिकों को विद्वत्तापूर्ण तर्कों से परास्त कर 'पाखण्डखण्डिनी पताका' फहराना प्रयाग के गौरववर्धन का हेतु अवश्य ही है। संगम तट पर आज भी पुण्यकाल में श्री हर्ष सदृश धनिक दानवीरों का अक्षयकोष निर्धनों की बहुविध सहायता के लिए खुलता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग श्रीहर्ष के साथ प्रयाग आए थे, विस्तार से उन्होंने यहाँ की अनूठी परम्पराओं का वर्णन किया है। आज भी संगम तट की ऊर्जा प्रयाग की पवित्र शक्तियों को जीवन्त बनाए हैं। सम्राट् हर्ष के आदेश से पूर्ण कुम्भ की लय पर प्रति छः वर्ष पर अर्द्ध कुम्भ तथा प्रत्येक वर्ष माघ मास में सम्पन्न होने वाले गंगा स्नान, सम्पूर्ण मास गंगा-तट पर वास करने वाले कल्पवासियों के लिए पूर्ण कुंभ के समान ही श्रद्धेय होते हैं, मानों वे असंख्य कल्पवासी गंगा की पावनता और शैत्य का अत्यधिक अनुभव करते हुए 'गंगायां घोषः' की साहित्यिकता को सार्थक करते हैं।

प्रयाग में स्नानपुण्य

माघमास में सभी तीर्थ और नदियाँ त्रिवेणी की धार में निवास करते हैं। सूर्य के मकर राशि में स्थित होने पर संगम की स्वतः प्रवृद्ध जलधारा में देवता भी स्नान करने को धरा पर अवतरित होते हैं। माघ मास में संगम में स्नान करने वाले व्यक्ति के पुण्यों की गणना चित्रगुप्त भी नहीं कर पाते हैं। स्नान की विधि है कि देवताओं का ध्यान करते हुए मौन हो कर पश्चिमवाहिनी गंगा और यमुना के मिलन-स्थल में स्नान करे, पश्चात् ईश्वर का पूजन-अर्चन करे।

देवभूमि प्रयाग में माघमास में संगम तट पर स्नान मोक्षदायी है। तप-दान-स्नान-यज्ञादि जितने धार्मिक कार्य हैं, गंगास्नान से सबका पुण्य प्राप्त

1. पश्यानवद्यांगि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः।

होता है। गंगा स्नान से अज्ञान में किए गए पापों का विनाश होता है। सभी मनोवांछित उत्तम योगक्षेम तथा देवलोक की प्राप्ति होती है—

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवा।[1]

पद्मपुराण के अनुसार त्रिवेणी में स्नान से अर्जित पुण्य से नारायण को लक्ष्मी मिली, महादेव ने एक ही बाण में त्रिपुरासुर का वध किया, उर्वशी को पुनः स्वर्ग मिला, नहुष को ययाति सम पुत्र मिला, भरद्वाज की गणना ऋषियों में हुई, सम्राट् पुरुरवा को कुरुपता से मुक्ति मिली।

वस्तुतः पुराणोक्त देवलोक की प्राप्ति तो इन्द्रियागोचर—अनुभवातीत-अलौकिक तत्त्व है। संगम जल में स्नान से, धर्म की पवित्र तरंगें स्नानार्थी की आत्मा को साक्षात् तरंगायित कर देती हैं। प्रयाग में माघ मास का स्नान सर्वाधिक प्रशस्त माना जाता है। असंख्य गायों के दान से जो फल मिलते हैं, प्रयाग में माघ मास के स्नान से वे फल सहज सुलभ होते हैं। स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आबाल, वृद्ध, अनुलोम, प्रतिलोम, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, संन्यासी सभी को माघस्नान का अधिकार है, इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है—

यथाधिकारं सर्वेषां विष्णुर्भक्ते बुधौ स्मृतः।
माघस्नानं तथा ज्ञेयं नात्र कार्यविचारणा।।[2]

प्रयाग में दानपुण्य

संगम तट पर त्रिवेणी में माघमासीय स्नान तथा दान अश्वमेध यज्ञ सम फलदायी मान्य है। इस तीर्थ में सामर्थ्यानुसार स्नान, दान, पितृतर्पणादि क्रियाओं को करते हुए मरण को प्राप्त करने वाला दीप्तकाञ्चन सदृश तथा सूर्य तुल्य तेजस्क विमान पर चढ़ कर स्वर्गारोहण करता है। अतः प्रयाग तीर्थ में वैभवानुसार गोधन, अर्थधनादि का दान कर फललाभ अर्जित करे। चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार कुम्भ के अवसर पर राजागण, धनाढ्यपुरुष आदि यहाँ स्नान कर अपना सर्वस्वदान कर देते हैं अतः इसका एक नाम महादानभूमि भी है। गंगातट पर चार हाथ की दूरी तक नारायण का वास होने से किसी को उस क्षेत्र में दान नहीं लेना चाहिए। प्रयाग में वस्त्र, आभूषण एवं रत्नों से सुशोभित कपिलागाय का दान करना चाहिए। प्रयाग भूमि देवों द्वारा पूजित है अतः यहाँ थोड़ा भी दान पुण्यदायी है। मत्स्यपुराण के अनुसार प्रयाग में गोदाता को स्वर्ग लाभ होता है—

---

1. कूर्मपुराण, अध्याय 36; मत्स्यपुराण, 108.28.
2. पद्मपुराण महाशताध्यायी।

गंगा यमुनयोर्मध्ये यस्तु गां संप्रयच्छति।
स गोरोमसमाब्दानि लभते स्वर्गमुत्तमम्।।[1]

प्रयाग में मुण्डन संस्कार

केशमूल का आश्रय लेकर शरीर में पाप अवस्थित रहते हैं अतः धार्मिक कृत्यों में मुण्डन संस्कार का विशेष महत्त्व है। प्रयाग तीर्थ में केशकर्तन कराने से स्वर्गलोक को गति होती है. अतः—

प्रयागे वपनं कुर्यात् गयायां पिण्डपातनम्।
दानं दद्यात् कुरुक्षेत्रे, वाराणस्यां तनुं त्यजेत्।।
किं गयायां पिण्डदानेन काश्यां वा मरणेन किम्।
किं कुरुक्षेत्रे दानेन प्रयागे वपनं न यदि।।[2]

अर्थात् गया में पिण्डदान, वाराणसी में मरण, कुरुक्षेत्र में दान का एकत्र फल मिलता है यदि प्रयाग में केशवपन संस्कार हुआ हो। जाति-धर्म-सम्प्रदाय के बन्धन से ऊपर उठ कर समस्त प्रजाजन ऊंच-नीच के भेद को त्याग कर प्रयाग में गंगा तट पर क्षौरकर्म के लिए लालायित रहते हैं। आज भी आबाल-वृद्ध भारतीय जनता में यह प्रथा लोकप्रिय है। कहा भी है—

राजा वा राजपुत्रो वा लक्ष्मीपतिरेव वा।
प्रयागे वपनं कुर्यादन्यक्षेत्रे कदाचन।।

प्रयाग में त्रिवेणी तट पर मुण्डन कराने का विधान एवं व्यवस्था है। पुरुषों को सामान्यतः निष्ठापूर्वक स्नान करके क्षौरकर्म कराना चाहिए। पश्चात् स्नान करके पूजा, दानादि धार्मिक कृत्य सम्पादित करने चाहिए।

प्रयाग में मुण्डन संस्कार का महत्त्व स्वीकार करते हुए आचार्यों ने स्त्रियों के केशकर्तन की भी व्यवस्था स्वीकार की है। यहाँ विधवा अपने पूरे बाल कटा कर मुण्डित शिर हो सकती है। सौभाग्यवती स्त्रियों के केश सुहाग एवं सौन्दर्य की दृष्टि से अनिवार्य है अतएव सधवा स्त्रियों के लिए नियम है कि वे त्रिवेणी तट पर पति के साथ वेणीदान का संकल्प लें। पश्चात् त्रिवेणी में स्नान कर केशों की वेणी बनाकर पति से नम्रतापूर्वक वेणीदान की अनुमति ले कर वेणी के छोर पर नीचे से दो अंगुल की परिमिति तक कुमकुम एवं अन्य शुभ द्रव्यों को सजाएँ। पुनः पति कैंची या छुरी से सुसज्जित अंश को काट कर अलग कर दे। पत्नी उस वेणी में मोती तथा सीप रखकर मंगल द्रव्यों सहित गंगा-यमुना में निम्न मन्त्र पढ़ते हुए त्रिवेणी में प्रवाहित कर दे—त्रिवेणी में इस वेणी को

---

1. मत्स्यपुराण, 105, 13.
2. नारदपुराण, उत्तर, 63.103-104.

फेंकने से मेरे सारे पाप नष्ट हों, मेरा सौभाग्य वृद्धि को प्राप्त हो—

वेण्यां वेणीप्रदानेन सर्वपापं प्रणश्यतु।
जन्मान्तरेष्वपि सदा सौभाग्यं प्रवर्धताम्।।[1]

बालकों के केशवपन का उल्लेख शास्त्रों ने करते हुए कहा है कि शिशुओं के उपनयन संस्कार से पूर्व चौलकर्म संगम स्थल पर कराना विशेष मोक्षदायी होता है। यदि अन्यत्र केशकर्तन हो चुका हो तो भी प्रयाग में मुण्डन करा लेना उचित है। आदि तीर्थकर भगवान् ऋषभदेव ने अक्षयवट के नीचे केशलुंचन किया था अतः जैन धर्मानुयायी भी यहाँ मुण्डन की परम्परा मानते हैं। सम्राट हर्ष के काल में बौद्धभिक्षु कुम्भमेलों में ही क्षौर कर्म करा कर मुण्डित होते थे। आधुनिक परिवेश में यह व्यवस्था अधिक लोकप्रिय नहीं रह गई है।

प्रयाग में श्राद्ध एवं पिण्डदान

तीर्थों में पितरों का वास होता है अतः तीर्थराज प्रयाग में पितरों के निमित्त श्राद्ध एवं पिण्डदान का महान् पुण्य बताया गया है। तीर्थों पर सम्पादित श्राद्ध तथा पिण्डदान से पितरों की सन्तृप्ति होती है। तीर्थों पर श्राद्ध करते समय अर्घ्य एवं आवाहन नहीं किया जाना चाहिए कारण यह विश्वास कि पितृगण वहाँ उपस्थित रहते ही हैं। तीर्थस्थल में यदि शास्त्रविधि का सम्यक् पालन न हो सके तो केवल यव-अन्न का पिण्डदान पर्याप्त है अथवा केवल संयाव (घृत एवं दूध में बनी हुई गेहूँ की लप्सी), खीर एवं तिल की खली और गुड़ अर्पण किया जा सकता है।

यजमान यदि रुग्ण हो और विशद विधि का अनुपालन न कर सके तो उसे यह संकल्प करते हुए केवल एक पिण्ड का दान करना चाहिए—मैं यह पिण्ड अपने पिता, पितामह, माता, मातामही, प्रपितामही, नाना, नानामह एवं प्रनानामह आदि के निमित्त दे रहा हूँ, यह उन्हें अक्षय्य हो कर प्राप्त हो।[2]

प्रयाग : देवभूमि

प्रयाग देवाधिदेव ब्रह्मा-विष्णु-महेश की प्रिय स्थली है। अतः वैकुण्ठ की अपेक्षा श्रेष्ठ है। पञ्च योजन विस्तृत इस गंगातटीय भूमि में सभी देव, गन्धर्व, पितृ, ऋषिगण और तीर्थ सदा विद्यमान रहते हैं। प्रयाग के विशिष्ट देवों में शक्ति और त्रिकाल भैरव का नाम उल्लेख्य है। तन्त्रचूड़ामणि से ज्ञात होता है कि सती की अंगुली प्रयाग में गिरि थी, उस स्थान पर प्रसिद्ध ललिता देवी का मंदिर है।

---

1. त्रिस्थलीसेतु।
2. वायुपुराण, 110.51-52.

51 शक्तिपीठों में से प्रसिद्ध यह शक्तिपीठ अलोपी देवी के नाम से प्रसिद्ध है। ललिता देवी के नाम से एक प्रसिद्ध मन्दिर मीरापुर क्षेत्र में भी स्थित है। परन्तु वास्तविक तथा प्राचीन शक्तिपीठ वर्तमान अलोपीदेवी ही है, ऐसी मान्यता है।

देवों के अन्य अधिष्ठानों से युक्त होने के कारण प्रयाग को प्राचीनतम पवित्र नगरी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। इस तीर्थ में पाँच कुण्ड स्थित हैं जिनमें जाह्नवीदेवी अवस्थित हैं, वे है—ब्रह्मकूप, सरस्वतीकूप, हंसकूप, उर्वशीकूप, समुद्रकूप। अष्टमाधव—शंख, चक्र, गदा, पद्म, अनन्त, बिन्दु, मनोहर, असि—इन नामों को धारण कर अक्षयवट के चतुर्दिक निवास कर प्रयाग की रक्षा करते हैं।

प्रयाग में अक्षयवट

सभी पुराणों का एकमत से कथन है कि भगवान् शूलपाणि द्वारा रक्षणीय,[1] महर्षि वेदव्यास द्वारा अक्षयवट नाम से अभिहित देवोपम-स्वर्गोपम वटवृक्ष प्रयागराज में गंगातट पर स्थित है। पुराणों में उसे आदिवट के नाम से कहा गया है, प्रलयबेला में विष्णु इसी अक्षयवट के पत्तों पर शयन करते हैं, यह प्रलय और कल्पान्तर के बाद भी अक्षय रहता है—

आदिवटः समाख्यातः कल्पान्तेऽपि च दृश्यते।
शेते विष्णुर्यस्य पत्रे अतो अयमव्ययः स्मृतः।।

मत्स्यपुराण के अनुसार प्रलयकाल में सूर्य व चन्द्र के भी नष्ट हो जाने पर विष्णु प्रयाग में अक्षयवट के समीप पूजन करते स्थित रहते हैं। सृष्टिरचना के समय अपने इस शाश्वत आवास से बालमुकुन्द सृष्टि सर्जन आरम्भ करते हैं। ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि अक्षयवट का मूल स्वयं साक्षात् विष्णु हैं, स्कन्ध स्वयं लक्ष्मी हैं, पत्र स्वयं देवि सरस्वती हैं, पुष्प स्वयं देवेश्वर शंकर हैं, फल स्वयं ब्रह्म हैं—इन सबका आधार स्वयं भगवान् विष्णु हैं। मत्स्यपुराण के एक अन्य उल्लेख के अनुसार कल्पान्त के समय प्रयाग का नाश नहीं होता है, यहाँ त्रिदेव वास करते हैं, इनमें भगवान् शंकर का वास इसी पवित्र अक्षयवट में रहता है—

महेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार वनगमन मार्ग में चित्रकूट जाते समय भगवती सीता ने पातिव्रत्य धर्म के पालन की सामर्थ्य के निमित्त इस वृक्षराज से आशीर्वाद मांगा था। रावणवध से निवृत्त हो कर पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते

1. न्यग्रोधं रक्षते शूलपाणिर्महेश्वरः।

हुए राम-लक्ष्मण-सीता ने इस वृक्ष को प्रणाम किया था। कालिदास ने इसे श्यामवट कह कर महिमामण्डित किया है।[1] क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेन भस्माङ्गरागातनुरीश्वरस्य कह कर महाकवि ने अक्षयवट में वास करने वाले महादेव का स्मरण किया है। भवभूति ने भी यमुना के तट पर चित्रकूट के मार्ग में श्याम वट का उल्लेख किया है—अयमसौ भरद्वाजावेदितश्चित्रकूट याम्ये वर्त्मनि कालिन्दी तटे वटः श्यामो नाम। मुरारिकवि (नवीं शताब्दी) ने इसे राम के मुख से सीता के प्रति ज्योतिब्रह्म का प्रतीक बताया है व सीता को इसे प्रणाम करने के लिए प्रेरित किया है—

रामः-(सीतां प्रति) देवि! प्रणम्यतामितः
श्यामो नामवटः सोऽयमेतस्याद्भुतकर्मणः।
छायामप्यधिवास्तव्यैः परं ज्योतिर्निषेव्यते॥[2]

भारत की यात्रा पर आने वाले यात्री ह्वेनसांग ने लिखा है कि नगर में एक देवमन्दिर विशाल तथा सुसज्जित है, जिसके अद्भुत चमत्कारों की बड़ी प्रसिद्धि है। मन्दिर के सभामण्डप के सामने एक विशाल वटवृक्ष है जिसकी विस्तृत डालियों से खूब सघन छाया रहती है। कहा जाता है कि जो कोई मनुष्य अपने जीवन को तुच्छ समझ कर यहाँ प्राणघात करते हैं वे स्वर्ग में स्थाई सुख प्राप्त करते हैं।[3] इस विषय में प्रमाण है मत्स्यपुराण—

वटमूलं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति॥

वर्तमान समय में अक्षयवट संगम तट पर किले के अन्दर अवस्थित है। पहले किले की पातालपुरी नामक भूमिगत गुफा में वास्तविक अक्षयवट की एक शाखा गाड़ कर, वृक्ष के रूप में विकसित उसी वट का दर्शन तीर्थयात्रियों को कराया जाता था, परन्तु कालान्तर में किले के अन्दर ही मूलवट की खोज कर ली गई। अष्टमाधव ब्रह्माण्ड को उदर में धारण किए बालरूप में इसी अक्षयवट पर पादांगुष्ठ मुख में लिए हुए खेलते रहते हैं।

प्रयाग में कल्पवास

प्रयाग में प्रतिवर्ष माघ में गंगा-यमुना के संगम तट पर श्रद्धालुओं की अपार भीड़ जुटती है। यह जनसम्मर्द पौष शुक्ल एकादशी से माघ शुक्ल द्वादशी पर्यन्त सम्पूर्ण एक मास व्रतनिष्ठ होकर पवित्र संगम क्षेत्र में निवास करता है

1. रघुवंश, 13.53.
2. अनर्घराघव, मुरारि कवि, 7.12.।
3. ह्वेनसांग की भारत यात्रा, ठाकुर प्रसाद शर्मा, पृ० 168, 169, 170.

इसे कल्पवास कहते हैं। कल्पवास की अवधि में उपवास, स्थान, त्रिकाल विष्णु पूजा, भोगों का त्याग, इन्द्रिय-संयम आदि नियमों का विधान है। वेदोक्त यागादि, कर्म ही कल्प कहे गए हैं—

कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्वेण कल्पनाशास्त्रम्।

माघ मास में संसार के सभी तीर्थ देवी-देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, ऋषि, मुनि तीर्थराज प्रयाग में आकर निवास करते हैं। कल्पवास धारण करने वाला व्यक्ति माघस्नान से समग्र तीर्थों के स्नान का फल पाता है, विपत्ति का नाश एवं पापक्षय हो कर पुण्यसंचय का अधिकारी होता है। मत्स्यपुराण के अनुसार—

मासमेकं तु यः स्नायात् प्रयागे नियतेन्द्रियः।
विमुक्तो सर्वपापेभ्यः स गच्छेत् परमं पदम्।।[1]

कल्पवास में माघस्नान के धार्मिक वैभव का निरूपण करते हुए कहा गया है कि सत्यवादी, अक्रोधी, अहिंसक, धर्मज्ञ, तत्त्वज्ञ, देवों और पितरों की पूजा में लगे हुए कल्पवासी की मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है—

ब्रह्मचारी वसेन्मासं पितृन् देवांश्च तर्पयेत्।
ईप्सिताँल्लभते कामान् यत्र यत्राभिजायते।।

कल्पवासी सकाम मनुष्य की कामनापूर्ति और निष्काम मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस अवसर पर रात्रिबेला में गंगा-यमुना में दीपदान करना अत्यन्त पुण्यदायी माना गया है—

गंगायमुनयोस्तीरे पूर्णायां रजनीमुखे।
ईप्सितफलमाप्नोति दीपदानं कृतं नरः।।[2]

प्रयाग में कुम्भपर्व

कुम्भ भारतीय संस्कृति का पुरातन महापर्व है। पुण्य माघ मास में सूर्य के मकर राशि में तथा बृहस्पति के वृषराशि में प्रविष्ट होने पर प्रयाग में हरेक छः वर्ष में अर्धकुम्भ और 12वें वर्ष में पूर्णकुम्भ होता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार समुद्र मंथन से उद्‌भूत अमृत कलश को दैत्यों से बचा कर इन्द्रपुत्र जयन्त ले कर स्वर्ग को उड़ चले, वहाँ तक पहुँचने में उन्हें 12 दिन का समय लगा। देवताओं का एक दिन मनुष्य के एक वर्ष के बराबर होता है। अतः प्रत्येक बारहवें वर्ष कुम्भ का आयोजन होता है। इतिहास सिद्ध है कि शंकराचार्य (ईसा की आठवीं शती) ने बौद्धधर्म के प्रहार से वैदिक धर्म की रक्षा के लिए माघ

1. मत्स्यपुराण, 108.14.
2. मत्स्यपुराण, 104.18.

मेले को सुव्यवस्थित रूप देकर धार्मिक सम्मेलन के रूप में आयोजित किया था। कुम्भपर्व में जो आज नागा साधुओं के सम्प्रदाय आकर गंगा की रेती में निवास करते हैं वह इस अवसर पर शंकराचार्य द्वारा संगठित साधु सम्मेलन का ही परिणाम है। उन्होंने बौद्धों से मोर्चा लेने के लिए बौद्धसंतों के अनुरूप ही धार्मिक सेना के रूप में नागासाधुओं के शस्त्र व शास्त्र सुसज्जित दल तैयार किए थे। कुम्भ भारत का ही नहीं अपितु विश्व का सबसे बड़ा मेला माना गया है। एक ही समय में एक ही अवसर पर करोड़ों श्रद्धालु अमृतमय पुण्य लूटने के लिये यहाँ उमड़ते हैं।

इस कुम्भ महापर्व के विषय में पुराणों में भिन्न-भिन्न कथाएँ प्रचलित हैं। समुद्र मंथन के अवसर पर अमृत-कलश के लिये जब भीषण देवासुर संग्राम हुआ तब देवताओं ने बारह दिन तक इस सुधापात्र को विभिन्न स्थानों में छिपा रखा था—आठ दिन स्वर्गलोक में और चार दिन मर्त्यलोक में। इन चार दिनों में वह पीयूष कुम्भ एक-एक दिन क्रमशः हरिद्वार, प्रयाग, नासिक और उज्जैन में छिपाया गया था अतः उक्त चारों स्थानों पर जब उसके रक्षक सूर्य, वृष, गुरु और शनि देवों की एकत्र मिलन तिथि अवस्थित होती है तभी कुम्भ योग का प्रादुर्भाव होता है।

वैसे तो प्रयाग में प्रतिवर्ष माघ के महीने में चन्द्र और सूर्य मकर में पड़ते हैं किन्तु बृहस्पति का एक चक्र बारह वर्ष में पूरा होता है। प्रयाग में पूर्णकुम्भ की स्थिति से सम्बन्धित निम्न श्लोक देखें—

मकरे च दिवानाथे वृषगे च बृहस्पतौ।
कुम्भयोगो भवेत्तदा प्रयागेध्याति दुर्लभम्॥

अर्थात् जब मकर राशि में सूर्य चन्द्र का प्रवेश होता है और वृष राशि में बृहस्पति का प्रवेश होता है, तब प्रयाग में दुर्लभ कुम्भ का योग होता है। यह ग्रह योग माघ महीने में हो, तभी महापर्व पूर्णकुम्भ की स्थिति होती है। प्रयाग के अतिरिक्त हरिद्वार, उज्जैन और नासिक में भी कुम्भ होता है। प्रयाग और हरिद्वार में हर छः वर्ष में अर्धकुम्भ भी होता है।

कुम्भ की प्राचीनता के सम्बन्ध में सम्राट् हर्षवर्धन के सर्वत्याग यज्ञ का उल्लेख मिलता है। प्रयाग में सातवीं सदी के प्रारम्भ में राजा हर्षवर्धन द्वारा प्रति पाँच वर्ष के अन्तराल में एक सर्वत्याग यज्ञ और महामोक्ष परिषद् का अनुष्ठान हुआ करता था, जिसमें साधु, महात्माओं का एक विराट सम्मेलन और आध्यात्मिक विचार-विनिमय का महान् समारोह हुआ करता था। कुम्भ स्नान और मेले का प्रथम ऐतिहासिक अभिलेख हर्ष के काल का ही उपलब्ध है। पुनः जब शंकराचार्य और कुमारिलभट्ट के प्रयत्न से भारत में बौद्ध मत की इतिश्री हो गई

तब से सर्वत्याग मेले के स्थान पर कुम्भ की स्थापना हुई परन्तु यह मात्र अनुमान ही है। ऐतिहासिकता की दृष्टि से चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसका आखों देखा वर्णन किया है। पुराणों में गंगास्नान, प्रयागस्नान और तीर्थराज प्रयाग की महिमा वर्णित है किन्तु कुम्भ नाम से किसी भी आयोजन का वर्णन नहीं मिलता है। बौद्ध राजाओं के 'सर्वत्याग' यज्ञ के सदियों पहले से इस माघ महीने में तीर्थयात्रियों की भीड़ सारे भारतवर्ष से स्नान पुण्यलाभ हेतु यहाँ इकट्ठा होती रही होगी अतः कुम्भ शब्द का प्रयोग न होने पर भी माघस्नान शब्द के उल्लेख से ही इस मेले की प्राचीनता मान लेनी चाहिये। 151 वर्ष पहले अंग्रेज़ यात्री डेविडसन की डायरी में वर्णित—'मैं बाँध पार करके मेले में पहुँचा, जिसमें छोटी-छोटी झोपड़ियाँ-बाँस, चटाई, घासफूस की बनी थीं। ईधन के ढेर लगे थे। चौड़े रास्ते पर बनी झोपड़ियाँ करीब आधे मील तक फैली थीं, रास्ता घाट पर जाकर समाप्त होता था। संगम तट पर भीड़ जुटी थी। अनेक प्रकार के साधु सन्त रंग-बिरंगे झण्डे के साथ विराजमान थे। विचित्र दृश्य था, कोई साधु छः फीट की जटा से युक्त था, कोई नग्न लेटा था, कोई सिर के बल खड़ा था, कोई ढपली पर भजन गा रहा था। कहीं रामायण की कथा, कहीं कृष्ण लीला हो रही थी। श्रद्धालु बड़े ध्यान से देख सुन रहे थे।' यह प्रसंग कुम्भ जैसे मेले का ही दृश्य खींचता है।

तीर्थयात्रा में सवारी से जाना वर्जित है, यदि कोई धनगर्व से मदमत्त हो सवारी से जाता है तो तीर्थयात्रा का फल नहीं मिलता है—

ऐश्वर्यलोभमोहाद्वा गच्छेत् यानेन यो नरः।
निष्फलं तस्य तत्रार्थं तस्मात् यानञ्च वर्जयेत्।।[1]

अतः पुराकाल में भारत के कोने-कोने से पैदल चल कर बड़ी संख्या में महात्मा, सिद्धयोगी, उपदेशक विद्वान् जनता के कल्याण के लिये यहाँ पहुँचते थे। धार्मिक, दार्शनिक विषयों पर गूढ़ चिन्तन होता था। यद्यपि आज भी मेले का बाह्य रूप ऊपर वर्णित दृश्य जैसा ही है परन्तु स्वरुप बदल गया है। कुम्भ मेले का ढाँचा अब भी वर्तमान है किन्तु परम्परा उड़ सी गई है। साधुओं के अखाड़े आज भी जुड़ते हैं किन्तु आध्यात्मिक अनुशीलन के स्थान पर लाठी, भाले, तलवार के पैंतरे के साथ। सारा मेला सरकारी व्यवस्था में बड़े शान एवं वैभव के साथ पूरे एक माह तक लगा रहता है परन्तु अतीत के पावन लक्ष्य से बहुत दूर।

वस्तुतः युगों से अक्षुण्ण महाकुम्भ पर्व की सनातन एवं शाश्वत परम्परा हमारी धरोहर है, जिसे हमने दर्शन और संस्कृति के अमृत से सींचा है।

1. मत्स्यपुराण

समुद्र-मंथन से जो अमृत मिला होगा, वह वस्तुतः सत्य ही रहा होगा। इस अमृत सिद्धान्त का प्रतिपादक कुंभ पर्व विश्व मानव के सन्दर्भ में राष्ट्रीय चिन्तन के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' पक्ष को अग्रसर करता हुआ 'सर्वभूतेषु' तक पहुँचाता है।

आज सांस्कृतिक नैतिक मूल्यों के अवमूल्यन काल में राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए इन धार्मिक, सांस्कृतिक मेलों की बड़ी आवश्यकता है। करोड़ों की संख्या में उपस्थित जनसमूह के कारण यह महाकुंभ विराट महापर्व बन जाता है। जिसमें भाषागत भिन्नता और प्रादेशिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक संकीर्णता स्वतः मिट जाती है। पवित्र संगम में स्नान करके प्राणी जब धन्य होता है तब वह पंजाबी, गुजराती, मराठी व बंगाली नहीं केवल हिन्दू होता है, 'हर-हर गंगे' का उद्घोष करता हुआ वह सच्चा भारतीय होता है।

निश्चय ही कुम्भ पर्व हमारी जन-परम्परा का ऐसा सनातन लोक-पर्व है, जिसमें दर्शन, ज्योतिष्, पुराण आदि के साथ जीवन की अमरत्व चेतना का समन्वय हो गया है। कुम्भपर्व के घटक-विष और अमृत मानव जीवन के मरण और जन्म को व्यंजित करते हैं। उपनिषदों की महान् जीवन दृष्टि 'मृत्योर्मामृतं गमय' को ही यह महाकुम्भ पर्व अभिव्यक्त करता है तभी तो करोड़ों की संख्या में आबाल-वृद्ध, नर-नारी, गंगा-यमुना के पवित्र जल में डुबकी लगाकर जीवन के अमृत की खोज में उमड़ आते हैं बिना किसी निमंत्रण के। प्रयाग के कुम्भ का ग्रहयोग ईश्वर के प्रति आस्था व यौगिक ध्यानवृत्ति को पोषित करता है, पारस्परिक सद्भाव को बल प्रदान कर तत्त्वचिन्तन पर बल देता है। यह अनुसन्धानशाला है अन्तःकरण के शोधन की, जो मानव की क्षरित से रक्षा कर विराट् से जुड़ने का पथ प्रशस्त करती है।

द्वितीय अध्याय

प्रयाग का साहित्यिक सन्दर्भ

प्रयाग का संस्कृत साहित्य को अवदान

प्रागैतिहासिक काल से ही पवित्र धार्मिक नगरी के रूप में विख्यात प्रयाग भारतवर्ष की विलक्षण साहित्यिक परम्परा को संजोए है। विलक्षण मेधा सम्पन्न आर्यजनों की वैदिक संस्कृति का उद्‌भव भले ही सप्तसैन्धव देश (पञ्जाब) में हुआ हो परन्तु विकास पश्चिमी गंगाघाटी में हुआ। सिन्धु सभ्यता के पश्चात् द्वितीय स्तरीय 'नगरीकरण' गंगा के मैदानों में ही हुआ। फलस्वरूप संस्कृत साहित्य में इस नगरी का प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक था। पुरातन काल से अनेक संस्कृत पण्डितों, कवियों, आचार्यों ने यही बैठ कर विविध विषयों पर साहित्य रचना की। कुछ साहित्यकारों ने प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपि कर उन्हें सुरक्षित रखा। कुछ मनीषी ऐसे थे जिन्होंने प्रयाग की धरती पर जन्म लिया, यहाँ की अध्ययन परम्परा से लाभान्वित हुए किन्तु साहित्य साधना के लिए नगर से बाहर कहीं अन्यत्र आश्रय लिया। कुछ विद्वान् ऐसे भी थे जिन्होंने जन्म आर्यावर्त के किसी अन्य भूभाग में लिया किन्तु प्रयाग की सारस्वत समृद्धि से आकृष्ट होकर इसे ही अपना कर्म क्षेत्र चिह्नित किया। चाहे काव्यरचना का क्षेत्र हो अथवा शास्त्र लेखन का अथवा भाष्य और टीकाओं के प्रणयन का अथवा प्राचीन पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपि और चित्रांकन का, प्रयाग का योगदान उल्लेख्य है। यही कारण है कि साहित्यिक जगत् में इसे शारदातीर्थ उपाधि से विभूषित किया गया है।

ऋग्वेद खिलसूक्त में संगम का प्रथमतः उल्लेख मिलता है—जहाँ श्वेत-श्याम नदियाँ परस्पर मिलती हैं वहाँ (संगमक्षेत्र में) स्नान करने वाले परम पद प्राप्त कर सांसारिक बन्धन से मुक्त हो जाते हैं—

सितासिते सरिते यत्र सङ्‌गते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ति।।[1]

---

1. ऋग्वेद, खिलसूक्त, 10.15.

शुष्कप्राय सरस्वती नदी के काँठे को छोड़ कर गंगाजल के किनारों को अपना स्थाई आवास बना लेने वाली आर्यजाति ने अथर्ववेद के मन्त्रों का दर्शन और संकलन कर इस भूमि को पवित्र किया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि काव्यसंहिता के रचनाकार भी प्रयाग की भूमि से सम्पृक्त थे। शतपथ ब्राह्मण का पर्याप्त अंश भी गंगा की घाटी में (बिठूर से वाराणसी के मध्य) रचा गया। प्रयाग जनपद को प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभ देव और कणाद ऋषि की जन्म-कर्म भूमि होने का गौरव प्राप्त है। इस प्रकार प्रयाग के पावन क्षेत्रफल को विश्वप्रसिद्ध प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास के संकलन का गौरव प्राप्त है।

प्रयाग की प्राचीन पण्डित परम्परा

प्रयाग वर्णन महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण से ही प्राप्त होने लगता है। रामायण में अनेकशः शृंगवेरपुर, संगम, भरद्वाज मुनि तथा प्रतिष्ठानपुर का उल्लेख किया गया है। राम वनवास के लिए अयोध्या से प्रस्थान कर शृंगवेरपुर में गंगा तट पर पहुँचते हैं और नदी पार कर वत्सदेश (कौशाम्बी राजधानी) जाते हैं। अनन्तर वे गंगा यमुना के संगम पहुँचते हैं, जहाँ वे लक्ष्मण को मुनियों द्वारा किये जा रहे अग्निहोत्र से उठने वाला सुगन्धित धुआँ दिखाते हुए कहते हैं कि यही प्रयाग है। इसके पश्चात् वे भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुँच कर विश्राम करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण काल में प्रयाग वनों से घिरी हुई तपोभूमि थी। इसी प्रकार भरत के चित्रकूट जाते समय पुनः भरद्वाज आश्रम का उल्लेख है। युद्ध-काण्ड में रामचन्द्र पुष्पक विमान से प्रयाग होते हुए अयोध्या लौटते हैं। उत्तरकाण्ड में इलपुत्र पुरुरवा तथा उनकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर का उल्लेख मिलता है।[1]

महाभारत में भी अनेक स्थलों पर प्रयाग का उल्लेख हुआ है। यहीं सोम, वरुण और प्रजापति का जन्म हुआ था। महाभारत में वासुकी, प्रतिष्ठानपुर तथा दशाश्वमेध (दारागंज) आदि स्थलों की चर्चा है। महाभारत में ही कहा गया है कि क्योंकि ब्रह्मा ने यहाँ यज्ञ किया था, अतः इस क्षेत्र का नाम प्रयाग है। अन्यत्र भी महाभारत में प्रयाग का उल्लेख हैं—

गंगायमुनयोर्वीर सङ्गमं लोकविश्रुतम्
तत्राऽजयत भूतात्मा पूर्वमेव पितामहः।
प्रयागमिति विख्यातं तस्माद् भारतसत्तम॥[2]

---

1. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 50-52, 54, 83-92; युद्धकाण्ड, सर्ग 123; उत्तरकाण्ड, सर्ग 90.
2. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 55, वनपर्व अध्याय 84-85, 87-19.

पुराण साहित्य में प्रयाग माहात्म्य का विस्तृत निरूपण है। मत्स्य, वामन, वराह, पद्म, स्कन्द, विष्णुधर्मोत्तर, कूर्म, लिंग, अग्नि, ब्रह्माण्ड, वायु, स्कन्द एवं श्रीमद्भागवतमहापुराण आदि में विभिन्न प्रसंगों में प्रयाग की चर्चा आती है। मत्स्य पुराण में इसे तीर्थराज कहा गया है—

तथा सर्वेषु लोकेषु प्रयागं पूजयेद् बुधः।
पूज्यते तीर्थराजस्तु सत्यमेव युधिष्ठिरः॥[1]

महर्षि भरद्वाज प्रणीत यन्त्रसर्वस्व अथवा सर्वतन्त्रसंग्रह नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में तत्कालीन वायुयान निर्माण, जीर्णोद्धार तथा उड्डयनकला आदि का वर्णन है। ग्रन्थ का कुछ भाग बड़ौदा एवं मैसूर राज्य के पुस्तकालयों में सुरक्षित है।[2]

कामसूत्र के रचयिता मलंग वात्स्यायन का जन्म वत्सदेश, कौशाम्बी (प्रयाग जनपद) ही है।

मनुस्मृतिकार मध्यदेश की सीमा के निर्धारण में प्रयाग की चर्चा करते हैं, अतः संस्कृत साहित्य में उल्लिखित प्रयाग की प्राचीनता व महत्त्व निर्विवाद है—

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥[3]

महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य तथा विक्रमोर्वशीय नाटक में प्रयाग का वर्णन किया है। रघुवंश में केवल संगम का वर्णन है किन्तु विक्रमोर्वशीय में प्रतिष्ठान तथा संगम दोनों का ही वर्णन है। लंका से पुष्पक विमान से लौटते हुए रामचन्द्र सीता को गंगा यमुना का सुन्दर दृश्य दिखलाते हैं। वे श्वेतजला गंगा तथा कृष्णजला यमुना के संगम को विविध शब्द चित्रों से स्पष्ट करते हैं। कहीं तो यह नीलम मणियों से युक्त मोतियों की माला के समान सुशोभित है तो कहीं नीलकमल एवं श्वेतकमल की माला के समान सुशोभित है। कहीं राजहंसों से मिलती हुई श्यामहंसों की पंक्ति जैसी शोभन है तो कहीं कालागुरु एवं चन्दन से लिपी हुई पृथ्वी की पत्र रचना जैसी सुभग। कहीं यह उस चाँदनी के समान लग रही है जो पत्तों की छाया से चितकबरी हो गयी हो तो कहीं उन शरत्कालीन श्वेत मेघों के समान लग रही है जिनके बीच-बीच में से नीला आकाश दिख रहा हो। कहीं यह श्वेत भस्म पुते हुए, काला नाग धारण किये हुए शिव के शरीर के समान सुशोभित हो रही है। महाकवि कालिदास संगम का माहात्म्य बताते हुए कहते हैं कि यहाँ स्नान मात्र करने से तत्त्व-ज्ञान के बिना भी मोक्ष प्राप्त हो जाता है।[4]

1. मत्स्यपुराण, 109-95.
2. भारत को प्रयाग की देन, हरेन्द्र प्रताप सिन्हा, पृष्ठ 108.
3. मनुस्मृति, 2.21.
4. रघुवंश, 13.43-58.

कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक में अनेकशः नाटक के नायक चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर संगम का वर्णन है। यह ध्यातव्य है कि यह वर्णन आलंकारिक नहीं है। नायिका चित्रलेखा ने प्रतिष्ठान के भागीरथी एवं यमुना में प्रतिबिम्बित होने की बात की है।[1] अतः यह सिद्ध है कि प्रतिष्ठान संगम से बहुत दूर नहीं था। नन्दलाल डे तथा भगवत शरण उपाध्याय आदि विद्वानों ने प्रतिष्ठानपुर को वर्तमान झूँसी ही माना है। ह्वेनसांग को केसी (क्यासी पुत्र) कहा है। कुछ लोग इसका नाम हरभूमि बताते हैं। परिहार राजा त्रिलोचन पाल ने कन्नौज छोड़ कर यहीं अपनी राजधानी बनाई थी। अतः इसका अस्तित्व 11वीं शती (ई० 1024) के आसपास सिद्ध था।

नाटककार भवभूति (सातवीं शताब्दी) उत्तररामचरित नाटक में शृंगवेरपुर का उल्लेख करते हैं। राम चित्रवीथी में सीता को शृंगवेरपुर में स्थित इंगुदी का वृक्ष दिखाते हैं, जहाँ निषादराज गुह से उनकी भेंट हुई थी।[2]

एक अन्य स्थल पर ऋष्यशृंग मुनि के आश्रम (शृंगवेरपुर) में अष्टावक्र मुनि के आने का वर्णन है—

ऋष्यशृङ्गाश्रमादष्टावक्रः सम्प्राप्तः[3]

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् कुमारिल भट्ट (आठवीं शताब्दी) ने सम्भवतः प्रयाग में जन्म ग्रहण किया था, जीवन के अन्तिम काल में गुरुद्रोह के पश्चात्ताप स्वरूप उन्होंने संगम के तट पर आत्मदाह किया था। जगद्गुरु शंकराचार्य ने लोक प्रतिष्ठा के लिए उनका दर्शन किया था। उनके अन्तिम क्षणों में शंकराचार्य आदि अनेक विद्वान् प्रयाग में एकत्र हुए थे। नवीं शती में अनर्घराघव के रचयिता मुरारि कवि ने प्रयाग, संगम और अक्षयवट की भव्यता का वर्णन किया है। राम लक्ष्मण से कहते हैं—यह प्रयाग सभी तीर्थों में उच्च हैं। यहाँ रहने वाले संसार सागर के उस पार भी देख सकते हैं। सचमुच प्रयाग को लोग मोक्षद्वार कहते हैं जिसके दोनों भागों में बहने वाली गंगा-यमुना उसकी शोभा समृद्धि को बढ़ाया करती हैं—

प्रयागः सर्वतीर्थेभ्यस्तीर्थमुच्चैस्तरामयम्।
संसाराब्धेः परं पारमिहस्थैरवलोक्यते॥

---

1. विक्रमोर्वशीय, द्वितीय अंक (9 श्लोक); कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, पृ० 160.
2. उत्तररामचरित 2.21.
3. उत्तररामचरित, प्रथम अंक।

सत्यमेव प्रयागोऽयं मोक्षद्वारमुदीर्यते।
दैव्यौ यस्याभिमतो गङ्गायमुने वहतः श्रियम्।।

प्रसन्नराघव ग्रन्थ में राम लंका से लौटते समय सीता को भरद्वाज आश्रम दिखाते हैं—सीते! परस्पर विरोध छोड़ देने वाले हिंस्रजन्तुओं से युक्त यह भरद्वाज ऋषि का आश्रम स्थान है—**रामः–अयि तदिदं निर्मुक्तविरोधश्वापदं भगवतो भरद्वाजस्याश्रमपदम्।**[1]

प्रयाग की अर्वाचीन पण्डित परम्परा

स्वामी रामानन्द वैष्णव सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य थे। उनका जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में 1300 ई॰ के लगभग प्रयाग में हुआ था। प्रयाग में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् बारह वर्ष की आयु में काशी चले गये। काशी में रहते हुए उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। स्वामी रामानन्द कबीरदास के गुरु थे। **स्वामी वल्लभाचार्य** के प्रसिद्ध दो ग्रन्थों की प्रणयन भूमि प्रयाग ही है।

नरपतिजयचर्य्या नामक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि के उपलब्ध कुछ पत्रों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रयाग में चित्रकार और लेख विशारद साथ-साथ कार्य करते थे। नरपतिजयचर्य्या जैसे प्रसिद्ध ज्योतिष् ग्रन्थ के प्राप्त पत्रों में से सौभाग्य से अन्तिम पत्र सुरक्षित है। तत्कालीन संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् छत्रपति शिवाजी का राज्याभिषेक कराने वाले काशी निवासी **श्री विश्वेश्वर भट्ट** (गागा भट्ट) की देख-रेख में इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि तैयार की गई थी। इस प्रति की महत्त्वपूर्ण पुष्पिका द्रष्टव्य है—**इति श्री नरपतिजयचर्य्या संवत् 1782 शकाः 1647 कार्तिकशुक्लासप्तमी चन्द्रवासरे प्रयागनगरे अनूपमिश्राणां गेहे तिष्ठता श्री विश्वेश्वरभट्टानां सन्निधौ पठतानार्थेन लेखि पुस्तकं स्वार्थं परार्थं वा।। श्री।।**

इस पुष्पिका से यह निष्कर्ष निकलता है कि वृद्धावस्था में भट्ट जी प्रयाग आकर अनूप मिश्र के घर पर रुके और उन्हीं की देख-रेख में नरपतिजयचर्या की उक्त सचित्र प्रति तैयार की गई थी। इस प्रति के पृष्ठों पर बने आरेख किसी कुशल कलाकार द्वारा बनाये गये हैं। इसी प्रकार महामहोपाध्याय **श्री रुद्रधर शर्मा** द्वारा व्रतपद्धति की प्रति भी प्रयाग में लिखी गई थी। इस ग्रन्थ की संवत् 1823 की हस्तलिखित पूर्व प्रति उपलब्ध है। इस प्रति के लिपिकर्ता **श्री हरिभानु पाठक** थे। इसकी पुष्पिका भी द्रष्टव्य है—**''इति श्री महामहोपाध्याय (रुद्रधर्मशर्मणा) विरचिता व्रतपद्धतिः समाप्ता।। संवत् 1823 अश्विनी–**

1. प्रसन्नराघव, 779.

कृष्णाचतुर्थ्यां प्रयागमध्ये लिखितमिदं हरिभानुपाठकेन सारस्वतेन तत्र वासिनो॥ शुभमस्तु॥ सरस्वती गणेशाभ्यां नमः॥'' ऐसा भी प्रमाण मिलता है कि कुछ प्रतिलिपिकर्ता चित्रकार भी थे। वे ग्रन्थ की प्रतिलिपि तैयार करने के साथ-साथ चित्रांकन भी करते थे। नागेश भट्ट के शिष्य और आश्रयदाता **राजा रामवर्मा** 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में श्रृंगवेरपुर के विसेनवंशी राजा थे। इनके पिता का नाम **राजा हिम्मत वर्मा** था। इन्होंने वाल्मीकि रामायण पर रामायण तिलक टीका की रचना की जो अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन्होंने अध्यात्मरामायण पर भी सेतु नामक टीका का प्रणयन कर रामायण के आध्यात्मिक महत्त्व को अभिव्यक्त किया।

नागेश भट्ट का आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्रियों एवं वैयाकरणों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म महाराष्ट्रीय ब्राह्मण काले परिवार में हुआ था। पिता का नाम शिव भट्ट तथा माता का नाम सती था। ये श्रृंगवेरपुर के राजा राम वर्मा के कृपापात्र थे। भट्टो जी दीक्षित के प्रपौत्र हरि दीक्षित इनके गुरु थे। नागेश भट्ट का समय 18वीं शताब्दी का प्रारम्भ (1670-1750 ई॰) सुनिश्चित है।

वंशीधर एवं **शिवसहाय** ने सम्मिलित रूप से वाल्मीकि रामायण पर रामायण शिरोमणि टीका की रचना त्रिवेणी के तट पर प्रयाग में की। टीका ग्रन्थ में रचनाकाल संवत् 2921 (1865 ई॰) उल्लिखित है। यह टीका आधुनिक होने पर भी प्रौढ़ पाण्डित्यपूर्ण तथा विस्तृत है। बीसवीं शताब्दी में पंडित सम्राट् **वैष्णवाचार्य रामानन्द** वेदान्त के विशिष्ट विद्वान् थे। अपनी विद्वत्ता से वे अभिनव वाचस्पति कहलाते थे। उन्होंने तीन सौ से अधिक ग्रन्थों की रचना की, जो अधिकांश उपलब्ध हैं। प्रयाग से सम्बद्ध एक उल्लेख्य ग्रन्थ-प्रयाग माहात्म्य शताध्यायी का सम्पादन देवनारायण शुकहा के पिता द्वारा किया गया। भू परिक्रमणम् (विद्यापति), त्रिस्थलीसेतु, कृत्यकल्पतरु (भट्ट लक्ष्मीधर), तीर्थप्रकाश (वाचस्पति मिश्र) आदि रचनाएँ प्रयाग को केन्द्र में रखकर लिखी गईं। शंकरदिग्विजय (14वीं शती) **स्वामी विद्यारण्य** द्वारा तथा मन्त्ररामायणम् (17वीं शती) प्रयाग की भूमि में ही रचित थे।

स्पष्ट है कि प्रयाग के साहित्यिक नगरी होने से यहाँ संस्कृत साहित्य के रचयिता कवियों एवं आचार्यों का अभाव नहीं रहा है। इस नगर की तीर्थ के रूप में धार्मिक प्रसिद्धि रही, यह निर्विवाद है। यही कारण है कि प्रायः भारतीय ग्रन्थों में चाहे वे जिस क्षेत्र में रचे गये हों, प्रयाग की यत्र-तत्र चर्चा अवश्य हुई है।

विगत शताब्दी से प्रयाग में संस्कृत साहित्य के प्रणयन की कुछ कड़ियाँ

पुनः जुड़ती हैं, और यदा-कदा ऐसे उल्लेख मिलने लगते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि पिछले सौ वर्षों में कुछ ऐसे आचार्य व कवि हुए जिन्होंने संस्कृत भाषा में काव्यरचना अथवा टीकाग्रन्थ लिखकर संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया।

सन् 1883 ई॰ में सर्वप्रथम **रायबहादुर लाला सीताराम 'भूप'**, बी॰ ए॰ की रचनाएँ प्रकाशित हुईं। आप संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेज़ी, फारसी आदि कई भाषाओं के अच्छे ज्ञाता और ब्रजभाषा के कवि थे। संस्कृत के क्लिष्ट काव्यों तथा दुरुह नाटकों से हिन्दी जगत् को सबसे पहले आप ही ने परिचित कराया था। इसी काल में **मुंशी सदासुख लाल** (चुनार) ने प्रयाग में स्थाई रूप से बस कर 'श्रीमद्भागवत' की कथा को बोलचाल की हिन्दी गद्यभाषा में 'सुखसागर नाम से लिखा था।

इसी क्रम में एक नाम है लेखक शिरोमणि **पण्डित देवकीनन्दन तिवारी** का। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में साहित्य जगत् में स्थापित उनके व्यङ्गपूर्ण लेखों, विनोदमिश्रित कविताओं आदि की बड़ी धूम थी। उनकी प्रसिद्ध कृति जयन्त सिंह की पंक्तियाँ पाठकों को कण्ठस्थ थीं। उन्होंने वाल्मीकि रामायण का दोहा चौपाइयों में सुविधापूर्ण अनुवाद किया था जो दुर्भाग्य से अनुपलब्ध है। 'प्रयाग समाचार' के प्रथम कुशल सम्पादक आप ही थे।[1]

पण्डित सरयू प्रसाद मिश्र ने हिन्दी पद्यों में रघुवंश का हिन्दी अनुवाद उन्हीं वृत्तों में किया था। वृत्तों या छन्दों का हिन्दी में प्रयोग भले ही बहुत सफल या प्रसिद्ध न रहा हो परन्तु इससे दो लाभ हुए—एक तो इसने हिन्दी के व्यापक पाठकों को रघुवंश और उसके छन्दों से परिचित करा दिया दूसरे इस नए प्रयोग ने भविष्य में संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद के मार्ग प्रशस्त कर दिए। अनुवादक को सफल अनुवाद करने के लिए एक पृष्ठभूमि मिल गई। इस ग्रन्थ की एक और विशेषता यह थी कि इसमें लगभग तीस पृष्ठों की एक भूमिका भी उन्होंने लिखी थी जिसमें पण्डित सरयू प्रसाद ने अपने विद्वान् पिता एवं अन्य परिवारजनों का परिचय दिया था।

पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी ने कालिदास की प्रसिद्ध कृति मेघदूत का हिन्दी पद्यमय अनुवाद कर ख्याति अर्जित की थी। आप हिन्दी चित्रमयजगत् के सम्पादक भी थे। ब्रजवासी श्री **श्रीधर पाठक** ने इलाहाबाद (लूकरगंज) में सन् 1906 में स्थाई वास कर कालिदास-रचित ऋतुसंहार के प्रथम तीन सर्गों का ब्रजभाषा में तथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का 'श्रीगोपिकागीत' नाम से भावानुवाद किया था।[2]

1. हिन्दी के बहाने, हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ॰ 106.
2. हिन्दी के बहाने, हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ॰ 107.

सन् 1907 में सेना में डॉक्टर **मेजर बामनदास बसु** ने पुणे में सेवा से अवकाश लेकर हिन्दुओं की एक पवित्र पुस्तकमाला 'दि सेक्रेड बुक ऑफ दि हिन्दुज' के नाम से प्रारम्भ की थी। जिसमें संस्कृत धर्मग्रन्थों के अनुवाद अंग्रेज़ी में प्रकाशित किये थे। मेजर बसु के ज्येष्ठ भ्राता **श्रीशचन्द्र बसु विद्यार्णव** भी संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् तथा उद्‌भट लेखक थे, जिन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है। उनके ग्रन्थों में अष्टाध्यायी भाष्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। सन् 1891 में पाणिनि ऑफिस के नाम से साहित्यिक संस्था की स्थापना कर उन्होंने संस्कृत के प्रति निष्ठा प्रदर्शित की थी। पं० मोहनलाल शांडल अंग्रेजी के विद्वान् थे किन्तु उन्होंने संस्कृत के कई ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी भाषा में किया था जो पाणिनि प्रेस से प्रकाशित हुए थे। सन् 1914-1917 पर्यन्त संस्कृत की एक मासिक पत्रिका 'शारदा' साहित्याचार्य **पण्डित चन्द्र शेखर ओझा** शास्त्री ने प्रकाशित की थी। इसमें सामयिक विषयों पर स्तरीय लेख तथा टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थी परन्तु मात्र 3 वर्ष ही इस पत्रिका का जीवन काल रहा।

महामहोपाध्याय **डॉ० गंगानाथ झा** ने संस्कृत के कतिपय दार्शनिक तथा साहित्यिक ग्रन्थों के अनुवाद अंग्रेज़ी भाषा में किये थे।

पण्डित इन्द्र नारायण द्विवेदी गणित के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने गणित ज्योतिष् पर एक विशाल ग्रन्थ लिखा जो अप्रकाशित रह गया। प्रयाग में आपका निवास सराय अकिल नामक कस्बा था।

सन् 1850 में लब्ध जन्म **पण्डित क्षेमकरण त्रिवेदी** वयोवृद्ध वैदिक पण्डित थे। बड़ौदा की राजकीय वैदिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर वे कायस्थ (सक्सेना) होते हुए भी स्वयं को त्रिवेदी लिखते थे। उन्होंने परिश्रमपूर्वक अथर्ववेद तथा गोपथब्राह्मण के भाष्य संस्कृत और हिन्दी में विस्तारपूर्वक सन् 1935 में प्रकाशित किये थे।

सन् 1930 के लगभग दक्षिण भारत के तिरूनलवेली जिले के वाहकुलभ ग्राम निवासी संस्कृत विद्वान् **पण्डित वेंगुशिवन शास्त्री** प्रयाग में आकर बसे और शिवमठ की स्थापना कर शिवपंचायतन पूजा आरम्भ की। कांचीकामकोटि पीठ के **परमाचार्य राघवेन्द्र सरस्वती** ने यहीं शिवमठ में रहकर शिवस्तुति में सिद्धेश्वराष्टक की रचना की थी।[1]

प्रसिद्ध **संन्यासी श्री मंगलानन्दपुरी** संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेज़ी और फारसी के अच्छे विद्वान् थे। दारागंज के प्रसिद्ध विद्वान् **पं० कमलाकान्त मिश्र**

---

1. तीर्थराज प्रयाग, रतिभान त्रिपाठी, पृ० 65-66.

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रवक्ता थे। उनके पुत्र **डॉ॰ विजय नारायण मिश्र** भी उसी विश्वविद्यालय में पुस्तकालयाध्यक्ष थे। उनके सम्पादन में ही विश्वविद्यालय की संस्कृत पत्रिका प्रकाशित होती थी।

पण्डित संगमलाल शास्त्री ने ज्योतिष् के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए ज्योतिष सोपान आदि लघु पुस्तिकाओं का प्रयाग से प्रकाशन किया था। दारागंजवासी **पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री** ने महाभारत का हिन्दी अनुवाद किया था जो इण्डिया प्रेस से प्रकाशित हुआ था।

उच्चकोटि के वैयावरण गुरु विरजानन्द के शिष्य **महर्षि दयानन्द** ने वेदों के अध्ययन की एक नई परम्परा का सूत्रपात किया, जो लीक से हट कर थी। इसी क्रम में भारत राष्ट्र को एक नई दिशा दिखाने के लिए उन्होंने अनेक समाजोपयोगी स्तरीय ग्रन्थों की रचना की। यह सुखद है कि उन्होंने अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' का लेखन सन् 1874 में इलाहाबाद नगर में ही प्रारम्भ किया। उनका यह ग्रन्थ आर्यजनों के लिए पूज्य है और सामान्य जन के लिए जीवन की दिशा बदल देने वाला।[1]

दानसाहित्य

प्रयाग आदिकाल से ही धार्मिक नगरी के रूप में ख्यात है। त्रिवेणी की अवस्थिति से युक्त होने के कारण यहाँ गंगा के तट पर दान आदि कृत्यों का विशेष महत्त्व है। अतः दान, व्रत, संकल्प आदि विषयों पर यहाँ समय-समय पर लघु पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई हैं। कोलकल्प प्रयाग में लिखित व्रत की महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। रुद्रदेव शर्मा की व्रतोत्सव नितान्त मौलिक रचना है। लक्ष्मीधर कायस्थ रचित कृत्य-कल्पतरु 18 भागों में लिखित ग्रन्थ है। अरैल में औरंगज़ेब के द्वारा प्रदत्त दान का विवरण शिलालेख पर अंकित है।

कौशाम्बी में संस्कृत सर्जन

भगवान बुद्ध के समय अवस्थित 16 विशाल जनपदों में से एक वत्सराज उदयन की नगरी कौशाम्बी प्रयाग के पश्चिम भूभाग पर गंगा और यमुना के मध्य की अन्तर्वेदी (दोआब) है। यह यमुना के उत्तरी तट पर परगना करारी से लगभग 38 किलोमीटर पश्चिम और कुछ दक्षिणकोण में स्थित है। शतपथ ब्राह्मण, गोपथब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण में कौशाम्बी को एक बृहद विद्यापीठ कहा गया है। पाणिनी के सूत्र और महाभाष्य में भी प्रसंगतः कौशाम्बी का उल्लेख हुआ है।[2] चन्द्रवंशी नरेशों में राजा पुरुरवा की दसवीं पीढ़ी में विद्यमान

1. नार्दर्न इण्डिया पत्रिका, फरवरी 11-2007.
2. तेन निर्वृत्तम्, पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4.2.67.

राजा कुशम्ब द्वारा बसाए जाने के कारण इस नगरी का नाम कौशाम्बी हुआ।[1]

महात्मा बुद्ध तथा तीर्थंकर जैन महावीर ने तात्कालिक राजधानी कौशाम्बी में लगभग दो वर्ष प्रश्रय लेकर अपने अमृत वचनों से प्रयाग की जनता को लाभान्वित किया था। इसी पुण्य भूमि में छठे तीथंकर पद्मप्रभु ने जन्म लेकर, तप और ज्ञान साधना की। समुद्रतटीय नगरी द्वारका के जलविहीन होने पर भगवान् श्रीकृष्ण तथा भ्राता बलराम ने कौशाम्बी के वनों में ही विचरण किया था। वत्सराज उदयन के राज्यकाल में वत्स नामक कौशाम्बी जनपद की पर्याप्त प्रगति हुई। प्रसिद्ध कामशास्त्री मलंग वात्स्यायन ने वत्सदेश को अपने जन्म-कर्म से अनुगृहीत किया था, अतः वे वात्स्यायन कहलाए। वात्स्यायन का न्यायसूत्र (चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व) वत्स देश में ही प्रणीत हुआ था। उदयन—वासवदत्ता की प्रेम कथाओं पर कौशाम्बी के एक प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् ने नाटक की रचना की थी।

श्रृंगवेरपुर में संस्कृत सर्जन

प्रयाग के सोरांव परगना नवाबगंज में गंगा के उत्तरी तट पर रामचौरा रोड स्टेशन से 3 किलोमीटर दक्षिण और प्रयाग से 20 मील पश्चिमी और उत्तरी कोण पर श्रृंगवेरपुर है। महाविद्वान् मन्त्रद्रष्टा विभाण्डक के सुयोग्य पुत्र श्रृंगी ऋषि का आश्रम श्रृंगवेरपुर रामायण काल से ही प्रसिद्ध है। वनगमन के समय प्रयाग आने के लिए राम ने निषादराज गुह की नौका से गंगा पार की थी। वे निषादराज के आग्रह पर एक रात यहाँ रुके थे। यहाँ राजा दशरथ के जमाता ऋष्यश्रृंग तथा उनकी पत्नी दशरथसुता शान्ता देवी का मन्दिर है। राजा दशरथ के (सन्तान प्राप्ति के लिए) पुत्रेष्टि याग को श्रृंगी ऋषि ने ही सम्पन्न कराया था। भगवान् राम, माँ सीता तथा लक्ष्मण द्वारा गंगा नदी पार करने का घाट रामचौरा कहलाता है। रामचौरा ग्राम में गंगा किनारे एक मन्दिर में रामचन्द्र के चरणचिह्न अंकित हैं। श्रृंगवेरपुर में बिखरे असंख्य पुरातात्त्विक अवशेषों के साथ ही उपलब्ध अनेक साहित्यिक कृतियों से इस अवधारणा को बल मिला है कि श्रृंगवेरपुर की साहित्यिक परम्परा भी अपने नाम के अनुरूप गौरवशाली है। आज इसका नाम बिगड़ कर सिंगरौर हो गया है। राजा रामसिंह वर्मा, नागेश भट्ट आदि कवियों के उत्कृष्ट काव्य ने साहित्य एवं रचनाधर्मिता को एक नई दिशा प्रदान कर क्षेत्र की कीर्ति बढ़ाई है।[2] प्रो॰ संगम लाल पाण्डेय (इलाहाबाद विश्वविद्यालय) ने 'श्रृंगवेरपुरगौरवम्' ग्रन्थ रच कर श्रृंगवेरपुर को प्रसिद्ध करने का प्रयास किया है।

1. महाभारत, आदिपर्व, 64-44.
2. श्रृंगवेरपुर का साहित्य, भृगु कुमार मिश्र।

प्रतिष्ठानपुर में संस्कृत सर्जन

यदुवंशी शासक पुरुरवा और स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी—पराक्रम और अलौकिक सौन्दर्य का संयोग प्रतिष्ठानपुर की महिमा को द्विगुणित करता है। चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर का उल्लेख कालिदास के प्रसिद्ध नाटक विक्रमोर्वशीय में हुआ है। समुद्रगुप्त के सम्मान में उनके अमात्य हरिषेण का शिलालेख यहीं से उपलब्ध हुआ है। झूंसी के उत्खनन से प्राप्त अवशेष बताते हैं कि मध्य पाषाण कालीन मानव ने इस स्थान पर अपने क्रिया-कलाप प्रारम्भ कर दिए थे। प्राचीन झूँसी में एक स्थान हंसकूप और हंसतीर्थ है जिसकी चर्चा मत्स्य पुराण तथा वराहपुराण में उपलब्ध है। राजा अमरसिंह ने प्रतिष्ठानपुर में ही प्रसिद्ध अमरकोष की रचना की थी।

वारणावर्त में संस्कृत सर्जन

स्थानीय दन्तकथा के अनुसार प्रयाग नगर से 22 मील पूर्व तथा हंड़िया खास स्टेट से तीन मील दक्षिण गंगा के किनारे लगभग 29 बीघे का एक बड़ा टीला है जो लाक्षागृह नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थल को ही वारणावर्त माना गया है। महाभारत के आदि पर्व में पाण्डवों के वारणावर्त नगर में जाकर समारोह में सम्मिलित होने तथा उसके पश्चात् लाक्षागृह के निर्माण तथा उसमें पाण्डुपुत्रों के भस्म होने की कथा प्राप्त होती है। पाण्डव लाक्षागृह से निकल कर लगभग छह मील गंगा के किनारे-किनारे पश्चिम की ओर चल कर सिरसा के सामने से गंगा पार कर दक्षिण दिशा में मेजा जनपद की ओर गए थे। इस सम्बनध में विवाद है कि जिला मेरठ के बरनाला ग्राम को भी वारणावर्त माना जाता है परन्तु प्रयाग के वारणावर्त टीले से महाभारत कालीन मुद्राएँ प्राप्त होने से यही महाभारत वर्णित वारणावर्त सिद्ध होता है।[1]

अलर्कपुर में संस्कृत सर्जन

अलर्कपुर का सम्बन्ध नृपति इल से था जो भगवान् भूतभावन की विहार भूमि शरवण में प्रवेश करने के कारण स्त्री रूप इला बन गए थे। इला और बुध का मिलन क्षेत्र अलर्कपुर सम्प्रति अरैल के रूप में विद्यमान है। व्याकरणाचार्य वार्तिककार कात्यायन की जन्म स्थली अलर्कपुरी है। बल्लभाचार्य ने यहीं अपना आश्रम स्थापित किया था। महाप्रभु चैतन्य यमुना पार कर इसी आश्रम में बल्लभाचार्य से मिलने आए थे। सुप्रसिद्ध सन्त सच्चा बाबा का आश्रम तथा संस्कृत महाविद्यालय यहाँ विद्यमान है। महर्षि महेश योगी द्वारा स्थापित

1. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 142.

महर्षि वेद विद्यालय में भी संस्कृत अध्यापन होता है।[1]

प्रयाग की संस्कृत पाठशालाएँ

गंगा के पश्चिमी तट स्थित **कुलपति भरद्वाज** के **तकनीकी विश्वविद्यालय** में वनगमन के समय राम, पत्नी सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ आए थे तथा एक रात्रि विश्राम किया था, यह सर्वविदित है। महाकवि अश्वघोष के अनुसार भरद्वाज विश्वविद्यालय में लगभग 10 हजार विद्यार्थियों को वेद-साहित्य आदि के साथ-साथ आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा भी दी जाती थी। कुलपति द्वारा विमान उड्डयन कला पर लिखा गया ग्रन्थ—यन्त्रसर्वस्वम् अथवा सर्वतन्त्रसंग्रह—इसका ज्वलन्त उदाहरण है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी अपने यात्रा-विवरण में इन तथ्यों की पुष्टि की है। प्रसिद्ध रोमन इतिहासकार प्लिनी ने भी पाटलिपुत्र की राजसभा से लौटते हुए मार्ग में एक सप्ताह यहाँ निवास किया था। उसने प्रयाग को विद्यानगरी कहा है। भरद्वाज विश्वविद्यालय के विनाश के कारणों के विषय में प्रयाग का इतिहास मौन है। अलबरुनी ने कारणों का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि कौशाम्बी के उत्थान से प्रयाग की उपेक्षा हुई और कौशाम्बी ही धीरे-धीरे उत्तराखण्ड के विद्याकेन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। कौशाम्बी के पतन के बाद प्रतिष्ठानपुर की उन्नति हुई और सम्पूर्ण देश की आँखें उसी पर केन्द्रित हुईं। प्रयाग नगर के दक्षिण भाग में स्थित ऋषि अत्रि का आश्रम (अत्रि + अनसूया = अतरसूया) तथा झूँसी स्थित दुर्वासा आश्रम भी शिक्षा के प्राचीन विद्याकेन्द्र थे।

मुगलकाल में सम्राट् अकबर एक बार स्वनिर्मित किले में 4 माह तक रुके थे, उस समय अध्ययन प्रेमी सम्राट् के पास सम्पूर्ण देश से महाविद्वान् आते थे, और धर्म-दर्शन आदि विषयों पर चर्चाएँ होती थीं।

अंग्रेज़ी शासन में प्रारम्भ में तो प्रयाग में शिक्षा-दीक्षा की सुव्यवस्था न थी किन्तु शीघ्र ही विद्या के प्रसार-प्रचार की आवश्यकता अनुभव करते हुए वायसराय लॉर्ड नार्थबुक ने 9 दिसम्बर, 1873 को **इलाहाबाद विश्वविद्यालय** की स्थापना की नींव डाली तभी से यह विश्वविद्यालय निरन्तर प्रगति करता हुआ राष्ट्र को पाँच प्रधानमन्त्री दे चुका है। प्रयाग जिले के कस्बा शहज़ादपुर (तहसील-सिराथू) के रईस मुंशी कालीप्रसाद कुलभास्कर ने विशेषकर कायस्थ बालकों की शिक्षा के लिए कायस्थ पाठशाला कालेज की स्थापना की। आरम्भ में वहाँ केवल संस्कृत शिक्षण की व्यवस्था की गई थी।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संस्कृत विभाग में **पं॰ आदित्य राम भट्टाचार्य**

---

1. तीर्थराज प्रयाग, रतिभान त्रिपाठी, पृ॰ 106.

(1873-1909) को प्रथम प्रोफेसर-अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया था। संस्कृत विभागाध्यक्ष पद को **प्रो॰ गंगा नाथ झा** (1909-1918), **प्रो॰ प्रसन्न कुमार आचार्य** (1928-1949), **प्रो॰ बाबू राम सक्सेना** (1950-1958), **प्रो॰ क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय** (1958-1961), **प्रो॰ सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी** (1961-1966), **प्रो॰ एम॰ हिरलेकर** (1966-1967), **प्रो॰ आद्याप्रसाद मिश्र** (1967-1979), **प्रो॰ लक्ष्मी कान्त दीक्षित** (1979-1980), **प्रो॰ चण्डिका प्रसाद शुक्ल** (1980-1991) **प्रो॰ सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव** (1992-1995), **प्रो॰ ज्ञानदेवी श्रीवास्तव** (1995-1998), **प्रो॰ हरिशंकर त्रिपाठी** (1998-2000), **प्रो॰ मृदुला त्रिपाठी** (2001-2008), **प्रो॰ राजलक्ष्मी वर्मा** (2008-2010), **प्रो॰ हरिदत्त शर्मा** (2010- 2012), **प्रो॰ रामकिशोर शास्त्री** (2012-2014), **प्रो॰ किश्वर ज़बीं नसरीन** (2014 से अद्यावधि आदि) प्रसिद्ध विद्वानों ने अलंकृत किया है।

शुद्ध संस्कृत पाठशालाओं की दृष्टि से मालवीय नगर अहियापुर में सन् 1858 में श्री हरिदेव ब्रह्मचारी द्वारा स्थापित **धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला** सर्वाधिक प्राचीन है। सन् 1858 में यह पाठशाला सरकारी सहायता से चल रही थी। इसमें वेद व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी तथा बालक सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की संस्कृत परीक्षा उत्तीर्ण करते थे। उस समय छात्र संख्या 124 थी जो दस वर्ष बाद लगभग 140 हो गई थी। आज संस्कृत शिक्षा के प्रसार के अभाव में छात्र संख्या अधिक नहीं है। पं॰ मदन मोहन मालवीय इसी पाठशाला के विद्यार्थी थे। गोरखपुर के संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् पंडित क़ाली प्रसाद मिश्र की कर्मभूमि, प्रयाग की **धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला** थी। वे इस पाठशाला के प्रथम प्राचार्य थे। इसके पश्चात् साहित्य के विद्वान् पंडित रामचरित्र द्विवेदी, वेदान्त के पडित रामशंकर द्विवेदी, सुन्दर संस्कृतनिष्ठ व्याख्यान में प्रवीण पंडित भूपेन्द्र पति त्रिपाठी, संस्कृत ज्ञानी पं॰ रामचन्द्र मालवीय और विद्वान् प्राचार्य राम लखन इत्यादि ने अपनी विद्वत्ता से उक्त पाठशाला के प्राचार्य पद को क्रमशः अलंकृत किया।

लगभग 40 वर्ष पश्चात् झूँसी के निकट **छतनाग** में पण्डित गुरुचरण उपाध्याय ने व्याकरण की शिक्षा की दृष्टि से **पाठशाला** स्थापित की थी। सन् 1930 में इस पाठशाला में 11 विद्यार्थी थे, जिनमें से 6 की भोजन व्यवस्था पाठशाला में ही थी।

सन् 1891 में पंडित मथुराप्रसाद त्रिपाठी इत्यादि के सहयोग से **श्री सरयूपारीण संस्कृत पाठशाला** की स्थापना हुई। इस पाठशाला में वेद

व्याकरण तथा साहित्य की शिक्षा दी जाती थी तथा काशी की परीक्षा होती थी। सन् 1937 में यहाँ छात्र संख्या 50 थी, अधिकांश छात्र पाठशाला में ही रहा करते थे।

इसी काल में झूँसी के प्रसिद्ध रईस स्वर्गीय लाला किशोरीदास जी ने **बाई का बाग** में एक **पाठशाला** खोली थी। श्री सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी से संचालित यह पाठशाला वेद-वेदांग, ज्योतिष आदि की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध थी। सन् 1937 में यहाँ विद्यार्थी संख्या लगभग 100 थी।

सन् 1913 में स्वामी योगानन्द ने झूँसी में एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना की। इसका विशाल भवन गंगा के तट पर रेलवे पुल के निकट है। **श्री तीर्थराज संन्यासी संस्कृत पाठशाला** नामक इसमें वेदान्त और व्याकरण की समुचित शिक्षा की व्यवस्था है।

महानिर्वाणी अखाड़े के भूतपूर्व महन्त **श्री बालकपुरी** ने सन् 1916 में एक संस्कृत पाठशाला खोली थी। उसमें 40 विद्यार्थी पढ़ते थे और भोजन, वस्त्रादि पाते थे।

नवम्बर सन् 1925 में हीवेट रोड पर **श्री सौदामिनी संस्कृत विद्यालय** की स्थापना हुई। इसको श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी परमहंस की प्रेरणा से उनके एक कलकत्ता निवासी शिष्य श्री सन्तोष चन्द्र वन्द्योपाध्याय ने अपनी माता के नाम से एक लाख रुपए दान देकर 30 विद्यार्थियों को प्रवेश देकर स्थापित किया था। इस आरम्भिक अवधि में पं० जयकिशोर झा के प्राचार्यत्व में तथा श्री पण्डित हरिहर प्रसाद, पण्डित छविनाथ, पण्डित लोकनाथ, पण्डित टेकनाथ झा, पण्डित रामावतार शास्त्री, पण्डित कृपाशंकर त्रिपाठी, पण्डित उमाशंकर द्विवेदी तथा पण्डित छोटेलाल आदि मूर्धन्य संस्कृत विद्वानों के अध्यापकत्व में विद्यालय का पठन-पाठन सुचारु रूप से चलता था।

सन् 1988-89 में इस संस्था ने अपनी भव्य हीरक जयन्ती मनाई थी। उस समय विद्यार्थियों की संख्या भी लगभग 160 थी। आज यहाँ 80 विद्यार्थियों को आवासीय तथा भोज-सुविधा के साथ निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था है वर्तमान प्राचार्य श्री नन्द कुमार मिश्र के संरक्षण में तथा प्रो० महेश चन्द्र चट्टोपाध्याय के प्रबन्धकत्व में। विद्यार्थियों को वैदिक तथा लौकिक संस्कृत की शिक्षा दी जाती है तथा सरकारी प्राच्य विभाग की परीक्षाएं मान्य हैं। यह गौरव का विषय है कि सन् 2000 (भारत सरकार द्वारा घोषित संस्कृत वर्ष) से यह महाविद्यालय निरन्तर सूर्य षष्ठी के अवसर पर नवम्बर मास में त्रिदिवसीय शोध संगोष्ठी का आयोजन करता है तथा तबसे ही प्रतिवर्ष शोधपत्रिका का प्रकाशन भी करता है।

सन् 1926 में **दारागंज संस्कृत पाठशाला** की स्थापना निर्वाणी अखाड़े

के भूतपूर्व महन्त स्वर्गीय बालकपुरी जी ने की थी। इसमें विद्यार्थियों के भोजन व आवास की उचित व्यवस्था है।

सन् 1928 में तहसील सोरांव के सिंगरौर नामक स्थान में गंगा तट पर **श्री गौरीशंकर स्मारक संस्कृत पाठशाला** शृंगवेरपुर की स्थापना हुई थी। श्री गौरीशंकर जी की पत्नी श्रीमती गोधाकुंवरि जी ने इसे अपने स्वर्गीय पति की स्मृति में स्थापित किया था। इसमें व्याकरण, कर्मकाण्ड, ज्योतिष, वैद्यक और हिन्दी की शिक्षा दी जाती थी। सन् 1937 में यहाँ 50 छात्र शिक्षा पा रहे थे।

सन् 1955 में इन पाठशालाओं के अतिरिक्त **श्री लक्ष्मी नारायण धर्मोपदेश संस्कृत पाठशाला, श्री हर्ष संस्कृत पाठशाला, श्री त्रिवेणी संस्कृत पाठशाला, श्री किशोरी लाल संस्कृत पाठशाला, रामदेशिक संस्कृत पाठशाला** उस समय की उल्लेखनीय संस्कृत पाठशालाएँ हैं, जो आज भी संस्कृत शिक्षण के प्रसार में संलग्न हैं।

वर्तमान समय में **पं० शिवशर्मा संस्कृत पाठशाला** की स्थापना पंडित आदित्य राम भट्टाचार्य ने अपने गुरु पंडित शिवशर्मा की स्मृति में की थी। पंडित शेषमणि मिश्र यहाँ के विद्वान् प्राचार्य थे।

पं० किशोरीलाल बेनीमाधव पाठशाला, बैरहना के प्राचार्य पद पर पंडित देवी दत्त जी प्रतिष्ठित थे। पाठशाला के प्रसिद्ध प्राचार्य पण्डित रामलखन भी विद्वानों की कोटि में गण्य थे।

बैरहाना पाठशाला के प्राचार्य पंडित नाथूराम पाठक ज्योतिष् के अच्छे विद्वान् थे। तीर्थ पंचांग उन्होंने ही प्रारम्भ किया था।

श्री महानिर्वाणी वेद पाठशाला, दारागंज में ज्योतिष् अध्यापक पंडित रघुवीर ज्योतिषी भी अपने ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे। प्रयाग पंचांग के प्रणेता **पंडित हरिशरण द्विवेदी** यहीं अध्यापक थे। डॉ० श्री राम सिन्हा यहाँ गणित विभाग में प्रोफेसर थे। कीडगंज के पंडित सोमेश्वर दत्त पाठक, पंडित रामेश्वर दत्त पाठक तथा पंडित उदित नारायण द्विवेदी आनापुर के नाम उल्लेख्य है।

प्रथम वैदिक विद्यालय ऊँचा मण्डी में स्थापित किया गया। इसका वर्तमान नाम **श्री हरीराम गोपालकृष्ण सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालय** है। प्रसिद्ध विद्वान् छेदी गुरु इसके अध्यापक थे। इसके अतिरिक्त भी अनेक पाठशालाएँ जनपद में अवस्थित हैं जिनमें विद्यार्थियों के भोजन एवं आवास की निःशुल्क व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है।

प्रयाग की संस्कृत संस्थाएँ

संस्कृत भारती संस्था का वैयक्तिक रूप संस्थाओं की चर्चा के प्रसंग में बिल्कुल पृथक् और विशिष्ट है। संस्कृत सम्भाषण और संस्कृत ज्ञानवर्धन के लिए समर्पित यह संस्था 'हिन्दुत्व' का ध्वज फहराने वाली विश्वप्रसिद्ध संस्था राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का प्रकल्प है। पं॰ चमूकृष्ण शास्त्री के महामन्त्रित्व में इस संस्था ने सन् 1990 से सर्वप्रथम संस्कृत सम्भाषण की दस दिवसीय कक्षाएँ प्रारम्भ की थीं। उसके पश्चात् क्रमशः दस तथा पन्द्रह दिवसीय आवासीय शिविर, पत्राचार पाठ्यक्रम, संस्कृत गीत गायन, संस्कृत संगोष्ठी, संस्कृत शोभायात्रा आदि कार्यक्रमों द्वारा यह संस्था संस्कृत भाषा की जीवन्तता के लिए निरन्तर प्रयासरत है। इसी परिश्रम का परिणाम है कि आज नगर के विभिन्न महाविद्यालयों के अनेक शिक्षक तथा छात्र तथा विश्वविद्यालय के छात्र अनवरत संस्कृत सम्भाषण में अपने विचार अभिव्यक्त करने में सहज समर्थ हैं।

त्रिवेणिका संस्कृत परिषद्—संस्कृत भाषा और साहित्य के लिए मन में अपार सम्मान और जीवन्तता बनाए रखने की भावना से डॉ॰ आनन्द कुमार श्रीवास्तव (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, सी॰ एम॰ पी॰ डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद), डॉ॰ सुरेन्द्र पाल सिंह (उपाचार्य, संस्कृत विभाग, सी॰ एम॰ पी॰ डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद) तथा डॉ॰ उर्मिला श्रीवास्तव (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, आर्यकन्या डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद) ने 5 सितम्बर 2011 को त्रिवेणिका संस्कृत परिषद् की स्थापना की। सम्पूर्ण राष्ट्र से संस्कृत क्षेत्र में महनीय विद्वानों के संरक्षकत्व में परिषद् के अन्तर्गत 'वाङ्मयम्' नामक षाण्मासिकी शोधपत्रिका के प्रकाशन का दायित्व लिया गया। इसके अतिरिक्त स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर संस्कृत के प्रति रुचि बनाए रखने के लिए विभिन्न प्रतियोगिताओं के आयोजन का संकल्प लिया गया।

हर्ष का विषय है कि 'वाङ्मयम्' पत्रिका के स्तरीय चार अंक प्रकाशित हो चुके हैं। परिषद् के तत्त्वावधान में दुर्लभ शलाका परीक्षा, निबन्ध लेखन, वादविवाद, व्याकरण परिचर्चा, श्लोक गायन, शुद्ध पाठ, व्याख्यान आदि प्रतियोगिताओं का निरन्तर आयोजन हो रहा है। विजेता और प्रतिभागी छात्र-छात्राओं को प्रमाणपत्र व पुरस्कारों से सम्मानित किया जाता है।

शंकराचार्य आश्रम

इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं कि आदि शंकराचार्य कुम्भ मेले के अवसर पर प्रयाग आए थे, गंगा तट पर सम्राट् आलमगीर के युग में उनका मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ हुआ था। भारतधर्म महामण्डल लहुराबीर वालों ने पीठ का

विस्तार किया और ब्रह्मानन्द जी को शंकराचार्य के पद पर प्रतिष्ठित किया। ब्रह्मानन्द सरस्वती ने सन् 1948 में प्रयाग में शंकराचार्य पीठ का उद्धार किया। अनन्तर शान्तानन्द सरस्वती विद्वान् पीठाधीश हुए। वैयाकरण विश्वदेवानन्द सरस्वती भी शंकराचार्य पद पर प्रतिष्ठित थे। वर्तमान शंकराचार्य वासुदेवानन्द जी सरस्वती ने अपना शोधप्रबन्ध संस्कृत में लिखा है जो प्रकाशित है। संस्कृत सम्भाषण की विद्या पर भी उन्हें पूर्ण अधिकार है। वे सर्वग्राह्य संस्कृत में धाराप्रवाह व्याख्यान देते हैं।

वर्तमान विद्वान्—संस्कृत विद्या पर सर्वतोमुखी वर्चस्व रखने वाले वर्तमान विद्वानों में प्रो॰ आद्या प्रसाद मिश्र, प्रो॰ चण्डिका प्रसाद शुक्ल, प्रो॰ सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, प्रो॰ सुरेश चन्द्र पाण्डेय, प्रो॰ अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो॰ जगन्नाथ पाठक, प्रो॰ हरिदत्त शर्मा, प्रो॰ राजलक्ष्मी, प्रो॰ आनन्द कुमार श्रीवास्तव, प्रो॰ बनमाली विस्वाल, प्रो॰ गिरजा शंकर शास्त्री, प्रो॰ जनार्दन मणि आदि संस्कृत साहित्य तथा भाषा को जीवित रखे हैं। आज भी प्रयाग विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों के मेधावी आचार्यगण पुस्तकों एवं टीकाग्रन्थों की रचना कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। वस्तुतः आधुनिक युग में प्रयाग में संस्कृत भाषा में निबद्ध साहित्य का सृजन निरन्तर हो रहा है।

शिलालेख—सौभाग्य से प्रयाग जनपद में प्राचीन अभिलेख पर्याप्त संख्या में दृष्टिगोचर होते हैं। ये अभिलेख साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। प्रयाग के स्तम्भ में सम्राट् अशोक की प्रशस्ति अंकित है। सम्राट् औरंगज़ेब के द्वारा प्रदत्त दान का विवरण भी शिलालेख पर अंकित मिलता है। समुद्रगुप्त के सम्मान में उनके अमात्य हरिषेण का संस्कृत गद्यपद्यमय शिलालेख प्रयाग से ही प्राप्त हुआ था। इलाहाबाद में प्राप्त सन् 1948 के एक गुप्त अभिलेख से ज्ञात होता है कि पांचवी सदी में भारत को दाशमिक पद्धति का ज्ञान था। करछना तहसील के गढ़वा स्थल से एक चन्द्रगुप्त, एक स्कन्दगुप्त और दो कुमारगुप्त के अभिलेख प्राप्त हुए हैं जो प्रयाग की तात्कालिक महिमा को दर्शाते हैं।[1]

संस्कृत पत्र-पत्रिकाएँ—प्रयाग से यदा-कदा अथवा अनवरत रूप से संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रायः होता रहा है। सम्प्रति प्रकाश्यमान संगमनी, दृक्, वाङ्मयम्, गंगा नाथ झा रिसर्च जर्नल शोध पत्रिकाएँ संस्कृत के क्षेत्र में नवीन शोधों को प्रोत्साहित कर रही हैं तथा संस्कृत अध्येताओं के लिए भी अध्ययन के नए आयाम विस्तारित कर रही हैं। इसी क्रम में 'श्री भट्टसत्ता' नामक समाचार पत्र का प्रकाशन स्वयं में एक उपलब्धि है। डॉ॰ उर्मिला

---

1. अलाफिलेक्स, 9-10 जनवरी, 2015, स्मारिका।
विस्तृत विवरण के लिए नवम अध्याय देखें।

श्रीवास्तव और डॉ॰ आनन्द कुमार श्रीवास्तव के बौद्धिक सहयोग और श्री प्रभाकर भट्ट के आर्थिक सहयोग से श्री भट्टसत्ता साप्ताहिक समाचार पत्र का प्रकाशन विगत चार वर्षों से निरन्तर हो रहा है। इस समाचार पत्र की विशिष्टता यह कि यह नितान्त आधुनिक शैली पर आधारित है अर्थात् राजनीति, साहित्य, क्रीडा, चलचित्र, सामाजिक जीवन आदि के समाचारों का प्रकाशन करने वाला यह समाचार-पत्र नितान्त रोचक है।

गंगानाथ झा संस्कृत शोध संस्थान संस्कृत प्राचीन ग्रन्थों की दृष्टि से नितान्त सम्पन्न हैं। यहाँ से प्रकाशित शोध जरनल तथा अन्य अनेक शोध ग्रन्थ संस्कृत साहित्य को समृद्ध करते हैं। दुर्लभ पाण्डुलिपियों का अपार भण्डार इस संस्थान की शोभा है। सन् 1910 में संस्कृत-हिन्दी साहित्य की उन्नति तथा प्रचार के उद्देश्य से स्थापित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कतिपय संस्कृति प्रेमियों के प्रयास से सङ्गमनी शोध पत्रिका का प्रकाशन स्तुत्य है। इसी क्रम में तत्कालीन शिक्षा सचिव श्री राय राजेश्वर बली द्वारा सन् 1927 में प्रयाग में स्थापित हिन्दुस्तानी एकेडमी की स्थापना संस्कृत ग्रन्थों के भी अनुवाद, प्रकाशन, पुरस्कार आदि के उद्देश्य से की गई। दृग-भारती संस्था के तत्त्वावधान में पण्डित जगन्नाथ पाठक, पण्डित शिव कुमार मिश्र तथा बनमाली बिश्वाल के सम्पादन में दृक् पत्रिका का प्रकाशन अर्वाचीन संस्कृत के क्षेत्र में संस्कृत शोधों को प्राथमिकता देता है। यह शोध पत्रिका आधुनिक संस्कृत कार्यों की दृष्टि से वस्तुतः उपयोगी है। प्रयाग से मुद्रित शारदा तथा भारतश्रीः शोध पत्रिकाओं का प्रकाशन समाप्त हो चुका है परन्तु अन्य उपर्युक्त शोध जरनल उस कमी को पूरा कर रहे हैं।

आज प्रयागस्य संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन में योगदान देने वाला पाणिनि प्रेस विलुप्त है। इण्डियन प्रेस तथा रामनारायण लाल, बेनीमाधव भी इस दिशा में उत्साहहीन से हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन यदा कदा संस्कृत ग्रन्थों का मुद्रण करता है। इस क्षेत्र में साहित्य भण्डार के स्वत्वाधिकारी श्री सतीश अग्रवाल का उल्लेख अनिवार्य है, वे हिन्दी साहित्य के साथ-साथ संस्कृत ग्रन्थों का भी निरन्तर प्रकाशन करते हैं।

अद्यतन स्थिति

विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित संस्कृत शोध सगोष्ठियाँ, सम्मेलन, संस्कृत कवि संगोष्ठी, संस्कृत नाट्य मञ्चन, अन्य अनेकविध संस्कृत गतिविधियाँ (व्याख्यान, प्रतियोगिताएँ, परीक्षाएँ, शास्त्रार्थ, शोभायात्रा आदि) संस्कृत के अभ्युत्थान का हेतु बनते हैं, यह सन्तोषप्रद है।

सम्प्रति नगर में अनेक संस्थाएँ यथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संस्कृत

भारती, भारत संस्कृत परिषद्, जिज्ञासु सरलतम संस्कृत प्रचार समिति, प्रयाग संस्कृत परिषद्, संस्कृत उर्दू अकादमी, हिन्दुस्तानी अकादमी, त्रिवेणिका संस्कृत परिषद, ज्योतिष् कर्मकाण्ड एवं अध्यात्म शोध संस्थान, पण्डित परिषद्, कालिदास अकादमी, आयुर्वेद संस्थान, शृंगवेरपुर आदि संस्थाएँ संस्कृत भाषा, साहित्य तथा व्याकरण के उन्नयन के लिए प्रयासरत हैं। यह भी प्रयास किया जा रहा है कि संस्कृत भाषा सम्भाषण का माध्यम बन जाए। संस्कृत भारती और त्रिवेणिका संस्कृत परिषद् के निरन्तर प्रयास से आज अनेक संस्कृत शिक्षक तथा विद्यार्थी धाराप्रवाह संस्कृत सम्भाषण में समर्थ हैं। विश्वास है कि सन्निकट भविष्य में संस्कृत भाषाभाषियों की संख्या प्रचुर होगी और तब प्रयाग की संस्कृत साधना वास्तव में सफल होगी।

तृतीय अध्याय

प्रयाग के पूर्ववर्ती ऋषि/आचार्य

महर्षि भरद्वाज

आर्यावर्त के इतिहास में प्रयाग को साहित्यिक नगरी का श्रेय दिलाने वाले प्रथम साहित्यिक व्यक्तित्व हैं—ऋषि भरद्वाज। वे वैदिक काल के सर्वाधिक पूज्यतम एवं प्राचीनतम ऋषियों में एक हैं। ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से नवम मण्डल तक के द्रष्टा सप्तऋषियों में ऋषि भरद्वाज महत्तम हैं। ऋग्वेद के छठें मण्डल में ऋषि भरद्वाज तथा उनके वंशज ऋषियों द्वारा दृष्ट सूक्तों का संग्रह है—

सपुत्रस्य तु तस्यैतन्मण्डलं षष्ठमुच्यते।[1]

महर्षि भरद्वाज का जन्म अंगिरस् ऋषि के पुत्र बृहस्पति के स्खलित वीर्य से हुआ था—

योऽङ्गारेभ्यः ऋषिर्जज्ञे तस्य पुत्रो बृहस्पतिः।
बृहस्पतिर्भरद्वाजो विदथीति य उच्यते।।[2]

अंगिरा कुलोत्पन्न बृहस्पति एवं उतथ्य सहोदर भ्राता थे। उतथ्य का विवाह भृगुवंशी कन्या ममता से हुआ था। उतथ्य एवं ममता के पुत्र का नाम था—दीर्घतमा। उतथ्य के भ्राता बृहस्पति एवं ममता के पुत्र थे भरद्वाज। अवांछित पुत्र पाकर माता-पिता में विवाद हुआ—कौन द्वाज अर्थात् हम दोनों से उत्पन्न इस पुत्र का भरण-पोषण करेगा। 'तुम इसका भरण करो,' इस प्रकार एक दूसरे के ऊपर दायित्व डाल कर माता-पिता चिन्ता मुक्त हो गए। भरण सम्बन्धी विवाद के कारण उनका नाम हुआ—भरद्वाज। महाभारत में महर्षि अपने नाम की व्युत्पत्ति बताते हुए कहते हैं कि मैं अपने पुत्रों, शिष्यों, देवताओं, ब्राह्मणों, पत्नी, वर्णसंकर प्रजाओं का भरण-पोषण करता हूँ अतः भरद्वाज नाम से प्रसिद्ध हूँ

भरेऽसुतान् भरेऽशिष्यान् भरेदेवान् भरेद्विजान्।

---

1. बृहद्देवता, 5-103.
2. बृहद्देवता, 5-103.

भरे भार्यां भरे द्वाजं भरद्वाजोऽस्मि शोभने।।[1]

ऋषि भरद्वाज का माता-पिता द्वारा परित्यक्त एवं अन्य द्वारा पालित होने से जन्म विफल मान कर एक अन्य नामकरण किया गया था—विदथ अथवा विदथिन्। ये विदथिन् ही दुष्यन्त पुत्र भरत के उत्तराधिकारी हुए। एक कथा के अनुसार—सम्राट् भरत के अनेक पुत्रों में एक भी राजत्व के योग्य न था। राजा भरत ने विलक्षण पुत्र प्राप्ति की इच्छा से मरुत्सोम् नामक यज्ञ किया। प्रसन्न होकर मरुतों ने उन्हें बृहस्पति पुत्र भरद्वाज को दत्तक रूप में दे दिया। बृहस्पति पुत्र होने से भरद्वाज ब्राह्मणवंशी एवं भरत के दत्तक पुत्र होने से क्षत्रियवंशी हुए, अतः उन्हें द्वयामुष्यायण कहा गया—

तस्मादपि भरद्वाजा ब्राह्मणाः क्षत्रिया भुवि।
द्वयामुष्यायण कौलीनाः स्मृतास्ते द्विविधेन च।।[2]

विदेशी विद्वान् पार्जिटर भरद्वाज को भरतपुत्र मानने के पक्ष में नहीं हैं। उनके अनुसार भरद्वाज पुत्र विदथिन् को भरत ने गोद लिया था, विदथिन् ही भरत के उत्तराधिकारी थे।[3] एक उल्लेखानुसार दीघायु प्राप्त दीर्घतमा भरत के राज्याभिषेक के अवसर पर उपस्थित थे। भरद्वाज एवं दीर्घतमा सहोदर थे अतः भरद्वाज भी निश्चित पक्वायु रहे होंगे। ऐसी स्थिति में भरत द्वारा भरद्वाज को गोद लेने की कथा सिद्ध नहीं होती है।[4] यह सम्भव है कि भरत ने भरद्वाज के किसी वंशज अथवा प्रपौत्र को दत्तकपुत्र स्वीकार किया हो।[5] ऐतरेय ब्राह्मण की एक यज्ञीय कथा से भरद्वाज ऋषि के भव्य व्यक्तित्व, पलितकेश, तीक्ष्णबुद्धि, तपस्वाध्याय सम्पन्नता की सूचना मिलती है। कथा है कि एक बार अग्निष्टोम में देवताओं ने आश्रय लिया तथा उक्थ्य नामक स्तोमों में असुरों ने। असुरों की स्थिति को केवल भरद्वाज ऋषि ने जाना। उन्होंने अग्निदेवता को आहूत कर उन्हें ऊँचे स्वर में सूचना दी कि ये दूसरी वाणियाँ असुरों की हैं। ऋषि का स्वर सुन अग्निदेव ने उठ कर प्रश्न किया कि क्या ये कृशशरीर, दीर्घकाय, श्वेतकेशराशि पुरुष मुझसे कुछ कह रहे हैं—

किंस्विदेव मह्यं कृशो दीर्घः पलितो वक्ष्यतीति?[6]

---

1. महाभारत, अनुशासनपर्व, 93-88; 142-31.
2. मत्स्यपुराण, 49-33; 196-52। हरिवंशपुराण, 32-17। ब्रह्मपुराण, 13-59। वायुपुराण, 99-157.
3. महाभारत, अनुशासनपर्व, 13-154, 142-31; वायुपुराण, 99-149; विष्णुपुराण, 4-18.
4. ऐतरेयब्राह्मण, 8-23.
5. पार्जिटर, ए॰ एच॰ आई॰ टी॰, पृ॰ 220-221.
6. ऐतरेयब्राह्मण, 15-5.

महर्षि भरद्वाज ने वैदिक ऋषि अंगिरा और उशिज् के श्रेष्ठ वंश में जन्म लिया था। इस वंश का अनेक सामाजिक एवं वैज्ञानिक क्षेत्रों में सक्रिय योगदान रहा है। राजनीति एवं धर्मशास्त्र के परमज्ञाता भगवान् बृहस्पति उनके पिता थे। ज्येष्ठ भ्राता दीर्घतमा ऋषि आंगिरस के प्रपौत्र, ध्वनिविज्ञान तथा खगोलविद्या में पूर्ण निष्णात थे। ऋग्वेद का प्रसिद्ध अस्यवामीय सूक्त (1-116) दीर्घतमा द्वारा ही दृष्ट है। दीर्घतमा पुत्र कक्षीवान् ने शल्यचिकित्सा में विशेष योग्यता अर्जित कर मानवशिर का सफल प्रत्यारोपण किया था। ऋषि भरद्वाज ने अपनी प्रथम पत्नी वीरा से उत्पन्न पुत्र यवक्रीत को प्राणविज्ञान की शिक्षा दी थी। यवक्रीत का अपने समवयस्क रैभ्य से किसी कारण विवाद हुआ, रैभ्य ने उनकी हत्या करवा दी।[1] प्राणविज्ञान की कला में कुशल होने के कारण (रैभ्यपुत्र की सहायता से) उसने पुनः जीवन प्राप्त किया और समस्त वेदों के अर्थों को अपनी मानसिक शक्ति से (इन्द्र की सहायता से) ग्रहण किया।[2] अपनी द्वितीय पत्नी स्वर्गकन्या घृताची के संयोग से उनके दो सन्तानें हुईं—पुत्री शरद्वती तथा पुत्र द्रोण। द्रोण को उन्होंने सैन्यविज्ञान एवं अस्त्र-शस्त्र कला में निपुण बनाया अतः भरद्वाज द्रोण के गुरु भी कहे जाते हैं।[3] आचार्य द्रोण आज भी सैन्यविद्या में दक्ष तथा महाभारत काल के श्रेष्ठ धनुर्धर रूप में प्रख्यात हैं। उनका तृतीयपुत्र वितथ भरतवंश का श्रेष्ठ, प्रतापी, धार्मिक राजा था।[4] उनकी दो पुत्रियों में से एक शरद्वती का विवाह याज्ञवल्क्य ऋषि से तथा दूसरी पुत्री देववर्णिनी का विवाह विश्रवा ऋषि से हुआ था। कुबेर इसी दम्पति के सुपुत्र माने जाते हैं।

भरद्वाजवंशीय ऋषियों के अनेक सूत्र वैदिक साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध हैं। उनके एक वंशज शिरिम्बिठ भरद्वाज को मन्त्र तथा याज्ञिक शक्तियों से द्रारिद्र्य को नष्ट करने के उपायों का ज्ञान था—**अपि वा शिरिम्बिठो भारद्वाजः। कालकर्णोपेतोऽलक्ष्मी निर्णाशियाञ्चकार, तस्य सत्त्वैः कर्मभिरित स्यात्।**[5]

ऋषि भरद्वाज श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ऋषि थे। मन्त्रदर्शन के अतिरिक्त वैज्ञानिक शास्त्रों में उनकी गति अप्रतिहत थी। विश्व में चिकित्साशास्त्र के प्रथम प्रवर्तन का श्रेय महर्षि भरद्वाज को ही है। चरकसंहिता के अनुसार—रोगों की संख्या में अतिवृद्धि हुई तथा रोग अति कष्टदायक होने लगे। अध्ययन-मनन, व्रत-उपवास आदि धार्मिक कार्यकलापों में उन रोगों के कारण बाधा पड़ने लगी। मानवजाति

1. महाभारत, वनपर्व, 12.10 ; श्रीमद्भागवतमहापुराण, 1-121-3-11, 3-135-7-9.
2. महाभारत, वनपर्व, 12-13.
3. महाभारत, आदिपर्व, (सम्भवपर्व) 129.35-38.
4. पञ्चविंश ब्राह्मण, 15-3-7.
5. निरुक्त, 6-6-30.

की इस दुर्दशा से चिन्तित होकर कल्याणकारी महान् ऋषियों ने हिमालय की पवित्र घाटियों में एक सारस्वत सभा की। ये ऋषि ब्रह्मज्ञान तथा नियन्त्रण-अनुशासन के यथार्थ भण्डार से पवित्र तथा तपस्या के तेज से अभिभूत थे। वहाँ बैठकर यह समस्या रखी गई कि रोग जनता के स्वास्थ्य को नष्ट कर रहे हैं। इस प्रकार रोग जीवन में सुखप्राप्ति तथा आत्मा की मुक्ति के उद्देश्य की प्राप्ति में बाधा बन रहे हैं। इन रोगों की रोकथाम के लिए क्या उपाय करने चाहिए?

यह चिन्तन कर वे ऋषिगण ध्यानमग्न हुए। उन्हें अपने ज्ञानचक्षुओं से यह आभास हुआ कि इस ब्रह्माण्ड के स्रष्टा प्रजापति ब्रह्मा ने आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान प्रजनक दक्ष प्रजापति पर प्रकट किया है। उन्होंने इस ज्ञान की शिक्षा अश्व-मिथुन को दी। तत्पश्चात् अश्विनी कुमारों से देवाधिदेव इन्द्र ने यह ज्ञान प्राप्त किया। अतः रोगों से मुक्त रहने के लिए इन्द्र की शरण में जाना चाहिए। प्रश्न था कि रोगों को पराजित करने के साधनों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन्द्र के पास कौन जाए? ऋषि भरद्वाज ने इस कार्य के लिए स्वयं अपना नाम प्रस्तुत किया। अन्य सभी इस प्रस्ताव से सहमत हुए।

ऋषि भरद्वाज आयुर्विज्ञान का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करने हेतु इन्द्र के समीप गए। इन्द्र दिव्य ऋषियों के मध्य विराजमान हो अग्नि की भाँति देदीप्यमान थे। ऋषि भरद्वाज ने इन्द्र को प्रणाम कर उनकी विजय की मंगलकामना की और ऋषियों का सन्देश सुनाया। इन्द्र को भरद्वाज की बुद्धिमत्ता का ज्ञान था। उन्होंने ऋषि को अति सरल शब्दों में रोगों के कारण, निदान एवं उपचार की विधियों को बताया। भरद्वाज ने एकनिष्ठ भक्ति द्वारा आयु-शास्त्र का पूर्ण एवं शुद्ध ज्ञान अर्जित किया। त्रिस्कन्धीय आयुर्विद्या का अध्ययन कर स्वर्ग से लौटे हुए ऋषि ने देश-देशान्तर से आए सभी जिज्ञासुओं को आयुर्विज्ञान का प्रथम प्रशिक्षण दिया।[1] आयुर्वेद में प्रशिक्षित तथा प्रतिष्ठित उनके शिष्यों के नाम हैं—धन्वन्तरि तथा आत्रेय। इन दोनों शिष्यों ने वैद्यक शास्त्र में विशेष ख्याति अर्जित की। धन्वन्तरि शल्यचिकित्सा के प्रतिष्ठापक थे तथा आत्रेय ऋषि काय चिकित्सा के। धन्वन्तरि की प्रशंसा में श्रीमद्भागवत में लिखा है—**स्मृतिमात्रार्त्तिनाशनः**[2] धन्वन्तरि की शिष्य परम्परा में सुश्रुत प्रसिद्ध हुए तथा आत्रेय की परम्परा में चरक ऋषि विशेषज्ञ माने गए। ऋषि भरद्वाज की वैद्यक शिष्य परम्परा में एक अन्य नाम उल्लेख्य है—काशि राज दिवोदास। इस प्रकार आयुर्वेद की चिकित्सा परम्परा की धरती पर प्रथम अवतारणा करने वाले, आयुर्वेद के प्रचारक-प्रसारक

1. चरकसंहिता, सूत्रस्थान, 1-6-16.
2. श्रीमद्भागवतमहापुराण, 9-17-5.

ऋषि भरद्वाज ही थे।

ऋषि भरद्वाज राजशास्त्र प्रणेता ब्रह्मज्ञ के रूप में भी प्रसिद्ध हैं—

भरद्वाजश्च भगवान्स्तथा गौरशिरामुनिः।
राजशास्त्रप्रणेतारो ब्रह्मण्या ब्रह्मवादिनः॥[1]

राजनीतिविषयक ग्रन्थ पाराशरमाधव में आचार्य भरद्वाज के लोक व्यवहार एवं आचार-विचार सम्बन्धी मतों का बहुशः उलेख है। व्यवहारकांड में उन्होंने 'आधि' (अधिक्रियत इत्याधिः) को चार प्रकार का बताया है—भोग्य, गोप्य, अर्थप्रत्ययहेतु, आज्ञा—

आधिश्चतुर्विधः प्रोक्तो भोग्यो गोप्यस्तथैव च।
अर्थप्रत्ययहेतुश्च चतुर्थस्त्वाज्ञया कृतः॥[2]

ऋषियों में श्रेष्ठ भरद्वाज को काशी के राजा दिवोदास ने अपना पुरोहित नियुक्त किया था।[3] पुरोहित पद पर आसीन होकर उन्होंने दिवोदास के लिए पुत्रेष्टि याग सम्पादित किया था। आध्यात्मिक शक्तियों से युक्त ऋषि द्वारा सम्पन्न कराए गए यज्ञ के फलस्वरूप दिवोदास को प्रतर्दन नामक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी। प्रतर्दन ने भरद्वाज की सहायता से पिता का खोया राज्य हैहय राजाओं से छीन लिया था।[4] वीतहव्यों को परास्त करने के इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि भरद्वाज सैन्यविज्ञान के भी सम्यक् ज्ञाता थे। उन्होंने कुरुवंशी द्रुपद को रणविद्या सिखाई थी। अपने पुत्र द्रोण को उन्होंने रण विद्याओं में सर्वथा कुशल बनाया था। भरद्वाज द्रोण के रणकौशल से प्रभावित होकर भीष्म ने अपने पौत्रों कौरवों और पाण्डवों को उनके आचार्यत्व में सैन्यविज्ञान प्रशिक्षण के लिए भेजा था।[5]

ऋषि भरद्वाज का विद्याव्यसन भी साहित्यजगत् में प्रसिद्ध है। वेदों के गाढ़ अनुशीलन से तात्त्विक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए महर्षि ने देवराज इन्द्र को प्रसन्न किया और वेदार्थ चिन्तन के निमित्त एक सौ वर्ष की आयु वर रूप में प्राप्त की। सौ वर्षीय सुदीर्घ अवधि में महर्षि ने अपने ओषधिज्ञान के बल पर स्वस्थ रह कर परिश्रमपूर्वक वेदों का अध्ययन-मनन किया परन्तु कोई ठोस परिणाम न निकला। देखते ही देखते सौ वर्ष की आयु बीत गई। इन्द्र पुनः आए और ऋषि की वेदाध्ययन के प्रति निष्ठा देख कर उन्हें 200 वर्ष की आयु

---

1. महाभारत, शान्तिपर्व, 57-3.
2. पराशरमाधव, व्यवहारकाण्ड.
3. पञ्चविंशब्राह्मण, 15-3-7.
4. काठकसंहिता, 21-10; महाभारत; अनुशासनपर्व, 30-30.
5. महाभारत, आदिपर्व, (सम्भवपर्व) 129.39; 130.77.

देकर लौट गए। अत्यधिक आस्था और मनोयोगपूर्वक वेदों का चिन्तन करने के पश्चात् भी सूक्ष्म विषयों के समाधान न निकले और वेदार्थ की चिन्तना अपूर्ण रही। तब ऋषि ने इन्द्र से पुनः सौ वर्ष का एक जन्म और माँगा। यह सुन इन्द्र ने ऋषि के सम्मुख तीन विशालकाय पर्वतों को प्रकट किया। एक पर्वत की धूलि मुट्ठी में लेकर इन्द्र ने कहा—महर्षि! इन तीन जन्मों में तुम्हारे द्वारा अर्जित वैदिकज्ञान मेरी मुट्ठी की धूलि के बराबर भी नहीं है। वेदार्थ का ज्ञान इन पर्वतों के समान अगम्य है। दैवीय अनुकम्पा के बिना मानव प्रयत्न से इस ईश्वरीय ज्ञान का पार पाना कथमपि सम्भव नहीं है क्योंकि ये सामान्य शास्त्र नहीं हैं। इन्द्र से 'सावित्र अग्निचयन' यज्ञानुष्ठान की विधि सीख कर, उसका विधिवत् सम्पादन कर उन्होंने वेदार्थ का पूर्ण ज्ञान और मोक्ष की साधना की। यह आख्यान ऋषि की ज्ञान पिपासा का सटीक उदाहरण है—

भरद्वाजो वै त्रिभिरायुभिर्ब्रह्मचर्यमुवास। तं ह जीर्णं स्थविरं शयानमिन्द्र उपव्रज्योवाच। अनन्ता वै वेदाः।[1]

ऋषि भरद्वाज ऋग्वेद के सम्पूर्ण छठे मण्डल के एकाकी द्रष्टा हैं। इस मण्डल के 17,18, 22, 30 सूक्त उनके ज्ञान के अनेक पक्षों पर प्रकाश डालते हैं। विश्व ऊर्जा अग्नि से उन्होंने बृहत् साम का रहस्य प्राप्त किया जो यज्ञविज्ञान का महत्त्वपूर्ण तथ्य स्वीकृत हुआ।[2] यज्ञ विद्या के ही माध्यम से उन्होंने भरतवंशियों को वितथ नामक प्रतापी पुत्र प्रदान किया। उसी विद्या द्वारा भरतों के शत्रु राजाओं को परास्त करने में भी सहयोग दिया। रथन्तर साम का रहस्य ज्ञात करके उन्होंने प्राण, नाग, वाणी एवं पार्थिव तत्त्वों में विज्ञान को जाना था। इसी प्रकार बृहत् के रहस्यों से मनोविज्ञान एवं अन्तरिक्ष या आकाश के रहस्यों को उद्घाटित किया था। ये तथ्य ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मणों में वर्णित हैं।[3]

ऋषि ने अपने द्वारा दृष्ट ऋग्वेद की कतिपय ऋचाओं में सरस्वती नदी को सभी नदियों में प्रिय और श्रेष्ठ कहा है। सरस्वती से देवताओं से द्वेष करने वाले शत्रुओं का नाश करने की प्रार्थना भी की है।[4] इससे प्रतीत होता है कि भरद्वाज वंश का आवास सरस्वती नदी के तटीय नगरों में रहा होगा। भौगोलिक कारणों से सरस्वती नदी के सूखने की प्रक्रिया के कारण इस वंश ने भी उत्तर की ओर प्रयाण किया होगा और सरस्वती सदृश विशाल नदी गंगा को पाकर

---

1. तैत्तिरीयब्राह्मण, 3-10-11-3.
2. ऋग्वेद, 10-181-1-2; पञ्चविंश ब्राह्मण, 7-7-18.
3. ऐतरेयब्राह्मण, 4-28; शतपथब्राह्मण, 1-7-2-17, 1-8-1-19.
4. ऋग्वेद, 6-6-10; 6-61-11-13.

उसी के तटीय स्थित प्रयाग नगर को अपना स्थाई निवास बना लिया होगा। यहीं से ऋषि का सम्बन्ध प्रयाग से जुड़ता है।

सर्वविदित है कि कुलपति भरद्वाज का गंगा के पश्चिमी तट पर स्थित विश्वविद्यालय समग्र आर्यावर्त में विद्या और संस्कृति का केन्द्र था। इस विश्वविद्यालय में वनगमन के समय श्री राम पत्नी सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ आए थे तथा एक रात्रि यहाँ विश्राम किया था। महाकवि अश्वघोष के अनुसार भरद्वाज आश्रम में ऋषि के संरक्षण में लगभग 10 हजार विद्यार्थियों को वेद-साहित्य के साथ-साथ आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञान की तकनीकी शिक्षा भी दी जाती थी। वस्तुतः महर्षि भरद्वाज यन्त्रशास्त्र की विभिन्न धाराओं से पूर्णतः परिचित थे तथा धातुविज्ञान पर उनका अप्रतिम अधिकार था। उनके महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक अनुसंधानों में उल्लेख्य है—व्योमयान। कुलपति द्वारा विमान उड्डयन कला पर लिखा गया ग्रन्थ 'यन्त्रसर्वस्व' इसका साक्षात् प्रमाण है। इस ग्रन्थ के वैमानिकी प्रकरण (500 सूत्र, 8 अध्याय तथा 100 अधिकरण) के माध्यम से प्राचीन भारतीय विमान निर्माण अभियान्त्रिकी और शिल्पकला के गौरवशाली स्रोत प्राप्त होते हैं। एतदतिरिक्त महर्षि भरद्वाज के नाम से लिखित ग्रन्थ उल्लिखित हैं—भरद्वाज संहिता, भरद्वाजस्मृति तथा भारद्वाज वास्तुतत्त्व। प्रसिद्ध रोम इतिहासकार प्लिनी ने भी पाटलिपुत्र की राजसभा से लौटते हुए प्रयाग में एक सप्ताह तक विश्राम किया था, उसने प्रयाग को विद्यानगरी कहा है।[1] ऋषि भरद्वाज ने अपने विलक्षण ज्ञान और उपलब्धियों से सप्तर्षियों में स्थान प्राप्त किया। आज भी भारत की जनता स्वयं को भरद्वाजगोत्रीय मानने में गर्व का अनुभव करती है।

प्रयाग का 12 वर्षीय माघमासीय कल्पवास धार्मिक जनों के लिए पर्याप्त श्रद्धा और आकर्षण का केन्द्र है। विश्व के कोने-कोने से अनेक धर्मों के अनुयायी, सन्त और महात्मा तथा सामान्य जन सभी गंगा के पावन तट पर एक मास रुक कर कल्पवास करते हैं तथा प्रतिदिन गंगास्नान कर पुण्यलाभ संचित करते हैं। ऋषि याज्ञवल्क्य कल्पवास समाप्त कर लौटने लगे तो ऋषि भरद्वाज ने उन्हें भगवत्चर्चा के लिए अपने आश्रम में रोका तथा आग्रहपूर्वक उनसे राम कथा सुनी। तुलसीदास के अनुसार—

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहिं रामपद अति अनुरागा॥[2]

वाल्मीकि रामायण में राम के 14 वर्षीय वनगमन के प्रसंग में ऋषि के अग्निहोत्र परायण, तपोनिष्ठ जीवन, दूरदर्शिता, शिक्षाशास्त्रवेत्ता, सहजस्नेही

---

1. प्राकृतिक इतिहास, प्लिनी, 077 ईस्वी सन्.
2. रामचरितमानस, 1.4.1.

स्वभाव तथा प्राकृतिक शक्तियों को स्वाधीन बना लेने वाले व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम के निकट मुहूर्त भर (दो घड़ी) में पार कर लेने वाले अन्तराल पर उनका आश्रम निर्मित था। उनके प्रताप के विस्तार से किसी दुष्ट को उनके निकट जाने का साहस नहीं होता था। भरतवंशियों के पुरोहित एवं मार्गदर्शक बनने के पश्चात् उनके महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक अनुसन्धान यहीं पर सम्पादित हुए थे। उनके आश्रम में गंगा-यमुना के जल के परस्पर टकराने की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती थी। सन्ध्या अग्निहोत्ररत मुनि के वृक्षों से हरे-भरे आश्रम से यज्ञाग्नि के उठते धूम को देख कर श्रीराम ने अनुमान कर लिया था कि मुनिश्रेष्ठ आश्रम में उपस्थित हैं। आश्रम में राम के अनुज लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ पहुँचने पर ऋषि ने उनका यथायोग्य आतिथ्य सत्कार किया था एवं संगम तट पर स्थित अपने आश्रम के पवित्र और एकान्त वातावरण में समग्र वनवास अवधि बिताने का निमन्त्रण दिया था। राम अयोध्या को निकट जान कर इसके लिए प्रस्तुत न हुए तो ऋषि ने उन्हें दस कोस की दूरी पर स्थित चित्रकूट पर्वत के सुरम्य वातावरण में रहने का परामर्श दिया।

श्री भरत ने केकय प्रदेश से अयोध्या लौट कर ज्येष्ठ भ्राता राम के वनवास का समाचार सुना तो वे भाई से मिलने को विकल हो माताओं आदि को साथ ले चित्रकूट के लिए चले। मार्ग में प्रयागवन में स्थित भरद्वाज आश्रम में रुके। ऋषि ने सभी देवताओं तथा सभी दिव्य शक्तियों का आवाहन कर भरत के साथ आई सेना तथा अपार जनसमूह का अनिर्वचनीय आतिथ्य सत्कार कर अपनी व्यवहारकुशलता और विनम्र स्वभाव का प्रदर्शन किया। ऋषि द्वारा सुलभ कराया गया यह आतिथ्य ऋषि की अलौकिक विद्याओं में गति को सूचित करता है। नन्दनवन में विहार के समान यथेष्ट सुख पाकर भरत को ऐसा प्रतीत हुआ मानों वे कोई स्वप्न देख रहे हों—

व्यस्मयन्त मनुष्यास्ते स्वप्नकल्पं तदद्भुतम्।
दृष्ट्वाऽऽतिथ्यं कृतं तादृग् भरतस्य महर्षिणा।।[1]

लंका विजय के पश्चात् पुष्पक विमान से पत्नी और वानरप्रमुखों के साथ अयोध्या लौटते हुए श्रीराम-ऋषिचरणों में प्रणाम की इच्छा से पुनः आश्रम पर रुके थे। उसके पश्चात् भरद्वाज विश्वविद्यालय के अस्तित्व के विषय में इतिहास मौन है। अलबरुनी ने कारणों का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि भगवान् बुद्ध के अवतरण के पश्चात् कौशाम्बी के उत्थान से प्रयाग की उपेक्षा हुई। कौशाम्बी धीरे-धीरे उत्तराखण्ड के विद्या केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। कौशाम्बी के पतन के पश्चात् पुनः प्रयाग की प्रतिष्ठानपुर नाम से उन्नति हुई

1. वाल्मीकिरामायण, अयोध्याकाण्ड, 91-80.

और सम्पूर्ण आर्यावर्त की आँखें उस पर केन्द्रित हुईं।

आज प्रयाग में भरद्वाज आश्रम आकर सापेक्ष है किन्तु विद्वान् इसकी प्राचीनता मानने के पक्ष में नहीं हैं। कुछ विद्वान् उनका आश्रम सिन्धु सरित् के पश्चिमी तट पर मानते हैं तो कुछ कुरुक्षेत्र में बहने वाली सरस्वती नदी के तट पर। प्रमाण यह है कि ऋषि भरद्वाज दिवोदास अतिथिग्व के राजपुरोहित थे,[1] दिवोदास भरद्वाजों के गायक वंश से भली-भाँति सम्बद्ध थे।[2] दिवोदास के पणियों, पारावतों और बृसयों से लड़ने का उल्लेख है।[3] ये युद्ध सिन्धु अथवा सरस्वती के तटों पर लड़े गये थे अतः भरद्वाज के मूल आश्रम का अस्तित्व गंगा-यमुना के संगम पर सिद्ध करना उचित नहीं, अवान्तर काल में बसाया गया यह नया आश्रम है। भरद्वाज ऋषि का आश्रम प्रयाग में नहीं तो राम ऋषि से प्रयाग में मिले थे, यह घटना भी सम्भव नहीं है।[4] वस्तुतः वाल्मीकि रामायण के स्रोत समाज में वाचन-गायन में बहुश्रुत थे, सम्भव है लिपिबद्ध होते-होते प्रयाग में भरद्वाज आश्रम की नींव पड़ चुकी हो।

आधुनिक विद्वानों में कतिपय श्री रामकालीन भरद्वाज आश्रम की स्थिति बांदा जिलान्तर्गत राजापुर के निकट अलवारा ताल के समीप मानते हैं। तर्क यह देते हैं कि वाल्मीकि रामायण में संगम से चित्रकूट की दूरी 10 कोस (20 मील) कही गई है। अलवारा ताल से चित्रकूट की दूरी भी यही है। अलवारा ताल के निकट गंगा की मिट्टी तथा सदा हरा-भरा रहने वाला अक्षयवट भी उपलब्ध है। राजापुर से चार कोस की दूरी पर स्थित लालापुर गाँव से भरद्वाज का सम्बन्ध माना जाता है अतएव आश्रम राजापुर और लालापुर के मध्य ही अवस्थित रहा होगा। गंगा-यमुना के संगम के मनोहारी दृश्य ने इसी स्थल पर श्री राम का ध्यान आकृष्ट किया होगा। भौगोलिक परिवर्तनों से गंगा-यमुना का प्रवाहस्थल स्थानान्तरित होकर प्रयाग के मध्य आ गया। उन नदियों ने वर्तमान भरद्वाज आश्रम स्थल पर संगम कर लिया तो भारतीय श्रद्धालु जनमानस ने उसी स्थल पर भरद्वाज आश्रम की कल्पना कर ली।

आधुनिक भरद्वाज आश्रम 25°-30° उत्तर अक्षांश, 81°- 55° पूर्व देशान्तर के मध्य इलाहाबाद शहर से 5 कि॰ मी॰ पूर्व अवस्थित है। भरद्वाज आश्रम के अवशेष इसकी अर्वाचीनता को सिद्ध करते हैं। सोलहवीं शताब्दी में गंगा नदी के तट पर बक्शी बाँध के निर्माण के पूर्व गंगा नदी की एक धारा

---

1. पञ्चविंश ब्राह्मण, 15-3-7.
2. ऋग्वेद, 1-112-13-14.
3. ऋग्वेद, 6-61-1.
4. रसा से सदानीरा तक, डॉ॰ हरिशंकर त्रिपाठी, वेदपीठ प्रकाशन, पृ॰ 120.

फाफामऊ से होकर चाँदपुर सलोरी, डहररिया, बघाड़ा, चर्चलेन, कमला नेहरु अस्पताल, आनन्दभवन, भरद्वाजाश्रम होते हुए लाउदर रोड से वर्तमान मिण्टो पार्क के निकट यमुनानदी में विलीन होती थी। गंगा नदी की दूसरी धारा का प्रवाह फाफामऊ से झूँसी की ओर था। नागवासुकि मन्दिर दारागंज, वर्तमान किले के मन्दिर से प्राप्त 10वीं शताब्दी ईस्वी सन् की प्राचीन पाषाण प्रतिमाएँ इस स्थल की प्राचीनता प्रारम्भिक मध्यकाल तक सिद्ध करती है। गंगा यमुना के मध्य स्थित दारागंज तथा किले का भाग एक द्वीप के रूप में प्राचीनकाल में अवस्थित रहे होंगे। आनन्दभवन, पुराना राजभवन आदि स्थलों की खुदाई से प्राप्त एन॰ बी॰ पी॰ मृत्भाण्ड यहाँ समय-समय पर प्राप्त होते रहे हैं। वर्तमान अल्लापुर, टैगोरटाउन, जार्जटाउन, अलोपीबाग, तुलारामबाग, बैरहना आदि स्थल उस समय जलमग्न थे।[1] भरद्वाज आश्रम के टीले की ऊँचाई और आस-पास की ढलान की भौगोलिक संरचना से वहाँ गंगा घाट का अनुमान सहज किया जा सकता है। सम्प्रति आश्रम स्थल के विस्तार का अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है। प्राचीन टीले का अवशिष्ट भाग लगभग 06 मीटर ऊँचे टीले के रूप में आज भी विद्यमान है। सन् 1978-79 में प्रो॰ बी॰ बी॰ लाल के निर्देशन में भरद्वाज आश्रम का उत्खनन कार्य किया गया। उत्खनन के फलस्वरूप यहाँ 700 ईसापूर्व प्राचीन तथा गुप्तकाल के पुरातात्त्विक साक्ष्य प्रकाश में आए। प्रमुख पुरा सामग्री में गुप्त एवं उत्तरगुप्त युग की पकी मिट्टी की मूर्तियाँ एवं ब्राह्मी लिपि की मुद्राएँ तथा गुप्त एवं उत्तरगुप्तकालीन भवनों के अवशेष देखे गए। यहाँ विद्यमान प्राचीन मन्दिरों के अवशेषों में 10वीं सदी तक की राम-लक्ष्मण-सीता की पाषाण प्रतिमाएँ, 07वीं सदी ईस्वी तक की महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमा, भूदेवी को दाँतों में दबाए विष्णु के नृवराहावतार की प्रतिमा, अग्निदेव की पत्नी स्वाहा के साथ 12वीं सदी की प्रतिमा, सूर्य की 17वीं, 18वीं सदी की पद्मासन मुद्रा प्रतिमा, ऋषि भरद्वाज द्वारा स्थापित शिवलिंग तथा सहस्त्रफणधारी शेषनाग की मूर्ति दर्शनीय है। तीर्थयात्रा का पूरा फल पाने की इच्छा रखने वाले तीर्थयात्री प्रयाग में भरद्वाज आश्रम के दर्शन हेतु अवश्य आते हैं। कुछ भी हो प्रयाग में ऋषि भरद्वाज के आश्रम की अवस्थिति ऋषि की सत्ता को और वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तऋषियों में ऋषि भरद्वाज की गणना, ऋषि की महत्ता को-दो अमिट स्मृतिचिह्नों के रूप में सदा अमर करती रहेगी।[2]

---

1. इलाहाबाद थ्रू द एजेज़, जी॰ आर॰ शर्मा, इलाहाबाद, 1964.
2. श्री राम लीला स्मारिका, पथरचट्टी, 19वाँ पुष्प, P.188.

अमर सिंह

महाविद्वान् अमरसिंह ने कब, कहाँ जन्म लिया, स्वयं उन्होंने इस विषय में कुछ नहीं कहा। शोधों के निष्कर्ष से यह ज्ञात होता है कि वे प्रयाग (नैनी) में अरैल (अलर्कपुरी) निवासी थे। अमर सिंह बौद्ध थे, उनकी गणना विक्रमादित्य के नवरत्नों में होने के कारण उनका सम्भावित समय चौथी से छठी शती के मध्य ठहरता है।[1] सम्प्रति अमर सिंह रचित अमरकोष सर्वाधिक प्राचीन एवं सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त सर्वतः पूर्ण कोश है। अमरसिंह बौद्ध थे, अमरकोष का मंगल श्लोक इसका प्रमाण है। प्रथमकाण्ड के स्वर्गवर्ग में देवपर्यायकथन के पश्चात् भगवान बुद्ध के पर्याय कथन से 'यह बौद्ध थे', यह प्रतीत होता है। क्षीर स्वामी तथा सर्वानन्द दोनों भाष्यकारों ने उन्हें बौद्ध माना है। किंवदन्ती के अनुसार उन्होंने कुमारिल भट्ट से शास्त्रार्थ के पश्चात् बौद्ध धर्म त्याग दिया था। यद्यपि उस शास्त्रार्थ में सरस्वती स्वयं पर्दे के पीछे से अमर सिंह के पक्ष में शास्त्रार्थ कर रही थीं। अमरकोश के एक श्लोक में इन्हें 'अमरु कवि' भी कहा गया है।

अमरकोश के मंगलाचरण पद्यों में सोलह तीर्थंकरों की वन्दना होने से शोलापुर निवासी—श्रेष्ठिवर्य—श्री राव जी सखाराम दोशी अमरसिंह को जैन मतावलम्बी मानते हैं। अग्रिम श्लोकों में भी जैनसम्प्रदाय के देवी-देवताओं के पर्याय गणित होने से वे जैन धर्मी प्रतीत होते हैं किन्तु वादीभ सिंह विरचित 'गद्यचिन्तामणि' नामक जैन ग्रन्थ में भी वे ही श्लोक उपलब्ध होने से ये उक्त श्लोक किस कवि द्वारा निबद्ध हैं, यह विवादास्पद हो जाता है।[2]

प्रो॰ मैक्समूलर के अनुसार 'अमरकोश' की रचना ईसा की छठी शताब्दी के पूर्व हो चुकी थी क्योंकि छठीं शताब्दी में उज्जयिनीवासी विद्वान् गुणरात कृत 'अमरकोश' का एक चीनी अनुवाद उपलब्ध है।[3] डॉ॰ हॉरनेल अमरकोश का रचनाकाल 625-940 ई॰ के मध्य तथा प्रो॰ ओक 400 ई॰ में मानते हैं। प्रो॰ हॉरनेल की अपेक्षा मैक्समूलर और ओक अधिक तर्कसंगत प्रतीत होते हैं। अमरकोश का सर्वप्राचीन उदाहरण जिनेन्द्र बुद्धि के न्यास में मिलता है—

तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते-अमरकोष 3.3.186 उद्धृत है। न्यास का रचनाकाल अष्टम शती है। अमरसिंह पाणिनीय सूत्रों का उल्लेख करते हैं अतः इनका समय तृतीय शती के आरम्भ में मानना उचित है। इनके विषय में एक विचित्र अनुश्रुति

---

1. धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः।
   ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ॰ 667.
3. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, पं॰ बलदेव उपाध्याय, पृ॰ 333.

है—अमरसिंहस्तु पापीयान् सर्वभाष्यमचूचुरत्। पता नहीं, इस उक्ति का वास्तविक स्वारस्य क्या है?

अमरकोश का एक अन्य नाम लिंगानुशासनम् भी है। अमरसिंह ने नाममात्र तन्त्र व लिंगमात्र तन्त्र—तात्कालिक दोनों पद्धतियों का समन्वय कर कोष को सर्वाङ्ग पूर्ण बनाया। तीन काण्डों में विभक्त होने से इसे त्रिकाण्डकोष नाम भी दिया गया है। विभाजन इस प्रकार है—प्रथम काण्ड—स्वर, व्योम, दिक् काल, धी, शब्दादि, नाट्य, पागल, नर्क-नववर्ग। द्वितीय काण्ड—पृथिवी, पुर, शैल, वनौषधि, नृ, ब्राह्मण, क्षत्र, विश्, शूद्र-दशवर्ग। तृतीय काण्ड—विशेष्यनिघ्न, संकीर्ण, नानार्थ, अग्रय, लिंगादि संग्रह। कोष में कुल 1533 अनुष्टुप् हैं। भारत के बाहर भी कोष की लोकप्रियता आश्चर्यजनक रूप से फैली। इसकी उपयोगिता और वैज्ञानिकता इस पर लिखी पचास टीकाओं से सिद्ध होती है। इसकी प्रामाणिक एवं प्रचलित टीकाओं में—प्रभा, माहेश्वरी, सुधा, रामाश्रमी और नामचन्द्रिका उल्लेख्य हैं। इनमें भी क्षीरस्वामी भट्ट लिखित (1050 ई०) अमरकोषोद्धाटनम् टीका सर्वाधिक प्रसिद्ध है।[1] अमरकोष वस्तुतः समानार्थक कोष है, परन्तु नानार्थक शब्दों का विन्यास होने से यह दोनों का काम करता है, यही इसका वैशिष्ट्य है।

कुमारिल भट्ट

धर्म प्रधान संस्कृति की स्थापना के लिए भारतीय ऋषि सदा से प्रयत्नशील रहे, हिन्दू धर्म की बौद्ध-जैन आदि सम्प्रदायों के आक्रमण से रक्षा करते रहे। मीमांसा शास्त्र के उद्भट दार्शनिक विद्वान् कुमारिल भट्ट ने वैदिक धर्म के उद्धार की प्रतिज्ञा की थी। इनकी प्रखर मेधा, मौलिक विचार तथा अद्भुत वाणी विद्वानों को सहज आकृष्ट करती थी। कुमारिल भट्ट ने अपने जन्म से भारत के किस प्रान्त को गौरवान्वित किया था, इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर प्रमाणों के अभाव में अद्यापि अनिश्चित है। इनके जन्म स्थान के विषय में तिब्बत के प्रसिद्ध विद्वान् तारानाथ का कहना है कि ये बौद्ध पण्डित धर्मकीर्ति के पितृव्य थे जो दक्षिण भारत के चूडामणि राज्य के अन्तर्गत त्रिमलय नामक स्थान में उत्पन्न हुए थे।[2] सम्भवतः यह चूडामणि चोल देश का अपर नाम हो, अतः उन्हें दक्षिण भारत का निवासी माना जा सकता है।

यह विचारणीय है कि क्या वे वास्तव में बौद्ध विद्वान् के पितृव्य थे? इसके विपरीत भारतीय परम्परानुसार सिद्ध होता है कि वे उत्तर भारत के थे।

---

1. अमरकोश, भानु जी दीक्षित (रामाश्रयी व्याख्या), प्रस्तावना, पृ० 7.
2. चोसब्युङ्, तारानाथ; History of Indian Logic, डॉ० विद्याभूषण, P. 305.

आनन्दगिरि ने अपने ग्रन्थ 'शङ्कर दिग्विजय' में लिखा है कि भट्टाचार्य (कुमारिल भट्ट) ने उदग् देश (उत्तर भारत) से आकर दुष्ट मतावलम्बी जैनों तथा बौद्धों को परास्त किया।[1] इस उल्लेख से कुमारिल भट्ट उत्तर भारत के निवासी प्रतीत होते हैं। मीमांसक विद्वान् शालिकनाथ ने इनका उल्लेख वार्तिककार मिश्र के नाम से किया है। मिश्र की उपाधि उत्तरभारत के ब्राह्मणों के नाम के साथ सम्बद्ध करने की परम्परा है। शालिकनाथ कुमारिल भट्ट से तीसरी, चौथी शताब्दी के मीमांसक विद्वान् थे, उनके प्रामाण्य का विशेष महत्त्व है। तब हम कुमारिल को उत्तर भारत का निवासी मान सकते हैं। मिथिला की जनश्रुति के अनुसार कुमारिल मैथिल ब्राह्मण थे परन्तु इस तथ्य की यथार्थता के प्रमाण अनुपलब्ध हैं। मेरे विचार में कुमारिल ने उत्तर भारत के सम्भवतः प्रयाग नगर को अपने जन्म से अलङ्कृत किया था क्योंकि जन्मस्थान के प्रति व्यक्ति के हृदय में विशेष आकर्षण होता है। प्रयाग के प्रति कुमारिल भट्ट का यह प्रेम उनके जीवन के अन्तकाल में विशेष रूप से अभिव्यक्त हुआ है। इनका समय 600-650 ई० के मध्य माना जाता है।[2]

कुमारिल भट्ट के जीवन की घटनाओं का विशेष रूप से परिचय नहीं मिलता है। तारानाथ के उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि वे धन-धान्य से सम्पन्न गृहस्थ थे। उनके पास धान के अनेक खेत, 500 दास तथा 500 दासियाँ थीं। बौद्धदर्शन के विख्यात आचार्य धर्मकीर्ति के साथ इनके शास्त्रार्थ करने तथा उनके हाथ पराजित होकर बौद्ध धर्म स्वीकार करने की घटना का वर्णन भी तारानाथ ने अतिविस्तार से किया है। धर्मकीर्ति स्वभाव से उद्धत तथा वेदों के प्रति नितान्त श्रद्धाहीन थे। बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धालु होकर उन्होंने नालन्दा के पीठस्थविर के शिष्यत्व में बौद्ध शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया। बौद्ध धर्म के मण्डन के लिए वैदिक धर्म का खण्डन आवश्यक था। वैदिक दर्शन के ज्ञाता कुमारिल भट्ट ने परिचारक का वेश धारण कर बौद्धकीर्ति को अपनी सेवा से प्रसन्न किया, उनके शिष्यों के साथ बैठ कर बौद्ध दर्शन के अध्ययन की अनुमति प्राप्त कर ली, अल्पकाल में अपनी तीव्र बुद्धि में बौद्ध दर्शन के रहस्यों को संजो लिया तथा वैदिक विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिए आमन्त्रित किया। धर्मकीर्ति ने कणादगुप्त नामक वैशेषिक आचार्य तथा अन्य विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। कुमारिल भट्ट का धर्मकीर्ति के साथ गहरा शास्त्रार्थ हुआ, कुमारिल परास्त हो गए, पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने बौद्धधर्म स्वीकार किया।

भारतीय साहित्य से इस घटना की पुष्टि नहीं होती किन्तु यह निश्चित है

1. शङ्करदिग्विजय, पृ० 180.
2. संस्कृत साहित्य कोष, डॉ० राजवंश सहाय हीरा, पृ० 143.

कि कुमारिल ने बौद्ध दर्शन का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए बौद्ध भिक्षु बन कर किसी बौद्ध आचार्य से बौद्ध साहित्य की शिक्षा प्राप्त की थी। शंकराचार्य से आत्मकथा कहते समय कुमारिल ने स्वयं इस घटना का वर्णन किया है कि किसी भी शास्त्र का खण्डन तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके रहस्यों का पूर्ण ज्ञान न हो। मुझे बौद्धधर्म का खण्डन करना था अतः मैंने बौद्धधर्म का खण्डन करने से पूर्व उसका गाढ अनुशीलन किया—

अवादिषं वेदविघातदक्षैस्तान्नाशकं जेतुमबुध्यमानः।
तदीयासिद्धान्तरहस्यवार्धीन् निषेध्यबोधाद्धि निषेध्यबाधः।।[1]

उस समय बौद्धगुरु धर्मपाल की कीर्ति चारों ओर फैली थी अतः अनुमान है कि आचार्य से कुमारिल ने बौद्ध दर्शन की शिक्षा ली। एक दिन धर्मपाल ने बौद्ध दर्शन की व्याख्या करते हुए वेदों की निन्दा की। इस निन्दा को सुन कुमारिल की आँखों से आँसू बहने लगे। आचार्य धर्मपाल को आश्चर्य हुआ—वेद निन्दा सुन कर बौद्ध भिक्षु के नेत्रों से अश्रुपात क्यों? कुमारिल ने कहा—वेदों के गूढ़ रहस्यों को जाने बिना उनका मनमाना खण्डन अनुचित है। रुष्ट गुरु ने आदेश दिया—इसे पर्वत शिखर से नीचे ढकेल दो, देखें! यह अपनी रक्षा कैसे करता है। वे शिखर से नीचे फेंक दिए गए। कुमारिल ने ईश्वर का स्मरण कर कहा—वेद प्रमाण है, ईश्वर रक्षक है, शक्तिमान् है। आत्मा, सत्य, अविनाशी और अमर है। कुमारिल गिर कर भी पर्याप्त सुरक्षित रहे। इस घटना से वैदिक धर्म की विजयचर्चा सम्पूर्ण भारत में व्याप्त हो गई। अनन्तर कुमारिल भट्ट ने मूर्धन्य विद्वानों के मध्य आचार्य धर्मपाल को शास्त्रार्थ में पराजित किया। कुमारिल की वैदिक विद्वान् के रूप में सर्वत्र प्रतिष्ठा हुई।

उस समय राजा सुधन्वा कर्णाटक देश के न्यायप्रिय वैदिक मार्गी राजा थे किन्तु जैनियों के प्रभाव से ग्रस्त थे। उनकी विदुषी रानी राजभवन की खिड़की में बैठी चिन्ता कर रही थी—**'किं करोमि, क्व गच्छामि, को वेदान् उद्धरिष्यति?'** दिग्विजय करते हुए कुमारिल उसी समय नीचे से गुजरे, इस दीनता भरी पुकार का उन्होंने उत्तर दिया—**'मा विषीद वरारोहे, भट्टाचार्योऽस्मि भूतले'**। कुमारिल राजसभा में गए और वेदविरोधियों को लक्ष्य कर कहा—

मलिनैश्चेन्न सङ्गस्ते नीचैः काककुलैः पिक।
श्रुतिदूषकनिर्ह्रादैः श्लाघनीयस्तदा भवेः।।[2]

हे कोकिल! यदि मलिन, काले, निम्नस्तरीय, श्रुति अर्थात् कान तथा वेद

1. शङ्करदिग्विजय 7/93; मणिमञ्जरी 5/37-41.
2. शङ्करदिग्विजय 1/65.

को दूषित करने वाले कौवों से तुम्हारा संसर्ग नहीं होता तो तुम सचमुच श्लाघनीय होते। राजा ने दोनों पक्षों की परीक्षा ली। कुमारिल इस परीक्षा में भी प्रथम रहे। राजा ने वेदबाह्य जैनियों को बाहर निकाल वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की।

कुमारिल भट्ट ने शबरस्वामी के मीमांसाभाष्य पर सुप्रसिद्ध शाबरभाष्य की रचना की है जो तीन भागों में विभक्त है—

1. **श्लोकवार्तिक**—3099 अनुष्टुप् छन्दों का कारिकाबद्ध विशालकाय यह ग्रन्थ प्रथम अध्याय के प्रथमपाद (तर्कपाद) की व्याख्या है। इसमें मीमांसा के दार्शनिक सिद्धान्तों का विस्तृत मौलिक विवेचन प्राप्त होता है, साथ ही अन्य जैन बौद्धादि दर्शनों के सिद्धान्तों की आलोचना भी है। इस ग्रन्थ पर उम्बेक भट्ट ने 'तात्पर्य टीका' पार्थसारथिमिश्र ने 'न्यायरत्नाकर' तथा सुचरित मिश्र ने 'कोशिका' (त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज) नामक टीकाएँ लिखी हैं।

2. **तन्त्रवार्तिक**—मीमांसा भाष्य के प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद से तृतीय अध्याय तक की इसमें व्याख्या है। कुमारिल भट्ट के तन्त्रवार्तिक से एक विशिष्ट सूचना मिलती है कि गौतम धर्मसूत्र तथा गोभिल गृह्यसूत्र का अध्ययन छन्दोग (सामवेदी) लोग करते थे। वसिष्ठ धर्मसूत्र का ऋग्वेदी लोग, शंख लिखित धर्मसूत्र का वाजसनेयी संहिता के अनुयायीगण तथा आपस्तम्ब एवं बौधायन के सूत्रों का अध्ययन तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी लोग करते थे। तन्त्रवार्तिकी पृ० 179 (पूर्वमीमांसासूत्र 1-3-11 की व्याख्या में)। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार की उद्भट विद्वत्ता अभिव्यक्त हुई है। इसमें जर्भरी, तुर्फरी, पर्फरिका, भदेरु, मशेयु आदि असंस्कृत शब्दों की आलोचना की गई है। मीमांसा दर्शन का आधार वेद, अनुभव, प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाण कहे गए हैं। इन्होंने वेद को नित्य माना है, वेद के समान ही काल, आकाश, दिक्, आत्मा तथा परमाणुओं को भी नित्य माना है। इस पर सोमेश्वर, ने 'न्यायसुधा' (सर्वोपहारिणी, चौखम्बा, बनारस), कमलाकार भट्ट ने 'भावार्थ' गोपालभट्ट ने 'मिताक्षरा', परितोषमिश्र ने 'अजिता' अन्नमभट्ट ने 'राणकोजीवनी' (सुधाधारा) तथा गङ्गाधर मिश्र ने 'न्यायपारायण' नामक टीकाएँ लिखी हैं।

3. **टुप्टीका**—इस संक्षिप्त सामान्य ग्रन्थ में 'शाबरभाष्य' के अन्तिम नौ अध्यायों पर संक्षिप्त गद्यात्मक टिप्पणियाँ हैं। इस पर पार्थसारथिमिश्र ने 'तन्त्ररत्न', वेङ्कटेश ने 'वार्तिकभरण' तथा उत्तमश्लोकतीर्थ ने 'लघुन्यायसुधा' नामक टीकाएँ लिखी हैं।

कृष्णदेव ने तन्त्रचूडामणि में कुमारिल की अन्य दो अनुपलब्ध टीकाओं—बृहद्टीका एवं मध्यम टीका का उल्लेख किया है। 'मानव कल्पसूत्र' पर कुमारिल रचित टीका का प्रकाशन सन् 1867 में डॉक्टर गोल्डस्टूकर ने लन्दन से कराया

था। 'शिव-महिम्नः स्तोत्र' के रचयिता रूप में भी कुमारिल भट्ट उल्लिखित हैं, परन्तु यह सिद्ध नहीं है।

कुमारिल के अनुसार वेद के शब्द-वाक्य-क्रम-सब कुछ नित्य हैं। वे शब्द को द्रव्य मानते हैं। शब्द नित्य है उसका अर्थ भी नित्य है, उन दोनों का परस्पर सम्बन्ध भी नित्य है। कुमारिल ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और अभाव—ये पाँच पदार्थ माने हैं। पूर्व मीमांसा के सिद्धान्त भी उन्हें प्रायः मान्य हैं।

कुमारिल का भाषा ज्ञान समृद्ध तथा अत्यन्त विशाल था। तन्त्रवार्तिक में उन्होंने भाषाओं के दो भेद किए हैं—आर्यों तथा म्लेच्छों की भाषा। आर्यावर्त की सीमा में रहने वालों की भाषा आर्य तथा बाहरी प्रदेशों में रहने वालों की भाषा म्लेच्छ थी। कुमारिल द्राविणी अर्थात् तमिल भाषा से सुपरिचित थे, तमिल भाषा के शब्दों को उन्होंने तन्त्रवार्तिक में समाविष्ट किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने पारसी, बर्बर, यवन, रौमक भाषाओं का भी उल्लेख किया है। पारसी फारस की भाषा, यवन ग्रीकों की भाषा, रौमक रोम अथवा तुर्कों की भाषा तथा बर्बर असभ्य जातियों की भाषा मानी गई है। कुमारिल को लाटभाषा-गुजराती का भी अच्छा ज्ञान था। प्राकृत तथा पालि पर उन्हें पूर्ण पाण्डित्य था। तन्त्रवार्तिक में कुमारिल भट्ट ने द्रौपदी के विवाह के सम्बन्ध में एक नई व्याख्या उपस्थित करके बहुपतित्व के परम प्रमाण को निरस्त कर दिया है। उनके अनुसार वास्तव में पाँच द्रौपदियाँ थीं जो नाम, रूप, गुण, शील में एक दूसरी के समान थीं किन्तु महाभारत के लेखक ने उन्हें आलंकारिक रूप से एक ही द्रौपदी मान लिया है—**अथवा बहव्य एव ताः सदृशरूपा द्रौपद्य एकत्वेनोपचरिता इति व्यवहारार्थापत्त्या गम्यते।**[1]

वैदिक दर्शन के प्रगाढ़ अनुशीलन कर्ता कुमारिल का संक्षेप में यही जीवनचरित्र ख्यात था जिसे सुन आचार्य शङ्कर विशेष प्रभावित हुए और वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए उनकी सहायता लेने को उत्सुक हुए। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य की रचना वे कर चुके थे, भाष्य पर विस्तृत वार्तिक लिखने के लिए उन्हें कुमारिल भट्ट सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत हुए। अब तक दो वार्तिक ग्रन्थ लिख कर कुमारिल वार्तिककार के रूप में प्रसिद्ध भी हो चुके थे। आचार्य को ज्ञात हुआ कि कुमारिल प्रयाग में वर्तमान हैं, वे अपने शिष्यों के साथ उत्तरकाशी से प्रयाग आए, त्रिवेणी के तट पर पहुँचे और कुमारिल का दर्शन किया। उन्हें यह देख कर अत्यन्त खेद हुआ कि इतना बड़ा वैदिक मीमांसक विद्वान् तुषानल (भूसे की आग) में अपने शरीर को दग्ध कर रहा है, नीचे का अर्धाङ्ग जल चुका था किन्तु मुख पर विलक्षण शान्ति विद्यमान थी। भारत के कोने-कोने से विद्वान्

1. तन्त्रवार्तिक पृ०209.

कुमारिल का आत्मदाह देखने के लिए प्रयाग पधारे हुए थे।

आचार्य ने अपना भाष्य कुमारिल को दिखाया और शरीरपात करने का कारण पूछा। कुमारिल ने कहा, मुझसे दो भारी अपराध हुए हैं। प्रथम पातक है—बौद्ध गुरु का तिरस्कार-जिसने मुझे बौद्धों के आगमों के रहस्यों का ज्ञान दिया, उसी गुरु का मैंने पण्डितों के सामने भरी सभा में तिरस्कार किया। दूसरा पातक है कर्म की प्रधानता दिखाने के लिए मैंने जगत् के कर्ता तथा कर्मफल के दाता ईश्वर का खण्डन किया है यद्यपि ईश्वर में मेरी पूर्ण आस्था है। लोक के शिक्षण के लिए मैं इस प्रायश्चित्त का अनुष्ठान कर रहा हूँ, अंगीकृत व्रत को छोड़ना अपराध है। मेरा माहिष्मतीवासी परम मीमांसक शिष्य मण्डन मिश्र अद्वैत मार्ग में आपकी सहायता करेगा। योगिराज! मैंने अपना कार्य समाप्त किया, शेष आपको करना है, सनातन धर्म के उद्धार में ईशकृपा से आप सफल हों। इसके पश्चात् कुमारिल ने तुषानल में स्वयं को सम्पूर्ण भस्म कर दिया।

भानुदत्त मिश्र

शृंगाररसप्राण नायक-नायिका भेद का भावप्रवण विस्तृत अध्ययन स्वरचित ग्रन्थों में प्रस्तुत करने वाले पं० भानुदत्त मिश्र, महामहोपाध्याय शंकर मिश्र के भ्राता पं० महादेव मिश्र के पौत्र और महाकवि गणपति मिश्र के पुत्र थे। मिथिला के सरिसव ग्राम के प्रतिष्ठित विद्वत्परिवार में आपका जन्म हुआ था। सरिसव ग्राम के 'इसह' नामक प्राचीन ग्राम में भानुदत्त द्वारा खुदाई गई 'भानुमती' नामक पुष्करिणी के उपलब्ध होने से उनका सरिसव ग्राम वासी होना निश्चित है किन्तु देवनदी गंगा की लहरों ने उनकी सारस्वत साधना को प्रयाग में समृद्ध किया था, यह उल्लेख उन्होंने स्वयं रसमंजरी के अन्तिम श्लोक में किया है—

तातो यस्य गणेश्वरः कविकुलालङ्कारचूडामणिः।
देशो यस्य विदेहभूः सुरसरित्कल्लोलकिमीरिता॥[1]

कवि के समय के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ का मानना है कि कवि का समय 13वीं शताब्दी तथा अन्य के अनुसार 16वीं शताब्दी है। श्री० पी० वी० काणे ने साहित्यदर्पण की भूमिका में लिखा है कि गोपाल आचार्य ने सन् 1437 में रसमञ्जरी की विकास नामक टीका की थी अतः भानुदत्त का समय सम्भवतः 13वीं शती का उत्तरार्ध अथवा 14वीं शती का पूर्वार्ध होना चाहिए।[2]

प्राचीनकालिक कवि परम्परया किसी राजा के आश्रित कवि के रूप में

---

1. रसमञ्जरी, भानुदत्त मिश्र, पृ० 138.
2. रसमञ्जरी, भानुदत्त मिश्र, प्रस्तावना, पृ० 16.

काव्य साधना में संलग्न रहते थे। भानुदत्त (मानुकर) भी मिथिला से भ्रमण करते हुए निज़ाम उपनामधारी भूमिपाल देवगिरीश्वर के संरक्षकत्व में रहे, कवि ने यह उल्लेख रसमंजरी के सात्त्विक भावों के उदाहरणों में स्वयं किया है—

तत्किं राजपथे निजामधरणीपालोऽयमालोकितः।[1]

भानुदत्त के अन्तिम आश्रयदाता कदाचित् बघेल नृपति वीरभानु थे, उनकी भेंट कवि से प्रयाग में हुई। वीरभानु का राज्यविस्तार सन् 1540-1555 में प्रयाग तक था। 'गुलबदन' में उल्लेख है कि अरैल तथा कड़ा का शासक वीरवहान था—यह निश्चय ही वीरभानु का मुस्लिम नाम है। राजा वीरभानु पराक्रम, उदारता एवं दानशीलता से अर्जित यश के पश्चात् अन्तिम वय में प्रयागवासी बन गये थे।[2] वीरभानूदय काव्य में उल्लेख है—'पुत्र रामचन्द्र के लिए राज्यभार त्याग कर विषय, अभिलाष आदि से चित्त को निवृत्त कर गंगा-यमुना के तट पर अपना निवास स्थापित किया। वेदरक्षा अवतारस्वरूप धर्मपरायण नृप वीरभानु ने पुत्र रामचन्द्र को युवराज पद पर अभिषिक्त कर अपनी चित्तवृत्तियों को गंगा तट पर ब्रह्मनिष्ठ कर लिया—

विरलभवननिष्ठो ब्रह्मनिष्ठापरोऽभूत्।[3]

कवि भानुदत्त ने अपनी काव्यप्रतिभा को सम्यक् विस्तार विशालहृदय नृप वीरभानु के संरक्षण में प्रयाग में ही दिया—यह संकेत पद्मवेनी में उद्धृत छन्द संख्या 68 तथा सूक्तिसुन्दर छन्दसंख्या 102 में भी वर्णित है। यही नहीं, पद्मवेनी के ही छन्द संख्या 161 में नृप वीरभानु के विजयाभियान का अत्यन्त रोचक वर्णन है—नृपति ने विशाल सेना के साथ प्रस्थान किया। रणभेरी नाद, घोड़ों की हिनहिनाहट और हाथियों की चिंघाड़ से भीषण कोलाहल उत्पन्न हुआ। ब्रह्माण्डपिण्ड में एक दरार सी पड़ने लगी। नृप पराक्रम के ताप से तप्त उड़े हुए सुहागे ने मन्दाकिनी, चन्द्रमा तथा तारकदल रूप धर कर उसको पुनः पूरित किया। आश्रयदाता की ही प्रशंसा में ऐसा उदात्तवर्णन प्राप्त हो सकता हैं। भानुदत्त की रचनाओं में निज़ामशाह तथा शेरशाह के भी यशगान उपलब्ध हैं।

कवि भानुदत्त की प्रयाग के प्रति आस्था प्रगाढ़ थी। वे प्रयागप्रेमाभिभूत होकर लिखते हैं—समस्त भूमण्डल के पर्यटन का मेरा श्रम व्यर्थ रहा, वाद के लिए विद्या प्राप्त की, अपना 'स्व' गवाँकर विभिन्न धराधीशों के आश्रय में पहुँचा, कमलमुखी सुन्दरियों पर दृष्टि डाली और वियोग दुःख झेला, सब व्यर्थ,

---

1. रसमञ्जरी।
2. श्रृंगारमाला, (सुखलाल मिश्र), सम्पादक-अनुवादक—पं॰ शिवशंकर त्रिपाठी, पृ॰ 22-23.
3. वीरभानूदय, 12.27, 9-47.

जो प्रयाग में वास कर नारायण की आराधना नहीं की। वे पुनः कहते हैं—सुख भवन त्याग कर निकुञ्ज में रहना सुखकर है, धन-सम्पत्ति दान की वस्तु है संग्रह की नहीं, तीर्थों के जल का पान कल्याणकर है, कुश की शैया पर शयन करना सभी आस्तरणों के शयन से श्रेष्ठ है, चित्त को धर्ममार्ग में प्रवृत्त करना श्रेयस्कर है किन्तु सर्वोत्तम है—गंगा-यमुना के संगम पर रह कर पुराण का स्मरण करना—

स्थेयं तत्र सितासितस्य सविधाध्येयं पुराणं महः।[1]

कवि भानुदत्त ने रसमंजरी, रसतरंगिणी, रसपारिजात, गीतगौरीपति, कुमार भार्गवीयालंकारतिलक, मुहूर्तसार, शृंगारदीपिका आदि अनेक काव्य-प्रबन्धों की रचना की थी, इनमें से अधिकांश आज अनुपलब्ध हैं।

स्वामी रामानन्द

वैष्णव सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य स्वामी रामानन्द का आविर्भाव प्रयाग में चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में माना जा सकता है। यह प्रसिद्ध है कि रामानन्द कबीर दास और पीपा भक्त के गुरु थे। कबीर का आविर्भावकाल सन् 1399 तथा पीपा का आविर्भाव काल सन् 1425 स्वीकार किया गया है अतः यह निश्चित किया जा सकता है कि रामानन्द का आविर्भाव काल लगभग सन् 1368 तथा निधन काल लगभग सन् 1468 है। कुछ विद्वानों का मत है कि इनकी मृत्यु सन् 1463 में तथा कुछ के अनुसार सन् 1448 में हुई। 'श्री भक्तमाल सटीक' के अनुसार इनका जन्म प्रयाग के कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में माघकृष्ण सप्तमी, चित्रा नक्षत्र सिद्धयोग तथा कुम्भलग्न भृगुवार संवत् 1356 में प्रयाग में हुआ था। इनकी माता का नाम सुशीला देवी तथा पिता का नाम पुण्यसदन था। तीर्थराज प्रयाग में जन्मे बालक रामदत्त ने पाँच वर्ष की आयु में ही वाल्मीकी रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत को कण्ठस्थ कर लिया। उस कोमल अवस्था में भी वह अपूर्व बालक एक ही सातत्य में दक्षिणावर्त शंख को चार बार बजाया करता था। आठ वर्ष की वय में माघ शुक्ल तिथि के दिन बालक रामदत्त का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ। रामदत्त को नैयायिक पण्डित ओंकार शर्मा के संरक्षण में अध्ययनार्थ भेजा गया। माता पिता द्वारा प्रदत्त रामदत्त नाम से इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्रयाग में हुई। मात्र 12 वर्ष की आयु में गहन ज्ञान से परिपक्व ये दर्शनशास्त्र के अध्ययन के लिए काशी चले गए और अधिकांश ग्रन्थों की रचना वहीं पंचगंगा घाट पर एक झोपड़ी में रह कर की। समावर्तन संस्कार के पश्चात् उनका विवाह शाण्डिल्य गोत्रोत्पन माधवी नामक

1. रसतरंगिणी, 5.5, 7-29.

कन्या से सम्पन्न हुआ परन्तु रामदत्त ने आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत निर्वाह का संकल्प ले लिया और संन्यास दीक्षा ग्रहण कर ली। स्वामी राघवानन्द ने बालक रामदत्त को अल्पायु जानकर अपने समग्र जीवन का तप, वर्चस्व शक्तिपात दीक्षा द्वारा रामदत्त में संक्रान्त कर उन्हें दीर्घजीवी बना दिया। प्रसिद्ध विशिष्टाद्वैतवादी स्वामी राघवानन्द इनके दीक्षा गुरु थे।[1]

स्वामी राघवानन्द की 'सिद्धान्त पंचमात्रा' के आधार पर कहा जा सकता है कि रामानन्द की उपासना पद्धति में नामस्मरण का पर्याप्त महत्त्व है। नाभादास के अनुसार रामानन्द दशधा भक्ति में विश्वास रखते थे। नवधा भक्ति के साथ वे ज्ञानमार्ग के प्रति भी आस्थावान् थे और ज्ञानयोग पद्धति पर विशेष बल देते थे। उनकी हिन्दीभाषीय रचनाओं से आभास होता है कि वे उदारहृदय, प्रगतिशील और धार्मिक संकीर्णताओं को नकारने वाले व्यक्ति थे। तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, अधार्मिक अन्धविश्वासों एवं उपासना पद्धति के बाह्य आयामों की आलोचना करते हुए वे अन्तरतम की साधना के लिए प्रेरित करते थे। सामाजिक विभेद और ऊँच-नीच मनोवृत्ति से ऊपर उठ कर उन्होंने प्रिय के प्रति प्रेम का ऐसा भव्य मन्दिर प्रतिष्ठित किया जहाँ सब साहब के बन्दे थे जिसके द्वार सबके लिए खुले थे, जहाँ सब समान थे। शिष्य कबीर के व्यक्तित्व पर इस उन्मुक्त आचरण की, प्रगतिशील विचारों की स्पष्ट छाप पड़ी थी, फलतः समाज को गर्जन-तर्जन द्वारा सुधारने का बीड़ा गुरु की प्रेरणा से ही उन्होंने उठा लिया था।

रामानन्द ने गुरु राघवानन्द के सम्पर्क से भक्ति ज्ञान और प्रेम की पृष्ठभूमि में 'रामावत सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया। आगे चल कर (16वीं शती में) 'रामावत सम्प्रदाय' 'श्री सम्प्रदाय' के साथ एकाकार सा हो गया परन्तु खान-पान सम्बन्धी आचारों में विभेद के कारण मूलतः दोनों पृथक्-पृथक् अस्तित्व बनाए रहे। 'श्री सम्प्रदाय' ने नारायण को पूज्य माना परन्तु रामावत सम्प्रदाय ने राम को आराध्य माना और 'राम' या 'सीताराम' को बीजमन्त्र। 'रामावत सम्प्रदाय' उपासना-पूजा के साथ ही चारित्रिक श्रेष्ठताओं—उदारता, सहिष्णुता, परोपकार, सहृदयता आदि भावनाओं के विकास को महत्त्व देता है अतः उनके राम अगम-अगोचर, निर्गुण-निराकार होते हुए भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और भक्तों के कल्याणार्थ यथासमय अवतार ग्रहण करते हैं।[2]

स्वामी रामानन्द एक स्वतन्त्र व अग्रगामी महापुरुष थे, इनके चरित्रबल व असाधारण व्यक्तित्व के कारण समाज में नवीन जागृति का समावेश हुआ। वह

---

1. त्रिवेणी, डॉ॰ डी॰ पी॰ दुबे, सोसाइटी ऑव पिलग्रिमेज स्टडीज़—प्रयाग का संस्कृत साहित्य को अवदान, डॉ॰ आनन्द कुमार श्रीवास्तव्य, पृ॰ 95.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, पृ॰ 123-124.

काल था विदेशियों के भारत पर आक्रमण का, आक्रान्ता यवनों ने हिन्दुओं पर अवर्णनीय अत्याचार और अन्याय आरम्भ किया। उस समय वैष्णव मतावलम्बियों को पुनः संगठित कर हिन्दू धर्म की रक्षा करने वाले सन्तों में स्वामी रामानन्द प्रमुख थे।

स्वामी रामानन्द की भक्तिधारा ने समाज के सभी वर्गों को अपने अंक में समेटा। उस समय जाति-पाति, छुआछूत, ऊँच-नीच आदि अनेक बुराइयाँ समाज में व्याप्त थीं। पुरोहितों ने पूजा-पाठ और वेद-पुराणों का अध्ययन केवल उच्च कही जाने वाली जातियों तक सीमित कर दिया था। ऐसे में स्वामी रामानन्द ने भक्ति और ग्रन्थों के अध्ययन को सबके लिए सुलभ कराया। इस प्रकार तत्कालीन समाज में व्याप्त कटुता, मत-मतान्तर, सम्प्रदायवाद और वैमनस्यता को दूर कर समाज को एक सूत्र में बांधा। उनके कार्यों का ही सुफल था कि हिन्दू-मुस्लिम, शैव-वैष्णव आदि वर्ण विद्वेष क्षीण होने लगे। वे कहते थे—

जात-पात पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई

कहा जाता है कि मुगल शासक मोहम्मद तुगलक सन्त कबीर के माध्यम से स्वामी रामानन्दाचार्य की शरण में आया और उसने हिन्दुओं पर लगे जजिया कर और अन्य सभी प्रतिबन्ध हटाने का आदेश दिया। उन्होंने अपने रामावत सम्प्रदाय में स्त्रियों को भी समान स्थान दिया। सामान्य जन को भक्ति से जोड़ने के लिए उन्होंने संस्कृत धर्मग्रन्थों के स्थान पर लोकभाषा को प्राथमिकता दी।

स्वामी रामानन्द वेद-शास्त्र, पुराण-दर्शन एवं आगम-स्मृति के मनीषी विद्वान् थे। उनकी पारलौकिक सिद्धियाँ भी असीम थीं। तथापि वह चमत्कार-प्रदर्शन के पक्षधर नहीं थे। उनके जीवन में जो चमात्कारिक घटनायें घटी भी, उनके घटने में स्वामी जी का संकल्पमात्र कारण था, न कि कोई प्रयास, जैसे लोभी व्यक्ति को क्षमा अथवा दण्डादि से अनुगत नहीं बनाया जा सकता, ठीक उसी प्रकार चमत्कार कातर को भी उपदेशादि मात्र से समझाया नहीं जा सकता। इसलिये भी, स्वामी रामानन्द ने कुछेक अवसरों पर अपनी दैवी शक्ति का इन्द्रजाल प्रदर्शित किया।

वाराणसी में इस्लाम का ऐसा आतंक था कि हिन्दू शंख नहीं बजा सकते थे, मन्दिरों में घड़ी-घण्ट बजाने की मनाही थी, मस्जिद के सामने से पालकी ले जाने का निषेध था, भले ही वह नवविवाहित वर-वधू की हो। उतनी दूर तक वर-वधू को, पालकी से उतर, पैदल ही जाना पड़ता था और भी अनेक पाबन्दियाँ हिन्दुओं पर थीं, जिनकी कहीं कोई सुनवाई नहीं थी।

एक बार काशी में किसी बच्चे ने, उत्कण्ठावश शंख बजा दिया तो तुर्क अधिकारी उसे पकड़ ले गये। बच्चे के माँ-बाप कोई भी अनहोनी भाँप कर

कातर हो उठे और स्वामी रामानन्दाचार्य के पास पहुँच कर रोने-बिलखने लगे। घटना को जान-सुन कर स्वामी जी व्यथित भी हुए, उद्विग्न भी। उन्होंने तुर्कों के इन अमानवीय अत्याचारों से हिन्दू जनता को मुक्त कराने का संकल्प किया। तभी एक विचित्र चमत्कार हुआ काशी की सारी मस्जिदों में स्वतः शंखध्वनि गूँजने लगी। नमाज़ियों की जिह्वा में अचानक लकवा मार गया, कुरान की आयतों का उच्चारण असम्भव हो उठा। इस घटना से सारे मुस्लिम-समाज में हाहाकार व्याप्त हो उठा।

उन दिनों काशी में इब्बनूर तथा मीरत नामक दो सूफी सन्तों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। उन्हीं फकीरों की मन्त्रणा से, सारे मौलवी-मुल्ला महान् सन्त कबीर की शरण में आये। कबीरदास के साथ वे सब क्षमायाचनार्थ स्वामी रामानन्द के पास पहुँचे। स्वामी जी ने अपने शंखनाद से, प्रमुख मस्जिद के मौलवी को मूर्छित कर दिया। उस मूर्च्छा में ही पैगम्बर मुहम्मद ने उसे स्वामी रामानन्दाचार्य के माहात्म्य से अवगत कराया, चेतना लौटने पर मौलवी ने, समूचे मुस्लिम-समाज की ओर से क्षमा माँगी तथा भविष्य में हिन्दुओं के प्रति सद्व्यवहार की शपथ ली।

स्वामी रामानन्दचार्य ने अपनी 12 माँगे सामने रखीं और उन्हें दिल्ली के सुल्तान से स्वीकार कराने की शर्त पर ही अपनी दैवी शक्तियों को प्रतिसंहृत किया। स्वामी जी की माँगे थीं—

(1) हिन्दुओं पर जजिया कर समाप्त किया जाये।

(2) काशी तथा अन्यत्र भी किसी हिन्दू-मन्दिर का ध्वंस न हो।

(3) बलपूर्वक धर्मान्तरण (हिन्दू से इस्लाम) न किया जाये।

(4) गोवध पर रोक लगाई जाय।

(5) हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ न जलाये जाएँ।

(6) हिन्दुओं के धार्मिक अथवा घरेलू उत्सवों में बाधा न पैदा की जाये।

(7) हिन्दू स्त्रियों का तुर्कों द्वारा अपहरण न किया जाये।

(8) मन्दिरों में घण्टा बजाने पर पाबन्दी न हो।

(9) प्रयाग आदि के कुम्भ-पर्व पर कर न लगाया जाये।

(10) कथा-कीर्तन में रोक न लगाई जाये।

(11) हिन्दुओं के धर्मपालन में बाधा न की जाये।

(12) मस्जिद के सामने, वर-वधू को पालकी से उतरने को बाध्य न किया जाये।

काशी के प्रभावशाली मौलवियों ने स्वामी जी की इन समस्त माँगों को

सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक से मंजूर कराया। इस प्रकार, स्वामी रामानन्द के प्रयास से, काशी में हिन्दू-मुस्लिम समुदायों में एक प्रगाढ़ आत्मसम्मान एवं सौहार्द का सम्बन्ध स्थापित हो सका। वस्तुतः स्वामी रामानन्दचार्य के जीवन से जुड़े चमत्कारों की संख्या अल्प नहीं है। उनका युग (हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष) भी ऐसा था कि हम उसे चमत्कार के लिये उपयुक्त मान सकते हैं। चमत्कारों का एकमात्र लक्ष्य ही होता है दर्शकों को (विशेषतः अपने विरोधियों को) अभिभूत, विस्मित, हतप्रभ किंवा शरणागत बना देना। हिन्दू धर्म का कट्टर विरोधी शाहंशाह आलमगीर औरंगजेब तक इन चमत्कारों का कायल था। अनेक हिन्दू-मठों को दिये गये उसके फरमान इस तथ्य के साक्षी हैं कि वह उन सन्तों के दैवी चमत्कारों से विस्मय-विमुग्ध हो उठा था।

किंवदन्तियों, जनश्रुतियों के ही समान चमत्कार भी अर्धसत्य जैसे ही होते है। परन्तु अतिशयोक्तिगर्भ होने के पश्चात् भी, ये सर्वथा निर्मूल नहीं होते हैं। इनमें सुरक्षित रहता है कुछ न कुछ विकृत सत्य। स्वामी जी से जुड़े कुछेक अन्य चमत्कार इस प्रकार हैं—

1. सुधौलीनरेश का पुत्र क्षयरोग-ग्रस्त था। स्वामी जी ने उसे गंगा स्नान के अभ्यास से, सातवें दिन नीरोगी काया प्रदान की।
2. शिवरात्रि में जब स्वामी रामानन्द ने भगवान शिव को, हाथ जोड़ कर प्रणाम करना चाहा तो देवाधिदेव अकस्मात् प्रकट हो गये तथा उन्हें आलिंगन करते हुए बोले—'आप द्वारा मैं प्रणम्य नहीं क्यों कि आप तो स्वयं मेरे उपास्य राम के अवतार हैं।
3. स्वामी जी ने सशरीर पधारे कलि को राममंत्र की दीक्षा दी।
4. दुर्जनानन्द नामक एक अघोरी साधक को स्वामी जी से मरणान्तक द्वेष था। उसने स्वामी जी पर विषधर नाग फेका, नाग मालती-पुष्पमाला बन उनके गले में आ पड़ी। पुनः उसने अपवित्र अस्थियाँ फेकी तो वे नीचे गिरी ही नहीं, आकाश में ही लुप्त हो गई।
5. इसी प्रकार अयोध्या से श्री गजसिंह देव स्वामी जी के आश्रम पर आये और निवेदन किया कि महाराज मैं अयोध्यापति हरीसिंह देव का भतीजा हूँ, सूर्यवंशी हूँ। मेरे चाचा वैशाख शुक्ल दशमी सोमवार संवत् 1381 को जूना खां तुगलक के भय से तराई में भगवद् भजन के बहाने भाग गये थे। तब से अयोध्या का सिंहासन रिक्त पड़ा है। जूना खां बीसों हजार प्राणियों का धर्म-भ्रष्ट कर चुका है। गत पचास वर्षों के अन्दर धर्मभ्रष्टों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई है। मैं

भी म्लेच्छ-स्पर्श से भ्रष्ट हो गया हूँ। प्रायश्चित्त का कोई मार्ग प्रशस्त नहीं है। आपसे अपने उद्धार की याचना करता हूँ। स्वामी जी अपनी शिष्य मण्डली के साथ अयोध्या गये और सरयू के किनारे ले जाकर उन सबको शुद्ध किया।

स्वामी रामनन्दाचार्य ने प्रस्थानत्रयी पर आनन्दभाष्य लिखा। यद्यपि उन्हें आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैत मत का ही व्याख्याकार आचार्य माना जाता है। तथापि आचार्य रामानन्द, सिद्धान्त एवं व्यवहार-दोनों में ही रामानुज से पूर्णतः पृथक् सिद्ध होते हैं। दोनों में कुछ विशिष्ट अन्तर इस प्रकार है—

(1) रामानुज-मत में उपास्य देवता चतुर्भुज नारायण हैं। परन्तु रामानन्द सम्प्रदाय में द्विभुज भगवान् राम ही उपास्यदेव हैं।

(2) रामानुज-सम्प्रदाय में नारायण-मंत्र की दीक्षा का विधान है। परन्तु रामानन्द सम्प्रदाय में षडक्षर राममंत्र का।

(3) रामानुज-सम्प्रदाय का अभिधान है—श्रीसम्प्रदाय, जब कि रामानन्द सम्प्रदाय को रामावत अथवा वैरागी सम्प्रदाय कहा जाता है।

(4) रामानुज-सम्प्रदाय में वेदशास्त्रादि-पारंगत ब्राह्मण ही भक्ति का अधिकारी माना गया है, जब कि रामानन्द-सम्प्रदाय में मानवमात्र ही भक्ति एवं मुक्ति का अधिकारी है।

(5) रामानुज सम्प्रदाय में न हनूमदुपासना मान्य है, न उनका प्रसाद ग्राह्य है, जब कि रामानन्द-सम्प्रदाय में हनुमान् पूज्य-देवता हैं।

(6) रामानुजीयों में ध्येय मात्र लक्ष्मी-नारायण हैं, गेय नहीं, रामानन्दीयों में ध्येय श्रीराम हैं, गेय वाल्मीकिरामायण हैं।

इस प्रकार, रामानन्द-सम्प्रदाय उदारतम वेदान्तमत सिद्ध होता है। स्वामी रामानन्द ने भक्ति एवं मुक्ति का द्वार मानवमात्र के लिए खोल कर अपने सम्प्रदाय को हिन्दूधर्म का एकमात्र प्रतिनिधि बना दिया। भारत का कोई ऐसा राज्य अथवा जनपद नहीं, जहाँ आञ्जनेय हनुमान के सिद्ध-देवालय न हों, अथवा पूजा न होती हो। ऐसी स्थिति में रामानन्द-सम्प्रदाय श्रीसम्प्रदाय पर भारी पड़ता है।

स्वामी जी ने आचार्य श्रीरामानुज स्वामी के 'श्री सम्प्रदाय' से अपना पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद कर स्वतन्त्र रूप से 'रामावत सम्प्रदाय' को जन्म दिया था और अपने नवीन मत के प्रचार द्वारा तत्कालीन सुधार आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया था। उन्होंने एक ऐसे इष्टदेव की कल्पना की जो सर्वसाधारण के लिये भी कल्याणकारी प्रतीत हो सके, एक ऐसी उपासना चलाई जिसके अधिकारी

मनुष्य मात्र समझे जा सकें। इनकी इस विशेषता को ही आधार रूप ठहरा कर इन्हीं की शिष्य परम्परा में आगे गोस्वामी तुलसीदास ने अपने अपूर्व ग्रन्थ रामायण की रचना की, जो कम से कम हिन्दू जाति के पारिवारिक जीवन का पथ प्रदर्शक बन गया। क्योंकि इस ग्रन्थ द्वारा दो विरोधी दलों के इष्ट देवों का—शैव दल तथा वैष्णव दल का अपूर्व सामंजस्य किया गया है। 'हरि' और 'हर' को एक करके 'हरिहर' कर दिया है।

स्वामी रामानन्द का स्थान उत्तरी भारत के सन्त परम्परा के इतिहास में बहुत उच्च है। उस युग के प्रायः प्रत्येक विशिष्ट सुधारक, कबीर एवं रैदास आदि को इनका किसी न किसी प्रकार से आभारी होना आज तक स्वीकार किया जाता है। वास्तव में जिस भक्ति साधना का प्रचार हम आज भारत में देख रहे हैं उसके प्रधान प्रवर्तक स्वामी रामानन्द ही थे और इन्हीं की प्रेरणा से उसे वर्तमान रूप मिला है। हरिभजन के आधार पर जाति व वर्ण सम्बन्धी कड़े नियमों को शिथिल कर सर्व साधारण को भी कुलीनवत् अपनाने की प्रथा चली। इन्होंने मनुष्य मात्र की वास्तविक एकता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। सबकी समझ और सुविधा के विचार से इन्होंने धर्म प्रचार के लिये संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी भाषा को अधिक उपयुक्त ठहराया तथा लोक संग्रह की दृष्टि से जनता के बीच कार्य करने वाले संयमशील साधुओं की एक टोली संगठित की और वैरागी तथा अवधूत नाम देकर उन्हें सर्वत्र भ्रमण करते रहने के लिये प्रेरित किया।

हिन्दूधर्म के योग एवं क्षेम को, सुनिश्चित करने के अनन्तर ही स्वामी रामानन्द ने धर्मप्रचारार्थ राष्ट्रव्यापी यात्रायें की। वह पुरी तथा रामेश्वरम् तक गये। पुरी में सागर का भयावह रूप देख उन्होंने अपने शिष्य कबीर से चिमटा गड़वा कर सागर की सीमा अंकित कर दी। रामेश्वरम् में उन्होंने शैवों तथा वैष्णवों का वैमनस्य शान्त किया। विजयनगर-नरेश बुक्कमहीपति ने स्वामी जी का सम्मान किया। आज भी आचार्य रामानन्द तथा उनके शिष्य (12) प्रशिष्यों के मठ गुजरात, राजस्थान, पंजाब क्षेत्र में सर्वाधिक मात्रा में विद्यमान हैं।

विक्रम सं॰ 1525 (सन् 1458) में रामनवमी के दिन स्वामी रामानन्द ने इहलीला का संवरण किया।

स्वामी रामानन्दचार्य का प्रादुर्भाव एक ऐसे युग में हुआ जब वैदिक हिन्दू धर्म, आभ्यन्तर एवं बाह्य दोनों ही विभीषिकाओं से आतंकित था। बाह्य विभीषिका इस्लामजन्य थी तो आभ्यन्तर सौगत, अर्हत, नाथपन्ती तथा अघोरपंथी उपासनामूलक थी। इस्लामी शासन ने हिन्दूधर्मावलाम्बियों पर जजिया थोप रखा था। बलात् धर्मान्तरण का बोलबाला था। बहू-बेटियों की इज्जत बचनी मुश्किल थी। लोगों ने तुर्कों की दृष्टि से बचाने मात्र के लिए अबोध बच्चियों का विवाह

रचाना प्रारम्भ कर दिया था। हिन्दू समाज की अपनी और भी अनेक दुःसाध्य बीमारियाँ थी—छुआछूत, जाति-पंक्ति, पाखण्ड, आडम्बर तथा मिथ्याभिनय। सर्वत्र अराजकता ही अराजकता विद्यमान थी। न कोई हिन्दू शास्ता अपनी प्रजा का रक्षक था, न ही कोई सन्त उन्हें आश्वस्त करने वाला।

ऐसी ही दिग्भ्रमित स्थिति में आचार्य रामानन्द धराधाम पर उतरे। उन्होंने अपने दैवी आभामण्डल से न केवल हिन्दूधर्म पर छाये कुहासे को दूर किया अपितु इस्लाम के अनाचारों से लोहा लेते हुए, इस्लाम पर हिन्दुत्व का वर्चस्व स्थापित करते हुए, वैदिक धर्म को, पूरी निष्ठा के साथ प्रतिष्ठित किया। अपने लम्बे जीवनकाल में आचार्यप्रवर ने राष्ट्र को न केवल राममय अपितु नन्दमय भी बनाया। स्वामी रामानन्द के ही अवशिष्ट कार्यों को गोस्वामी तुलसीदास जी ने पूर्ण किया।

स्वामी रामानन्द ने युग की अपेक्षा को दृष्टि में रखकर सगुण-ब्रह्म के रूप में दशरथनन्दन राम को प्रतिष्ठित किया जिनसे भारतीय जनता पूर्वपरिचित थी। यद्यपि स्वामी जी के दो प्रमुख शिष्यों—कबीर एवं रविदास ने राम को निर्गुण ब्रह्म के ही रूप में समझा एवं समझाया। परन्तु स्वामी रामानन्द तथा उनके प्रशिष्य गोस्वामी तुलसीदास ने सगुण राम का ही गुणगान किया। तुलसी ने तो स्पष्टतः यह भी कह दिया कि—सगुनहिं अगुनहिं नहि कछु भेदा ! स्वामी रामानन्दाचार्य के राम पूर्णतः सगुण ब्रह्म हैं जिनके साथ भक्तों का पिता-पुत्र अथवा रक्ष्य-रक्षक का सम्बन्ध है—

विश्वं जातं यतो वा यदवितमखिलं लीनमप्यस्ति यस्मिन्
सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं मासयत्येतदेषः।
यद्भीत्या वाति वातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरो ज्ञः
साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्ता॥
पितापुत्रत्वसम्बन्धो जगत्कारणवाचिना।
रक्ष्यरक्षक भावश्च रणे रक्षकवाचिना॥[1]

परम्परा से प्रसिद्ध है कि स्वामी रामानन्द के 500 शिष्य थे, जिनमें 13 बहुत प्रसिद्ध हुये। इन तेरह में पाँच अर्थात् सेन नाई, कबीर साहब, पीपा जी, रमादास (रैदास) एवं धन्ना के साथ 'पद्मावती' नाम की एक शिष्या को भी सम्मिलित करके 'रहस्यत्रयी' के टीकाकार ने उन्हें छः मान लिया है और 'जितेन्द्रियाः' भी कहा है। शेष सात में अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, नर्हर्यानन्द, योगानन्द, सुखानन्द, गालवानन्द एवं भवानन्द को गिना कर उन्हें 'नन्दनाः'

1. हिन्दूधर्म के योगक्षेम चिन्तक-स्वामी रामानन्द, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, साहित्यविकल्प, प्रवेशांक, नवम्बर, 2014 पृ० 176-178.

बतलाया है। इस प्रकार वस्तुतः तेरह जान पड़ने वाले व्यक्तियों को 'सार्द्धद्वादश शिष्या' भी कहा है। भक्ति सुधा बिन्दु स्वाद (रूप कला जी, पृ॰ 294) में लिखा है—

> **राघवानन्द एतस्य रामानन्दस्ततोऽभवत्। सार्द्धद्वादशा शिष्याः स्युः रामानन्दस्य सद्गुणाः**
>
> **द्वादशादित्य संकाशा संसार तिमिरापा। श्रीमदनन्तानन्दस्तु सुरसुरानन्दनस्तथा**
>
> **नरहर्यानन्दस्तु योगानन्दस्तथैव च। सुखाभावागालवाञ्च सप्तैते नाम नन्दनाः**
>
> **कबीरश्च रमादासः सेना पीपा धनास्तथा। पद्मावती तदर्द्धश्च षडेते च जितेन्द्रियाः॥**

स्वामी रामानन्द के शिष्यों की संख्या 500 से अधिक है। उस शिष्य समूह में तेरह शिष्य गुरु के विशेष कृपापात्र थे। (1) अनन्तानन्द (2) सुखानन्द (3) सुरसुरानन्द (4) नरहरियानन्द (5) योगानन्द (ब्राह्मण) (6) पीपा (क्षत्रिय राजा) (7) सन्त कबीर (जुलाहा) (8) सेन (नाई) (9) धन्ना (जाट) (10) रमादास (चर्मकार) (11) नाभादास (12) पद्मावती (13) सुरसरि (स्त्रीद्वय)।

स्वामी रामानन्द पहिले व्यक्ति थे जिन्होंने उस समय ब्राह्मण गुरु होने का उच्चस्थान प्राप्त करके भी ब्राह्मणों से इतर जाति के लोगों को भी 'तारक मंत्र' की दीक्षा दी। इस दीक्षित सम्प्रदाय को 'श्री सम्प्रदाय' अथवा 'वैरागी सम्प्रदाय' कहते हैं। इसके मुख्य मंत्र को 'रामतारक' कहते हैं। इस मंत्र की दीक्षा गुरु, शिष्य के कान में फूँक देता है।

स्वामी रामानन्द द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम हैं—

1. आनन्दभाष्य (ब्रह्मसूत्र पर)
2. श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य
3. वैष्णवमतान्तर भास्कर
4. श्रीरामार्चनपद्धति आदि।

चतुर्थ अध्याय

प्रयाग के अर्वाचीन संस्कृत पण्डित

(1) केशव भट्ट

शिवा जी महाराज के राज्यकाल (सन्—1680) में प्रयाग में महाराष्ट्र के पेशवाओं का राज्य था। शिवाजी अपने पुत्र सम्भा जी के साथ औरंगजेब की कैद से निकल कर प्रयाग को सुरक्षित जान यहाँ आए और पुत्र सम्भा जी को महाराष्ट्रीय संस्कृत विद्वान् केशवभट्ट के संरक्षण में छोड़ गए। केशवभट्ट कवि कलश नाम से साहित्य जगत् में विख्यात थे। वे संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् तथा छन्दरचना में सिद्धहस्त थे। वे कवित्व शक्ति के धनी और मुखरवाणी सम्पन्न थे। सम्भा जी ने उन्हें 'छन्दोगामात्य' अर्थात् 'वेदज्ञ' की उपाधि दी थी।

सम्भा जी की कवि कलश से प्रगाढ़ मैत्री हुई। सम्भा जी ने पिता शिवा जी महाराज की भाँति औरंगजेब की अधीनता मृत्यु पर्यन्त स्वीकार नहीं की। औरंगजेब के लिए यह असह्य था। अवसर पाकर औरंगजेब ने छलबल से सम्भा जी को कैद किया। छाया की भाँति सम्भाजी के सर्वदा साथ रहने वाले कवि कलश भी कैद हुए। औरंगजेब ने दण्ड स्वरूप सम्भा जी की आँखे निकलवा ली तथा कलश कवि की जिह्वा कटवा ली।

(2) आदित्य राम भट्टाचार्य

विद्या और विमलवंश के सुवर्ण सुगन्ध के संयोग से समन्वित महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य[1] का जन्म घृतकौशिकगोत्रीय पण्डित रामकमल भट्टाचार्य के तृतीय पुत्ररूप में संवत् 1904 मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया (23 नवम्बर सन् 1847) को हुआ था। शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत कण्वशाखीय परिवार कलकत्ता के समीप जिला चौबीस परगना के अन्तर्गत राजपुर नामक ग्राम का निवासी था। बङ्गदेशीय ब्राह्मणों में कतिपय परिवार 'पाश्चात्त्य वैदिक श्रेणी के ब्राह्मण' कहलाते हैं। उसी श्रेणी के अन्तर्गत भट्टाचार्य जी का परिवार था।

---

1. संस्कृत के विद्वान् और पण्डित, रामचन्द्र मालवीय, वाराणसी, पृ॰ 78 से साभार।

पण्डित आदित्यराम का मातृपक्ष भी विद्वत्ता के क्षेत्र में अग्रणी था। स्मार्त रघुनन्दन के प्रसिद्ध टीकाकार, पण्डित काशीराम वाचस्पति के पौत्र, महाविद्वान् पण्डित राजीवलोचन न्यायभूषण इनके मातामह थे। पण्डित आदित्यराम के पूज्य पितृचरण पण्डित रामकमल भट्टाचार्य बाल्यकाल में ही मातृ-पितृ विहीन होकर नाना के यहाँ पालित हुए। वयस्क होने पर वे राजपुर कलकत्ता चले गए। उस समय घर में मात्र एक पितृव्य शेष थे। दोनों ने तीर्थयात्रा के लिए काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन जाने का निश्चय किया। इसी यात्रा क्रम में वे प्रयाग आए, यहाँ स्वजातीय पण्डित राजीवलोचन से मिले। पण्डित राजीवलोचन की सुशिक्षित कन्या धन्यगोपी का विवाह सुपात्र पण्डित रामकमल भट्टाचार्य के साथ सम्पन्न हुआ। बङ्गदेश में कोई निश्चित गृह के अभाव में तथा पत्नी के एकाकी माता-पिता को असहाय छोड़ने की विवशता में पण्डित रामकमल को प्रयाग को ही अपना स्थाई निवास स्थान बनाना पड़ा। प्रयाग में वे तीन पुत्र और तीन पुत्रियों के अभिभावक हुए। ज्येष्ठ पुत्र—वेणीमाधव, मध्यम-घनश्याम और कनिष्ठ—आदित्यराम हुए। ज्येष्ठ और कनिष्ठ प्रयाग तथा मध्यम बङ्गदेश के वासी हुए।

पण्डित आदित्यराम की माँ श्रीमती धन्यगोप देवी सुशिक्षित महिला थीं। सूतिकागार में उन्होंने पण्डित जी की जन्मकुण्डली बना ली थी जो आज भी सुरक्षित है। कहते हैं कि पण्डित आदित्य राम के गर्भ में रहते हुए उन्होंने स्वप्न देखा था कि उनके गर्भ में कोई विशिष्ट पुरुष प्रवेश कर रहा है। आदित्यराम मात्र दस वर्षीय बालक थे जब बंगाल में गङ्गा तट पर इनकी माता का देहावसान हो गया। प्रयाग लौट कर इनकी शिक्षा आरम्भ हुई परन्तु प्रयाग में अंग्रेज़ी आदि के शिक्षण की व्यवस्थित सुविधा न देखकर ज्येष्ठ भ्राता वेणीमाधव ने इनको अध्ययनार्थ काशी भेज दिया।

काशी में आदित्यराम विद्यालय में अंग्रेजी तथा घर पर संस्कृत का अभ्यास करने लगे। काशीस्थ अनेक संस्कृत महाविद्वानों से उन्होंने संस्कृत ज्ञान प्राप्त किया। पण्डित कैलाशचन्द्र शिरोमणि, पण्डित प्रेमचन्द्र तर्कवागीश, पण्डित बेचनराम त्रिपाठी और पण्डित जयनारायण तर्कालंकार सदृश महाविद्वान् उनके विद्यागुरु हुए। सन् 1864 में सरकारी स्कूल की प्रवेशिका परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर वे कॉलेज में प्रविष्ट हुए। कालेज में प्रतिभा बल से वे अंग्रेजी और संस्कृत के विद्वान् प्रो॰ ग्रिफिथ के प्रिय शिष्य हुए। बी॰ ए॰ तथा एम॰ ए॰ (संस्कृत) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर अग्रिम अध्ययन हेतु कलकत्ता चले गए। कलकत्ते के महामहोपाध्याय पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न का शिष्यत्व स्वीकार कर अनेक वृत्तियाँ, सुवर्णपदक और पारितोषिक प्राप्त किए। इसी काल

में (सन् 1867) उनका विवाह सुप्रसिद्ध बाबू बङ्किमचन्द्र की परिवार कन्या श्रीमती श्यामाङ्गिनी देवी के साथ सम्पन्न हुआ।

प्रो॰ ग्रिफिथ के आदेश से मध्य प्रदेश के सागर जिला स्थित विद्यालय में वे संस्कृत अध्यापक पद पर नियुक्त हुए। प्रयाग में ग्रिफिथ साहब का स्थानान्तरण होने पर ग्रिफिथ साहब के अनुरोध से शीघ्र ही दरभंगा कैसल (लाउदर साहब की कोठी) में उद्घाटित म्योर सेण्ट्रल कॉलेज में अध्यापन कार्य करने लगे। प्रयाग में म्योर सेण्ट्रल कॉलेज में संस्कृताध्यापक पद पर अध्यापन करते हुए उन्होंने 55 वर्ष की अवस्था में सन् 1901 में अवकाश ग्रहण किया।

प्रो॰ आदित्य राम भट्टाचार्य को काशी स्थित सरकारी संस्कृत विद्यालय में अंग्रेजी भाषा के अध्यापन के लिए आमन्त्रित किया गया। इस पद को सुशोभित करने वाले वे प्रथम भारतीय थे। जर्मनी से प्रो॰ टीवो के उक्त पद पर नियुक्त हो कर आ जाने पर वे काशी से म्योर सेण्ट्रल कॉलेज के पद पर पुनः लौट आए। प्रो॰ आदित्यराम अपनी विद्वत्ता और आचरण से सबके सम्मान पात्र थे। वे हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिए भी प्रयत्नशील रहते थे। वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सम्मानित सदस्य थे। छात्रों के हित का सर्वदा ध्यान रखने के कारण विश्वविद्यालय में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। प्रयाग में 'हिन्दु समाज' का संगठन उन्हीं के प्रयत्नों से हुआ था, यह संस्था हिन्दु समाज में नवजागरण का कार्य करती थी। प्रो॰ आदित्यराम हिन्दुधर्म के हित की चिन्ता से थियोसोफिकल सोसाइटी के भी सदस्य रहे। पश्चात् उस संस्था से हिन्दु समाज के उद्धार की आशा न देख सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। सन् 1898 में श्रीमती एनी बेसेण्ट, बाबू गोविन्ददास, डॉक्टर भगवान दास, बाबू उपेन्द्रनाथ वसु आदि के सहयोग से काशी में सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना हुई। उसके सञ्चालकों की प्रार्थना पर प्रो॰ आदित्यराम उस संस्था के अध्यक्ष (सन् 1904-1906) पद पर आसीन हुए। विश्वविद्यालय के प्रो वाइस चांसलर का पद ग्रहण कर वे पुनः (सन् 1916-1919 पर्यन्त) काशीवासी हुए। पूर्ण मनोयोग और उत्साह से वृद्धावस्था में प्रो॰ आदित्यराम ने इस नवीन शिक्षण संस्थान का संगठन किया। कार्यकाल समाप्त कर वे 71 वर्ष की आयु में प्रयाग लौट आए। अधिक परिश्रम से स्वास्थ्य क्षीण हो चुका था, नेत्र ज्योति क्षीणतम हो चुकी थी, तीन वर्ष पश्चात् (18 अक्टूबर सन् 1921 कार्तिक कृष्ण द्वितीया संवत् 1978 को) उनकी श्वासगति रुक गई।

प्रो॰ आदित्यराम को अंग्रेज सरकार ने सन् 1897 में 50 वर्ष की आयु में महामहोपध्याय की पदवी से सम्मानित किया था। इसी समय उनके मध्यम भ्राता श्री घनश्याम भट्टाचार्य तथा ज्येष्ठ पुत्र सत्यवान् भट्टाचार्य दिवङ्गत हुए। इन दो

असामायिक दुर्घटनाओं ने उन्हें प्राणान्तक पीड़ा पहुँचाई। अग्रिम पञ्चवर्षीय अवशिष्ट कार्यकाल की समाप्ति के पश्चात् भी वे विश्व विद्यालय की अनेक समितियों के सदस्य रह कर कार्य करते रहे।

प्रो॰ आदित्यराम के धार्मिक जीवन पर श्री वैष्णव सम्प्रदाय के वैरागी साधु, प्रयाग के गङ्गापार पुरानी झूँसी के समुद्रकूप नामक स्थानवासी सुदर्शन दास का प्रभाव था। प्रयाग के ही दारागंज क्षेत्र में रहने वाले पण्डित अम्बिका दत्त शास्त्री के साथ भी वे साहित्यिक विषयों पर चर्चा करते थे। वे अन्य सिद्धपुरुषों के सम्पर्क में भी रहते थे। प्रातः त्रिवेणी दर्शन के लिए नियमित जाते, घण्टी में जल भर कर लाते, सायंकाल सूर्यास्त के सयम उसी घण्टीजल से मार्ग में, सभा में, गृह में कहीं भी जूते उतार कर अर्घ्य देते थे। इकतारा उनका प्रिय वाद्य था। वे दोनों सन्ध्या कालों में प्रातः सायं पूजाकर्म के पश्चात् अपने इकतारे पर हिन्दी पंजाबी, बंगाली आदि अनेक भाषाओं के भजन गाते थे।

प्रो॰ आदित्यराम ने प्रयाग के दारागंज क्षेत्र में गंगातट पर प्राचीन दशाश्वमेघ घाट पर (सन् 1879 में) बने अपने आवास से लगे भवन में अपनी समस्त अर्जित पूँजी व्यय कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रबन्धन में संस्कृत पाठशाला की नींव रखी। दारागंज वासी एक विद्वान् पुरुष, बालब्रह्मचारी, संन्यासी मूलतः नेपाल देशीय श्री शिवशर्मा की स्मृति में पाठशाला का नाम रखा—श्री शिवशर्मा संस्कृत महाविद्यालय। आज भी यह विद्यालय संस्कृत भाषा की सेवा में संलग्न है।

प्रो॰ आदित्यराम ने ऋजुव्याकरण नामक पुस्तक की रचना की थी। यह पुस्तक अंग्रेज़ी स्कूलों के पाठ्यक्रम में समाहित थी। अंग्रेज़ी के साथ वैकल्पिक विषय के रूप में संस्कृत पढ़ने वालों के लिए यह पुस्तक उत्तम है। इससे व्यवहार योग्य संस्कृत का ज्ञान सरलता से हो जाता है।

प्रो॰ आदित्यराम का जीवनवृत्त उनके प्रिय शिष्य पण्डित मदन मोहन मालवीय ने संक्षिप्त रूप से लिखा है। उसी लेख का भाषान्तर यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

(3) लाला सीताराम 'भूप'

कायस्थ कुलोद्भव रायबहादुर अवधवासी लाला सीताराम 'भूप' बी॰ ए॰ साहित्यरत्न ब्रजभाषा के स्थापित कवि थे। कविकर्म हेतु वे 'भूप' उपनाम का प्रयोग करते थे। संस्कृत के उच्चस्तरीय साहित्य ग्रन्थों से सधे हुए सरल अनुवाद के माध्यम से हिन्दी जगत् को सर्वप्रथम आपने ही परिचित कराया था। आपने प्रबुद्ध पाठकों को जागृत करने हेतु अनेक छोटी-छोटी पुस्तिकाओं की रचना की

थी। साहित्य की आधारशिला रूपी ये पुस्तकें आज धरोहर रूप हैं।

अद्‌भुत पाण्डित्य से समृद्ध लाला सीताराम की प्रकाशित रचना 'हिस्ट्री ऑव अयोध्या' (अयोध्या का इतिहास) सन् 1932 में प्रकाशित हुई थी। वह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 30 सितम्बर, 2010 के माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद के अयोध्या के अहम् निर्णय में सर्वाधिक उद्धृत आधार पुस्तकों में से एक बनी। प्रयागवासी प्रत्येक जन के अवचेतन मन में काल के अन्तराल को चीर कर दो पंक्तियाँ बसी हैं, ये पंक्तियाँ लाला सीताराम 'भूप' की स्फुट रचनाओं में से एक 'बैरगिया नाला' की हैं—

बैरगिया नाला जुलुम जोर, नौ पथिक नचावैं तीन चोर।
जब तबला बाजे धीन-धीन, तब एक-एक पर तीन-तीन।

लाला सीताराम ने अपने पैतृक गृह अयोध्या में लगभग सन् 1860 में जन्म लेकर स्थानीय मिडिल स्कूल में आरम्भिक शिक्षा ग्रहण की, मेधावी विद्यार्थी लाला सीताराम अग्रिम अध्ययन हेतु फैजाबाद हाईस्कूल में प्रविष्ट हुए। यहाँ से उन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उस समय बिहार एवं संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की परीक्षाएँ कलकत्ता विश्वविद्यालय करवाता था। अतः उच्चशिक्षा के लिए वे लखनऊ के कैनिंग कॉलेज (लखनऊ विश्वविद्यालय) में प्रविष्ट हो गए। यहाँ से उन्होंने इण्टर मीडिएट (सन् 1877) एवं बी॰ ए॰ (सन् 1879) की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। कैनिंग कॉलेज में लाला सीताराम को अपनी प्रतिभा निखारने का उन्मुक्त अवसर मिला। यहाँ पढ़ते हुए उन्होंने मिर्जा सज्जाद हुसैन द्वारा प्रकाशित सुप्रसिद्ध समाचार-पत्र अवध पंच में अनेक लोकप्रिय लेख लिखे।

बी॰ ए॰ की परीक्षा में सर्वोच्च प्रथम स्थान अर्जित करने के उपलक्ष्य में लखनऊ के प्रसिद्ध धनिक मिर्जा अब्बास 'बेग' ने एक बृहद् अलंकरण समारोह का लखनऊ की भव्य बारादरी में आयोजन करके संयुक्त प्रान्त के मानस्वरूप लाला सीताराम का सार्वजनिक सम्मान किया था। यही नहीं, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने लखनऊ प्रवास काल (सन् 1879) में लाला सीताराम से साहित्य चर्चा की थी।

वैष्णव पिता (अयोध्यावासी बाबा रघुनाथ दास के शिष्य) के परामर्श को स्वीकार कर उन्होंने अध्यापन को वरीयता दी तथा बनारस के प्रसिद्ध क्वीन्स कॉलेज में तृतीय श्रेणी के अध्यापक नियुक्त हो गए। कुछ माह पश्चात् सीतापुर हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक पद पर प्रोन्नत कर दिए गए। पश्चात् वे कानपुर तथा मेरठ के विद्यालयों में भी प्रधानाध्यापक के रूप में स्थानान्तरित किए गए। वे कुछ काल के लिए उपजिलाविद्यालय निरीक्षक भी रहे। अन्त में सेवाकार्य के

प्रारम्भिक स्थल बनारस में स्थानान्तरित हो अध्यापन कार्य करते रहे।

लाला सीताराम का व्यक्तित्व एक शिक्षक अथवा एक शिक्षाधिकारी से अधिक एक गम्भीर अध्येता व साहित्य को समर्पित व्यक्तित्व के रूप में स्थापित हो चुका था। एक साहित्यिक बौद्धिक परिवेश में रहने वाले लाला सीताराम बनारस में पण्डित बापूदेव शास्त्री, सी॰ आई॰ ए॰ के सम्पर्क में आए। उनके ही माध्यम से संस्कृत कॉलेजों के सम्पर्क में भी आ गए। उन दिनों काशी के विद्वत् समाज में तीन प्रकरण चर्चा के बिन्दु थे—मन्त्र मीमांसा, राजराजेश्वरी स्त्रोत रत्न समीक्षा तथा प्रतिस्विका शौच। इन विषयों पर काशी की विद्वत् मण्डली में विचार-विमर्श, शास्त्रार्थ आदि चलते रहते थे। वे इस सन्दर्भ में आचार्य रामप्रसाद शास्त्री के तार्किक विचारों से सहमत थे। आचार्य रामप्रसाद शास्त्री की ओर से वे प्रोफेसर मैक्समूलर बट तथा प्रोफेसर थिबाउट से पत्राचार करते थे। यह पत्राचार उनके संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं पर समान अधिकार सूचक है। प्रतिस्विका शौच के प्रकरण में अपना सशक्त पक्ष रखते हुए उन्होंने महर्षि दयानन्द से भी पत्र व्यवहार किया था यतोहि महर्षि के सम्पर्क में वे अपने अध्ययन काल (सन् 1879) में ही आ चुके थे।

संस्कृत में अधिकृत विद्वता अर्जित करने के लिए उन्होंने 'वेद' विषय से स्नातकोत्तर कक्षा में प्रवेश लिया। पण्डित कुल्यश्यश्वी शास्त्री के निर्देशन में एम॰ ए॰ प्रथम वर्ष की परीक्षा उत्तोत्तम अंकों से उत्तीर्ण की। उसी वर्ष वे पिता के रोग तथा मृत्यु के कारण अन्तिम वर्ष की परीक्षा नहीं दे सके।

लखनऊ प्रवास काल में लाला सीताराम ने उर्दू व फारसी का अच्छा अभ्यास कर लिया था। मुशायरों में वे एक स्थापित शायर की सदृश शेर व कलाम सुनाते थे। इस क्षेत्र में उनके शायर शिक्षक थे—गुलाम हसनैन 'कद्र'। शायर कद्र के संरक्षण में उनका उर्दू-फारसी ज्ञान परिष्कृत हुआ और वे 'अज्म' तखल्लुस से शायरी के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गए।

फैज़ाबाद की पाठशाला में उनके सहपाठी थे—अयोध्या के महाराजा श्री प्रताप नारायण सिंह जो साहित्य मर्मज्ञ एवं रससिद्ध कवि थे। महाराजा ने अपनी प्रसिद्ध काव्यकृति 'रस कुसुमाकर' की रचना लाला सीताराम भूप के संस्कृत ज्ञान का लाभ उठाते हुए पूर्ण की थी। श्री प्रताप नारायण सिंह के अनुरोध पर लाला सीताराम ने कालिदास की प्रसिद्ध रचना 'रघुवंश' का हिन्दी अनुवाद किया था। यह अनुवाद हिन्दी भाषा के दोहों और चौपाइयों में किया गया था। उन्हीं के आग्रह पर लाला सीताराम ने ''ऋतुसंहार' का अनुवाद भी मात्र चार दिनों में पूर्ण कर दिया था।

फैज़ाबाद के अपने चार वर्षीय (1891-1894) प्रवास में उन्होंने फ़ैजाबाद

इण्टरमीडिएट कॉलेज के प्रधानाचार्य पद का भी दायित्व निर्वहण किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के आरम्भिक प्रतिष्ठापना काल में लाला सीताराम को इसका फेलो (1891-1893) मनोनीत किया गया था। वे अपने गृह जनपद के म्यूनिसिपल बोर्ड के सचिव निर्वाचित किए गए थे। वस्तुतः यह उनका नागरिक अभिनन्दन था।

सन् 1894 में लाला सीताराम की प्रशासकीय कुशलता से प्रभावित होकर अंग्रेज़ शासकों ने उन्हें डिप्टी कलेक्टर बना दिया। सन् 1909 में 49 वर्ष की आयु में प्रोन्नत हो कर प्रथम श्रेणी के डिप्टी कलेक्टर पद को सुशोभित करते हुए वे कानपुर नगर से सेवानिवृत्त हुए। कानपुर की निवास अवधि में उन्होंने 'प्राचीन नाटक एवं नाट्यशास्त्र शृंखला' के छः भागों का लेखन सम्पन्न किया। कानपुर में ही उन्होंने 'गणित' पुस्तक दो भागों में लिखी।

लाला सीताराम ने डिप्टी कलेक्टर के पद पर झाँसी में नियुक्त रहते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा कविवर जयदेव रचित गीतगोविन्द के अनुवाद 'विहार वाटिका' का आमुख लिखा। सेवा विमुक्त होकर लाला सीताराम 'भूप' ने प्रयाग में स्थाई वास का निर्णय लिया। मुट्ठीगंज प्रयाग में रहते हुए निरन्तर साहित्य सेवा करते हुए वे 2 जनवरी सन् 1936 को दिवंगत हुए।

प्रयाग के शिक्षित समाज ने लाला सीताराम को अनेक समितियों की सदस्यता से जोड़ा। इलाहाबाद में उनकी ख्याति से प्रभावित सर आशुतोष मुखर्जी, कुलपति, कलकत्ता विश्वविद्यालय उनसे मिलने आए। लाला सीताराम ने सर आशुतोष मुखर्जी को प्रेरित कर कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत, अरबी, फारसी तथा हिन्दी विषयों की स्नातकोत्तर स्तरीय कक्षाएँ आरम्भ कराईं। साहित्यिक जगत् के लिए सर्वाधिक श्रेयस्कर उपलब्धि थी—19 अगस्त सन् 1925 को रायबहादुर लाला सीताराम की इण्डियन कौन्सिल एक्ट के अन्तर्गत निर्मित संयुक्त प्रान्त की विधानपरिषद् के गैर सरकारी अध्यक्ष के पद पर नियुक्ति। वे पुनः दो बार 10 जनवरी सन् 1927 तथा 18 नवम्बर, 1930 को परिषद् के अध्यक्ष पद पर निर्वाचित हुए। विद्याव्यसनी रायबहादुर लाला सीताराम रामबाग स्थित 'विद्यामण्डल पुस्तकालय' को विशेष सहायता देते थे।[1]

लाला सीताराम 'भूप' ने अपने सुदीर्घ साहित्य सेवी जीवन में संस्कृत के सभी महत्त्वपूर्ण नाटकों तथा अंग्रेजी में शेक्सपीयर के नाटकों के उत्कृष्ट सरल अनुवाद कर हिन्दी प्रेमी जनता को स्तरीय साहित्य से परिचित कराया। उपजिलाविद्यालय निरीक्षक श्री दीनदयाल तिवारी के सहयोग से हिन्दी शिक्षावली

1. प्रयागप्रदीप, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव, पृ० 66।

पाँच भाग श्री चिन्तामणि घोष के प्रयागस्थ प्रसिद्ध इण्डियन प्रेस से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक शृंखला ने लोकप्रियता में देश की सीमाओं को भी लाँघ लिया था।

संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद—

1. मेघदूत घनाक्षरी (सन् 1883) ; 2. चाणक्यशतक (सन् 1883) 3. कुमार सम्भव (सन् 1884) 4. रघुवंश (सन् 1883); 5. नागानन्द (सन् 1887) 6. ऋतुसंहार (सन् 1893) 7. महावीरचरित, 8. उत्तररामचरित, 9. मालतीमाधव, 10. मालविकाग्निमित्र, 11. मृच्छकटिक (सन् 1898-1899); 12. किरातार्जुनीयम् (सन् 1902)

अंग्रेजी नाटकों के हिन्दी अनुवाद—

कॉमेडी ऑव एरर्स, मच एडू एबाउट नथिंग, रोमियो एण्ड जूलियट, ऐज़ यू लाइक इट, टेम्पेस्ट, हैमलेट, किंग लियर, ओथेलो, जूलियस सीज़र आदि।[1]

(4) गङ्गानाथ झा

संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् तथा प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डॉ॰ गंगानाथ झा[2] का जन्म सितम्बर सन् 1871 को उत्तर बिहार के दरभंगा जिले में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उनके ग्रामीण घर में हुई थी। सन् 1880 में उन्होंने दरभंगा राज स्कूल में प्रवेश लिया तथा सन् 1886 में 14 वर्ष की आयु में मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। दशम कक्षा के पश्चात् उन्होंने उत्तर प्रदेश में वाराणसी के प्रसिद्ध क्वीन्स कॉलेज में प्रवेश लिया। सन् 1888 में इण्टर की परीक्षा प्रथम श्रेणी, ग्यारहवें स्थान से कलकत्ता विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। उत्तम परीक्षाफल के उपलक्ष्य में उन्होंने विजयनगरम पदक, सरकारी छात्रवृत्ति और संस्कृत विषय में सर्वाधिक अंक अर्जित करने के कारण मित्रपदक पुरस्कार प्राप्त किए। सन् 1890 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में बी॰ ए॰ (दर्शनशास्त्र ऑनर्स) तथा मात्र 21 वर्ष की आयु में मेधावी छात्र के रूप में एम॰ ए॰ परीक्षा उत्तीर्ण कर ली।

सन् 1893 में डॉ॰ गंगानाथ झा दरभंगाराज पुस्तकालय में पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुए। महाराजा सर लक्ष्मेश्वर सिंह, तत्कालीन पुस्तकालय स्वामी की हार्दिक इच्छा थी कि उनका पुस्तकालय राष्ट्र का समृद्धतम पुस्तकालय हो। डॉ॰ झा को इस दृष्टि से पुस्तकालय को व्यवस्थित करने का

1. समग्र विवरण 'हिन्दी के बहाने', प्रो॰ हेरम्ब चतुर्वेदी से साभार।
2. द जर्नल ऑफ द गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, 1973 से साभार

काम सौंपा गया। उन्होंने अति उत्साहपूर्वक महाराजा द्वारा प्रदत्त धनराशि में मूल्यवान् पाण्डुलिपियों तथा पुस्तकों का संग्रह कर पुस्तकालय को प्रख्यात कर दिया। कार्य से अवशिष्ट समय में वे हिन्दू संस्कृति तथा दर्शनग्रन्थों का गहन अध्ययन करते थे। संस्कृत की मौलिक पुस्तकों का अध्ययन कर उन्होंने कुछ मूल संस्कृत दर्शनग्रन्थों का अंग्रेज़ी में अनुवाद भी किया। सन् 1902 तक उन्होंने पुस्तकालय का कार्यभार संभाला। सन् 1902 में डॉ॰ झा पुस्तकालयाध्यक्ष पद से त्यागपत्र देकर इलाहाबाद आए तथा म्योर सेन्ट्रल कॉलेज, इलाहाबाद में संस्कृत विभाग में प्रोफेसर पद स्वीकृत कर लिया। म्योर सेन्ट्रल कॉलेज के प्राचार्य डा॰ थिबाउत संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ॰ झा की योग्यता से प्रभावित थे। उनकी प्रेरणा से डॉ॰ झा ने प्रादेशिक शिक्षा सेवा की परीक्षा नवम्बर सन् 1902 में उत्तीर्ण कर ली। संस्कृत अध्यापक के रूप डॉ॰ झा विद्यार्थियों में तथा सहाध्यापकों में विशेष लोकप्रिय थे।

सन् 1902 में डॉ॰ झा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के फेलो पद पर मनोनीत किए गए तथा कलासंकाय की सदस्यता भी उन्हें प्राप्त हुई। सन् 1907 में डॉ॰ थिबाउत की सहायता से उन्होंने इण्डियन थॉट (भारतीय विचारधारा) नाम से एक शोधपत्रक का प्रकाशन आरम्भ किया। इस जर्नल में प्रमुखतः संस्कृत के मूल ग्रन्थों का अंग्रेज़ी अनुवाद मुद्रित होता था।

सन् 1918 में प्रो॰ झा का स्थानान्तरण वाराणसी में होने से शोधपत्रिका प्रकाशन का कार्य अवरुद्ध हो गया। सन् 1909 में डॉ॰ झा ने डॉक्टर ऑव लैटर्स उपाधि के लिए अंग्रेज़ी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में भारतीय दर्शन की विशिष्ट शाखा—प्रभाकर भट्ट मान्य पूर्वमीमांसा पर पाण्डित्यपूर्ण शोधनिबन्ध लिखा। उन्हें नवम्बर 1909 के विश्वविद्यालय दीक्षान्त समारोह में डी॰ लिट्॰ की उपाधि से विभूषित किया गया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के इतिहास में यह प्रथम अवसर था। सन् 1910 में प्राच्य अध्ययन के क्षेत्र में उल्लखेनीय योगदान के लिए सरकार ने उन्हें महामहोपाध्याय की पदवी प्रदान की।

सन् 1918 में डॉ॰ गंगानाथ झा को वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में प्राचार्य पद पर नियुक्त कर दिया गया। प्रथम हिन्दू डॉ॰ झा को अंग्रेज़ों की अपेक्षा यह गौरव हस्तगत हुआ। सन् 1921 में वे प्रोन्नत होकर भारतीय शैक्षिक सेवा के सर्वोच्च पद भारतीय राज्य काउन्सिल के गवर्नर जनरल बन गए। सन् 1925 में संस्कृत विषय में डॉ॰ झा की अद्भुत विद्वत्ता का आकलन करके इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने उन्हें डॉक्टर ऑव लॉ की सम्मान्य उपाधि से तथा सन् 1936 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा सम्मान्य डॉक्टर ऑव लिटरेचर उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1923 तक बनारस में कार्य करते हुए

उन्होंने कुशलतापूर्वक प्रशासन दायित्व भी सम्भाला।

सन् 1941 में प्रो॰ झा विशेष योग्यता से ब्रिटिश अकादमी के दूरस्थ सदस्य चयनित हुए। यह गौरव हस्तगत करने वाले वे प्रथम भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त सर्वपल्ली डॉ॰ राधाकृष्णन, प्रोफेसर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी द्वितीय भारतीय थे। वे रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के सम्मान्य सदस्य भी रहे।

प्रो॰ झा नितान्त सदाचारी, अध्ययनसमर्पित, उदारमना पुरुष थे। उनके इन्हीं गुणों ने उन्हें शिक्षा के सर्वोच्च शिखर-कुलपति के पद पर निरन्तर नौ वर्षों तक स्थापित रखा। इस पद का निर्वाह उन्होंने पूर्ण निष्ठा, आत्मविश्वास और विश्वविद्यालय परिवार की भाँति किया। सन् 1932 में इस दायित्व से मुक्त होने पर विश्वविद्यालय ने उनके नाम से छात्रावास का नामकरण कर स्वयं को गौरवान्वित किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय न्यायालय ने उन्हें आजीवन सदस्यता प्रदान की।

प्रो॰ झा ने अपनी विस्तृत विद्वत्ता से सर्वत्र ख्याति अर्जित की। सन् 1926 में उनके द्वारा 'कलकत्ता विश्वविद्यालय कमला व्याख्यान' दार्शनिक विषयों पर प्रस्तुत किए गए। जैमिनीय मीमांसा सूत्रों के अंग्रेज़ी अनुवाद के लिए सन् 1937 में उन्हें रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की मुम्बई शाखा ने कैम्पबेल स्वर्ण पदक से सम्मानित किया। सन् 1939 में बड़ौदा में 'शंकराचार्य का व्यक्तित्व और कृतित्व' विषय पर प्रदत्त उनके विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान मुद्रित हुए। सन् 1940 में उन्होंने महाराजा रामेश्वर सिंह, दरभंगा के आग्रह पर 'वेदान्त दर्शन' सम्बन्धी सारगर्भित व्याख्यान दिए। आजीवन अध्ययन साधना में रत प्रो॰ झा ने दशाधिक विद्वत्तापूर्ण शोधपत्रों, छः उच्चस्तरीय ग्रन्थों का लेखन, 25 ग्रन्थों का सम्पादन तथा अनुवाद तथा सात अन्यान्य विद्वानों के ग्रन्थों की पाण्डित्यपूर्ण भूमिका लिखी है। उनके द्वारा किए गए आंग्लभाषानुवादों, शोधपत्रों, व्याख्यानों, संगोष्ठियों आदि से विश्व ने भारतीय दर्शन के उच्चस्तरीय विचारों को ग्रहण किया। भारतीय दर्शन की गहनता से परिचित विश्व की दृष्टि में भारत का मानवर्धन हुआ। इसका श्रेय डॉ॰ गंगानाथ झा को साक्षात् है।

डॉ॰ झा सन् 1924 में द्वितीय दार्शनिक कॉन्फ्रेन्स तथा तृतीय प्राच्य कॉन्फ्रेन्स, मद्रास के अध्यक्ष चयनित हुए। सन् 1932 में डॉ॰ झा के मित्रों, प्रशंसकों, शिष्यों की सहमति से भारत की प्राच्यसंस्कृति विषयक निबन्धों से समृद्ध एक स्मृत्यभिन्नदन ग्रन्थ उन्हें उनकी षष्टिपूर्ति (60वें जन्मदिन) पर भेंट किया गया। इस उच्चस्तरीय ग्रन्थ में डॉ॰ कीथ, डॉ॰ विन्टरनिट्ज़, डॉ॰ कोनो, प्रो॰ थीएम, डॉ॰ ओटो स्ट्राउस सदृश विद्वानों के लेख समाहित थे। 'सादा जीवन

उच्च विचार' की साक्षात् प्रतिमूर्ति डॉ॰ झा नवम्बर 1941 में दिवंगत हुए। यह उनका सौभग्य था कि सन् 1938 में उनके द्वितीय पुत्र प्रो॰ अमरनाथ झा उनके जीवनकाल में ही उपकुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पद पर प्रतिष्ठित हुए थे।

सन् 1941 में डॉ॰ झा के देहावसान के शीघ्र पश्चात् विद्वज्जगत् ने यह अनुभव किया कि उनके नाम से शोध अध्ययन केन्द्र की स्थापना हो। उनकी द्वितीय पुण्यतिथि नवम्बर सन् 1943 को सर तेजबहादुर सप्रू की अध्यक्षता में पण्डित महामना मदन मोहन मालवीय के करकमलों से सर गंगा नाथ झा स्मारक का विधिवत् उद्घाटन हुआ। इस भवनं में गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना की गई। पीठ में विद्वानों के निर्देश में निरन्तर शोधकार्य होता है। विद्यार्थियों की शोध सम्बन्धी अध्ययन सुविधा के लिए यहाँ लगभग 50 हजार पुस्तकों, दुर्लभ पाण्डुलिपियों तथा ताड़पत्रग्रन्थों का संकलन है। विद्यापीठ सन् 1943 नवम्बर मास से गंगानाथझा रिसर्च जर्नल का प्रकाशन भी कर रहा है जो शोध के क्षेत्र में एक उच्चस्तरीय आयाम है!

प्रो॰ ओटो स्ट्राउस, प्राच्यविद्वान् जर्मनी ने एक पत्र में प्रो॰ गंगानाथ झा को लिखा था—प्रिय महामहोपाध्याय! आपकी षष्टिपूर्ति के अवसर मैं आपको साक्षात् उपाध्याय के रूप में देखता हूँ। आपका मीमांसा, न्याय और वेदान्त का योगदान मेरे लिए विशेष है क्योंकि उसी के माध्यम से मैं भारतीय दर्शन की गहनता को जान सका। संस्कृत के क्षितिज पर आप प्राच्यविद्याविशारद और आधुनिक मनोवृत्ति सम्पन्न अध्येता हैं। ईश्वर आपको शतायु करे।

प्रो॰ गंगानाथ झा द्वारा लिखित, सम्पादित तथा अनूदित पुस्तकों की सूची—

लिखित

1. कविरहस्य
2. न्यायप्रकाश
3. पूवमीमांसा इन इट्स सोर्सेज़
4. शांकरवेदान्त
5. वैशेषिकदर्शन
6. न्याय फलॉसॉफी ऑव गौतम
7. हिन्दू एथिक्स
8. भावबोधिनी (प्रसन्नराघवटीका)
9. न्यायकलिका
10. चतुरग्निविधानेन जलाशयोत्सर्ग-पद्धतिः

सम्पादित तथा अनूदित

1. मीमांसान्यायप्रकाश
2. कादम्बरी
3. गौतमस् न्यायसूत्राज़
4. द न्यायदर्शन
5. हिन्दू एथिक्स
6. द पूर्वमीमांसा सूत्राज़ ऑव जैमिनि

11. मेघदूतम्
12. तर्कभाषा
13. गीतगोपीपतिकाव्यम्
14. कृष्णदीक्षिताज़ परिभाषा
15. श्लोकवार्तिक (कुमारिल भट्ट)
16. अद्वैतसिद्धि (मधुसूदन सरस्वती)
17. काव्यप्रकाश (मम्मट भट्ट)
18. भावनाविवेक (मण्डन मिश्र)
19. मनुस्मृति
20. द तन्त्ररत्नम् (पार्थससारथि मिश्र)
21. द योगदर्शन (पंतजलि)
22. द पदार्थधर्मसंग्रह (प्रशस्तपाद)
23. शाबरभाष्य
24. वादिविनोदः (शंकरमिश्रः)
25. तत्त्वसंग्रह (शान्तरक्षित)
26. खण्डनखण्डखाद्य (श्रीहर्ष)
27. छान्दोग्योपनिषद्
28. पुरुषपरीक्षा (विद्यापति ठक्कुर)
29. योगसारसंग्रह (विज्ञानाभिक्षु)

(5) गंगाप्रसाद उपाध्याय

पं॰ गंगाप्रसाद उपाध्याय का जन्म कुलश्रेष्ठ कायस्थ परिवार में 6 सितम्बर, 1881 को एटा जिले के नदरई ग्राम में हुआ था। यह ग्राम काली नदी के किनारे बसा है। पिता श्री कुञ्ज बिहारी लाल ने नामकरण संस्कार के समय अपने नामसाम्य के आधार पर पुत्र का नाम रखा—श्री कृष्ण मुरारी लाल किन्तु घर के पुरोहित ने ज्योतिषीय गणना के अनुकूल उनका नामकरण किया—गंगा प्रसाद। बाल्यावस्था के आरम्भिक वर्षों में 'कृष्ण मुरारी' या 'मुरारी' नाम ही प्रचलन में था किन्तु जीवन में प्रवेश करने पर जब आरम्भ से सफलता और ख्याति दोनों मिलने लगीं तो गंगा प्रसाद नाम ही सर्वमान्य हुआ।

दस वर्ष की अल्पायु में ही बालक गंगाप्रसाद को दुर्भाग्य ने आ घेरा। पिता श्री कुञ्ज बिहारी लाल 28 वर्ष की आयु में ही दिवंगत हुए। उस समय बालक गंगाप्रसाद की आयु मात्र 10 वर्ष थी। दायित्व के रूप में थीं—माता श्री

गोविन्दी जी, एक बहन और एक दस मास का अनुज। माँ गोविन्दी जी निरक्षर थीं, उन्होंने भी अपने पिता को अल्प आयु में खो दिया था। उनकी माँ ने ही उनका लालन-पालन किया था। गंगाप्रसाद जी कहते थे—मुझे दो माताओं के स्नेह का सौभाग्य मिला, मेरी माँ और नानी।

पिता की असमय मृत्यु से पिता के संरक्षण और निर्देशन की सुविधा तो समाप्त ही हो गई किन्तु कठिनाई के दाहक ताप से शोधित होकर जो व्यक्तित्व निखरा वह शुद्ध सोना था। तीव्र मेधाशक्ति और परिश्रम ने प्रगति के मार्ग प्रशस्त किए। पाठशालीय शिक्षा के पश्चात् 14 वर्ष की अल्पायु में सन् 1895 में मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की तो साधनहीनता की विषम परिस्थितियों में भी संयुक्त प्रान्त में चतुर्थ स्थान प्राप्त किया। विपन्नता के उन दिनों में वे घर से 6 मील दूर पाठशाला का मार्ग पैदल तय करते थे और पुस्तकों आदि की आवश्यकता पूर्ति के लिए माँ अपने आभूषण गिरवीं रख कर धन व्यवस्था करती थीं। जीवन निर्माण के इस यज्ञ में दोनों अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार आहुति दे रहे थे। शिक्षाप्राप्ति के इस कठिन संघर्ष में भी संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी और जीवन के उत्तरार्ध में अरबी भाषा का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

मिडिल की परीक्षा समाप्त कर मामा के आग्रह पर पटवारी पद के लिए आवेदन भरा किन्तु कई कारणों से परीक्षा न दे सके। समाज के लिए यह उत्तम ही हुआ कि वे पटवारी न बन सके। शीघ्र ही दैवकृपा से आशाशून्य जीवन में एक संरक्षण और सहायता आ गई। परिवार के एक चचेरे ज्येष्ठ भ्राता ने विद्यार्जन के लिए बुलन्दशहर आने का स्नेहभरा आमन्त्रण दिया। यह उनके जीवन का परिवर्तनकाल था। माँ की अनुमति लेकर वे 17 वर्ष की आयु में अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई करने अपने जन्मस्थान एटा से दूर बुलन्दशहर जा पहुँचे। मिडिल का परीक्षाफल उत्तम था अतः छात्रवृत्ति मिलने लगी तो उसी सम्बल से अलीगढ़ के गवर्नमेन्ट हाई स्कूल में प्रवेश ले लिया। अलीगढ़ के दो प्रसिद्ध कुलश्रेष्ठ वकीलों—श्री तोताराम, जो अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से थे, और श्री मुन्नीलाल जी से कुछ आर्थिक सहायता पा कर सन् 1901 में इण्ट्रेन्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की तो उसी संस्था में अध्यापक पद पर नियुक्ति हो गई। नियमित अध्यापकी के लिए प्रशिक्षण आवश्यक था अतः त्यागपत्र दे कर अध्यापकीय प्रशिक्षण के लिए टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, इलाहाबाद में प्रवेश ले लिया। द्विवर्षीय पाठ्यक्रम में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के फलस्वरूप शीघ्र ही सन् 1904 में गवर्नमेन्ट हाईस्कूल बिजनौर में अध्यापक, तृतीय श्रेणी में नियुक्ति मिल गई और विधिवत् अध्यापन कार्यकाल का आरम्भ हुआ।

यह एक अद्‌भुत संयोग था कि शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेज में उनके सहपाठी थे—साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात करने वाले महान् लेखक श्री धनपतराय अर्थात् मुंशी प्रेमचन्द। काल की दुर्बोधगति ने साहित्य क्षेत्र की दो महान् विभूतियों को एक स्थान पर एकत्र कर दिया था। इन अलक्ष्य व्यक्तित्वों ने साहित्य की समृद्धि के लिए एक दूसरे को अवश्य प्रेरित और प्रभावित किया होगा तभी तो दोनों में समाजोन्नति की समान व्यग्रता स्पष्ट दिख पड़ती है। यद्यपि दोनों की लेखन विद्या अलग ही थी तथापि दोनों ने अपनी ओर से समाज के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए अथक योगदान दिया है।

अध्यापन के क्रम में गंगा प्रसाद जी की नियुक्ति सन् 1908-1917 तक गवर्नमेंट हाईस्कूल बाराबंकी और 1917 से 1918 तक गवर्नमेन्ट हाईस्कूल प्रतापगढ़ में रही। इसी समय इलाहाबाद में आर्यकुमार सभा के नवयुवक सदस्यों के प्रयत्नों से डी० ए० वी० स्कूल, मीरापुर की स्थापना हुई। 21 वर्षों के विभिन्न गवर्नमेन्ट कॉलेजों के अध्यापन काल में सरकारी अधिकारी उनसे नितान्त सन्तुष्ट थे किन्तु सरकारी नौकरी के अनिच्छुक गंगा प्रसाद जी को सरकारी सेवाओं से अरुचि थी अतः डी० ए० वी० कॉलेज के अधिकारियों के आग्रह पर सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे कर 16 जुलाई, 1918 को डी० ए० वी० स्कूल, इलाहाबाद में प्राचार्यपद सँभाला। 15 रु० वेतन से 250 रु० तक की वेतनवृद्धि पाते हुए 21 जुलाई, 1939 को 58 वर्ष की आयु में अवकाश ग्रहण कर लिया।

गंगाप्रसाद जी का परिवार पौराणिक था अतः मन में ईश्वर के प्रति अनुराग का संस्कार बाल्यकाल से ही था। बुलन्दशहर में ताउ के पास रहते हुए आपने महर्षि दयानन्द का नाम सुना। सहपाठियों से दयानन्द की चर्चा सुन 'सत्यार्थप्रकाश' का अध्ययन किया और सत्य की खोज में विचारशक्ति आर्यसमाज की ओर झुक गई। अलीगढ़ के प्रवासकाल में सहपाठी रोशन सिंह की प्रेरणा से वैदिकाश्रम अलीगढ़ से सम्पर्क हुआ। वैदिक आश्रम के वातावरण ने जीवन की गति का दृष्टिकोण बदल दिया। वैदिक आश्रम काल में ही गृहजनों के आग्रह के कारण विवाह के लिए सहमति दे दी। नाहरपुर (जलेसर रोड स्टेशन से एक क्रोश) के पटवारी श्री लाला जमुना प्रसाद की बेटी श्रीमती कलावती देवी 18 वर्ष की आयु में नवम्बर, 1899 को उनकी सहधर्मिणी हुईं। परिस्थितियों के विपरीत उन्होंने पत्नी का यज्ञोपवीत संस्कार कराया। पत्रिकाओं आदि में स्त्रियों के यज्ञोपवीत संस्कार के विरोध में निकले लेखों के प्रत्युत्तर में आपने अनेक वेदोक्त समाधान प्रस्तुत कर अपना पक्ष रखा।

विवाह अथवा आजीविकावृति उनकी अन्तर्निहित ज्ञानपिपासा के प्रवाह को अवरुद्ध नहीं कर सके। उच्चशिक्षा के विधिवत् अध्ययन के उन्हें कभी अवसर

नहीं मिले तथापि सरकारी स्कूल में अध्यापन करते हुए प्रथम नियुक्ति काल में बिजनौर में सन् 1905 में इण्टरमीडिएट और सन् 1908 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत और दर्शनशास्त्र विषय लेकर बी॰ ए॰ पास किया। बिजनौर से बाराबंकी स्थानान्तरित होने पर सन् 1912 में अंग्रेजी विषय लेकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम॰ ए॰ की परीक्षा उत्तीर्ण की। अनेक वर्षों पश्चात् सन् 1923 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पुनः दर्शनशास्त्र विषय लेकर एम॰ ए॰ की परीक्षा में सफल हुए। सन् 1925 में एक वर्ष के लिए गंगाप्रसाद जी को राजाराम हाईस्कूल, कोल्हापुर का प्रधान अध्यापक हो कर जाना पड़ा। वहाँ के राजनीतिक वातावरण में अशान्ति देख कर 1 वर्ष पश्चात् अवकाश होते ही वे पुनः इलाहाबाद वापस आ गए। सन् 1945 में लगभग 18 मास उन्होंने शाहपुरा के राजकुमार श्री सुदर्शन देव को संस्कृत तथा सन्ध्या आदि सिखाई। उनकी विदाई में 10 अक्टूबर 1946 को युवराज ने सहभोज का प्रबन्ध किया। जाति से कायस्थ होने पर भी अध्यापक वृद्धि अपनाने के कारण आपने अपने नाम के साथ 'उपाध्याय' पद जोड़ा।

उपाध्याय जी का आर्यसमाज से सम्पर्क 1897 ईस्वी सन् में हुआ था। पंडित मिट्ठन लाल पण्डा ने आर्यसमाज के संस्कार दिए थे। कालान्तर में अध्यापक पद के दायित्वों से जुलाई सन् 1939 में सेवानिवृत्त होकर गंगा प्रसाद जी आर्यसमाज की गतिविधियों में सक्रिय हुए। उसके पूर्व सन् 1918 में प्रयाग आने पर उनका सम्बन्ध आर्य समाज के साथ-साथ प्रयाग की सार्वजनिक संस्थाओं-सेवासमिति, अनाथाश्रम, हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि से जुड़ा था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप उपसभापति तथा अध्यक्ष भी रहे। आर्यसमाज के संघटन में उनकी पर्याप्त रुचि थी। प्रयाग में जिला सभा तथा अनेक उपनगरों में आर्यसमाजों की शाखाएँ खुलीं। सन् 1941 से 1944 तक आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के प्रधान पद पर चयन हुआ। नवम्बर, 1946 में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री बने, 1951 तक लगभग 5 वर्ष मन्त्री पद पर रह कर अनेक आयोजनाओं को मूर्तरूप दिया। उपाध्याय जी की प्रेरणा से सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड द्वारा 'पुण्यभूमि' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला गया।

नेटाल (दक्षिण अफ्रीका) की आर्यसमाज की फरवरी, 1950 की रजत जयन्ती के लिए गंगाप्रसाद जी को अफ्रीका बुलाया गया। मार्गव्यय भी साथ ही भेज देने के कारण जाना अनिवार्य हुआ। वे दिसम्बर, 1949 में जलपोत से नेटाल के लिए निकले, बम्बई से करांची होते हुए मोम्बासा (पूर्व अफ्रीका) पहुँचे। मोम्बासा आर्य समाज में सायं काल एक व्याख्यान का आयोजन हुआ। यहाँ से डरबन (दक्षिण अफ्रीका) पहुँच कर लगभग 4 माह वहाँ रह कर अंग्रेजी

भाषा में 6 व्याख्यान दिए। अन्य स्थानों पर भी लगभग 10 व्याख्यान आयोजित किए गए। दक्षिण अफ्रीका के अन्य देशों जोहान्सबर्ग, प्रीटोरिया आदि में वैदिक धर्म पर व्याख्यान देते हुए मई, 1951 को मुम्बई लौट आए।

दिसम्बर, 1951 में वे पुनः वायुयान से कलकत्ता से रंगून वैदिक दर्शन सम्बन्धी शोधपत्र पढ़ने के लिए गए। वहाँ के ब्रह्मदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन और आर्यसमाज में भी आपके अनेक व्याख्यान हुए। सबके सहयोग से उन्होंने बर्मा भारत कल्चर लॉज की स्थापना की। सिंगापोर, बैंकाक, माण्डले आदि देशों में भाषण देते हुए वे मई, 1952 को वापस भारत आ गए।

दिसम्बर, 1959 में मथुरा में आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश की ओर से महर्षि दयानन्द की दीक्षा शताब्दी मनाई गई। इस अवसर पर उन्हें एक विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया। यह उपक्रम तत्कालीन भारत राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी के करकमलों से सम्पन्न हुआ।

गंगाप्रसाद जी, सन् 1905 में बिजनौर में एक सुयोग्य पुत्र स्वामी सत्यप्रकाशानन्द सरस्वती (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के पिता बने। 1907 में द्वितीय पुत्र विश्वप्रकाश का जन्म हुआ। बाराबंकी आने पर पुत्री सुदक्षिणा और प्रयाग में अन्तिम दो पुत्रों श्री प्रकाश और रविप्रकाश का जन्म हुआ।

वृद्धावस्था में भी गंगाप्रसाद उपाध्याय जी निरन्तर अध्ययन, मनन तथा लेखन में संलग्न रहते थे। अन्तिम वर्षों में उन्होंने अरबी भाषा सीख कर कुरान तथा अन्य इस्लामिक धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया था। 29 अगस्त, 1968 को 87 वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ। जीवन के इस सुदीर्घ अन्तराल में उन्होंने पर्याप्त सारस्वत यज्ञ कर जन्म को सार्थक किया था।

विद्यार्जन और अध्यापन के दोहरे कार्यभार के मध्य ही गंगा प्रसाद उपाध्याय जी की प्रतिभा एक और दिशा में वृद्धि को प्राप्त हो रही थी, वह थी असाधारण लेखन क्षमता। सन् 1902 में उपाध्याय जी का प्रथम लेख आर्यमित्र में थियोसॉफिकल सोसाइटी पर छपा था। इन्हीं दिनों महात्मा मुंशीराम के सम्पादन में जालन्धर से प्रसिद्ध पत्र 'आर्य मुसाफिर' का प्रकाशन होता था। महात्मा जी के प्रोत्साहन से पं० गंगाप्रसाद इसमें नियमित रूप से वेदमन्त्रों की व्याख्या, शंका, समाधान विपक्षियों के आक्षेपों के उत्तर आदि लिखते थे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की मुख पत्रिका अंग्रेजी साप्ताहिक में 1904 में आपका प्रथम अंग्रेजी लेख 'Yoga made Easy' प्रकाशित हुआ। फ़ादर टी० विलसन ने सत्यार्थप्रकाश व वैदिक सिद्धान्तों के खण्डन में एक पुस्तक लिखी तब श्री वज़ीरचन्द विद्यार्थी की प्रेरणा से गंगाप्रसाद जी ने इसका युक्तियुक्त उत्तर एक

लेखमाला के रूप में उर्दू में सन् 1906, 1907, 1908 में दिया। उनके द्वारा लिखित प्रथम पुस्तक अंग्रेजी की शैली में लिखी गई हिन्दी भाषा की एक व्याकरण पुस्तिका 'नवीन हिन्दी व्याकरण' थी। सन् 1907 में इण्डियन प्रेस ने लेखक को 200/- पारिश्रमिक देकर इसे प्रकाशित किया। सन् 1908 में इण्डियन प्रेस ने एक 'बाल निबन्ध माला' नामक एक लघुपुस्तक प्रकाशित कराई। सार्थक जीवन के इन महत्त्वपूर्ण रचनाशील वर्षों में उपाध्याय जी के व्यक्तित्व का जो प्रबलतम पक्ष उभरा वह था वैदिक धर्म में निहित गूढ़ तत्त्वों का प्रकाशन करने वाले सद्धर्म प्रचारक का। सत्यार्थप्रकाश के रचयिता और वैदिक धर्म के प्रतिष्ठापक स्वामी दयानन्द सरस्वती के पदचिह्नों का अनुकरण करते हुए सत्य का प्रकटीकरण ही गंगाप्रसाद के जीवन का लक्ष्य बन चुका था। सन् 1898 में सत्रह वर्ष की आयु और कैशोर्य की अवस्था में जब उनके सत्यान्वेषी मन ने महर्षि दयानन्द के वैदिकधर्म का वरण किया और सर्वप्रथम वैदिकाश्रम अलीगढ़ में 'बाल आर्य सभा' की स्थापना कर मन्त्रीपद सम्भाला तब से जीवनपर्यन्त वे उस धर्म की प्रतिष्ठा और प्रचार का कार्य करते रहे।

इण्डियन प्रेस के स्वामी बाबू चिन्तामणि घोष ने बंगाली होते हुए भी हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन में अत्यधिक रुचि ली थी। उनके प्रेस से ही सरस्वती जैसी प्रमुख हिन्दी पत्रिका सन् 1900 में प्रकाशित हुई थी। उपाध्याय जी सरस्वती तथा अनेक स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में 'गंगाप्रसाद वर्मा', महाशय गंगा प्रसाद' और 'गंगाप्रसाद थर्ड मास्टर' नाम से हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी भाषाओं में सहज रूप से लेख लिखते थे।

उपाध्याय जी ने अपने ग्रन्थों को प्रकाशित करने की दृष्टि से सन् 1930 में अपनी पत्नी के नाम से 'कलाप्रेस' की स्थापना की। सन् 1931 में अपने द्वितीय पुत्र विश्वप्रकाश के सहयोग से 'वेदोदय' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला। 5 वर्षों के पश्चात् धनाभाव में इस पत्र का प्रकाशन बन्द हो गया। उपाध्याय जी के विशाल वाङ्मय को विषयाधार पर निम्न भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

I. मौलिक दार्शनिक कृतियाँ—1. प्राचीन शास्त्रों के भाष्य और अनुवाद, 2. आर्यसमाज एवं ऋषि दयानन्द विषयक ग्रन्थ, 3. कर्मकाण्ड विषयक ग्रन्थ, 4. समाजशास्त्र विषयकग्रन्थ, 5. मत मतान्तर विषयक आलोचनात्मक ग्रन्थ, 6. स्फुट ग्रन्थ।

II. ट्रैक्ट साहित्य—हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी में लिखा गया। अन्य भारतीय भाषाओं में ट्रैक्टों के अनुवाद हुए।

III. हिन्दीतर भाषा साहित्य—1. अंग्रेजी ग्रन्थ, 2. उर्दू ग्रन्थ, 3.

संस्कृत रचनाएँ।

उपाध्याय जी को साहित्यकार के रूप में ख्याति उनकी दर्शन सम्बन्धी रचनाओं के कारण मिली। इस प्रकरण में उनकी प्रथम पुस्तक **आस्तिकवाद** का नाम प्रथम गण्य है। सन् 1926 में प्रकाशित इस ग्रन्थ को हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक कृति मान कर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने रु० 1200.00 का मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया। ईसाई ग्रन्थकार Flint की Theism नामक पुस्तक को बार-बार उद्धृत किया है साथ ही प्रसंगतः ईसाई अवधारणा में ईश्वरवाद की यथावश्यक आलोचना भी की है।

सन् 1923 में उपाध्याय जी की अन्य प्रसिद्ध रचना अद्वैतवाद प्रकाशित हुई। वस्तुतः सन् 1923 में दर्शनशास्त्र में एम० ए० कक्षा में शांकरभाष्य का अध्ययन किया तो अनुभव हुआ कि शंकर के अद्वैतवाद का कोई बहुत ठोस आधार नहीं है। अद्वैतवाद लिख कर शंकर मत की तथ्यपूर्ण आलोचना तथा गौड़पादाचार्य रचित माण्डूक्य कारिकाओं की विस्तृत समीक्षा की। उपाध्याय जी के अनुसार शंकर ने जगत् को मिथ्या सिद्ध करने के लिए जो युक्तियाँ दी हैं वे निर्बल तथा हेत्वाभासपूर्ण हैं। माया का सहारा लेकर विश्व प्रपंच को सिद्ध करने के लिए शंकर द्वारा दिये गए प्रमाण किसी प्राचीन ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद में तो स्पष्ट ही माया शब्द प्रकृति का अपर पर्याय है—मायां तु प्रकृति विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्। ऐसी स्थिति में शारीरक सूत्रों की मनचाही व्याख्या कर आचार्य शंकर अपने मत को प्रस्तुत तो करते हैं परन्तु सूत्रकार के मन्तव्य को स्पष्ट नहीं कर पाते हैं। मुंशी प्रेमचन्द सहपाठी और मित्र थे उन्होंने कुछ अंश लखनऊ की प्रसिद्ध पब्लिक् माधुरी में अपने सम्पादन काल में छापे थे किन्तु कट्टरवादियों के विरोध के कारण लेखमाला का मुद्रण कार्य बन्द कर देना पड़ा।

जीवात्मा का प्रकाशन सन् 1933 में दयानन्द अर्धनिर्वाण शती के अवसर पर हुआ। इसमें यथास्थान पूर्व एवं पश्चिम अध्यात्म मतों को उद्धत करते हुए जीव की सत्ता एवं उसके स्वरूप पर विचार किया गया है। शांकर भाष्यालोचन का प्रकाशन सन् 1947 में हुआ। इस ग्रन्थ में शंकर के अद्वैतवाद की आलोचना है। साधारणतः यह सर्वमान्य है कि शंकर का दर्शन मानव प्रज्ञा की पराकाष्ठा है, उससे आगे दार्शनिक चिन्तन की समाप्ति है। परन्तु शंकररचित ब्रह्मसूत्र भाष्य में स्थल-स्थल पर दृष्टिगत विसंगतियों, तर्कविरोधी धारणाओं और हेत्वाभासों का विवेचन कर उपाध्याय जी ने दार्शनिक चिन्तन सीमा को चुनौती दी है। जीव-ब्रह्म के ऐक्य को सिद्ध करने के लिए तथा जगत् के मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिए शंकर ने जिन लोकप्रसिद्ध दृष्टान्तों को आधार बनाया है, उपाध्याय जी ने

उन्हें कपोल कल्पनाएँ कह कर जगत् के मिथ्यात्व के प्रमाण में आधार नहीं माना है।

मैं और मेरा भगवान उपाध्याय जी की अंग्रेजी रचना **I and my God** का हिन्दी अनुवाद सन् 1939 में आर्यसमाज चौक प्रयाग से रेलिजियस रेनांसा सीरीज की अंग्रेज़ी पुस्तकों की शृंखला में प्रकाशित हुई थी। इस ग्रन्थ में वेदान्त में मान्य तत्वमसि आदि महाकाव्यों शंकर अद्वैत तथा रामानुजीय विशिष्टाद्वैत की भी प्रसंगोपात्त आलोचना की गई है। मीमांसा प्रदीप—आर्यसमाज चौक ट्रैक्ट, प्रयाग से प्रकाशित प्रसिद्ध दार्शनिक रचना है।

प्राचीन शास्त्र-ग्रन्थों के भाष्य एवं अनुवाद—

1. सर्वदर्शन सिद्धान्त संग्रह—शंकराचार्य। इसमें चार्वाक, जैन, बौद्ध, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त तथा मीमांसा का सरल परिचय अनुष्टुप्छन्दों में दिया गया है। सन् 1925 में अनुवाद प्रकाशित हुआ।

2. मनुस्मृति—सन् 1936 ई०।

3. ईशोपनिषद् अनुवाद—सन् 1940।

4. ऋग्वेदीय एतरेय ब्राह्मण—शब्दानुवाद बृहद् भूमिका सहित सन् 1950 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित हुआ।

5. शतपथ ब्राह्मण—माध्यन्दिन शाखा के शतपथ ब्राह्मण का हिन्दी भाषान्तर, सन् 1969 में प्राचीन वैज्ञानिकाध्ययन अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली।

6. शाबर भाष्य का हिन्दी अनुवाद—मीमांसा दर्शन, अनुवाद अद्यापि अप्रकाशित है।

वेदों तथा उपनिषदों के व्याख्यापरक ग्रन्थ—

1. वैदिक मणिमाला—सन् 1936।

2. भगवत् कथा—सन् 1943।

3. वेद और मानव कल्याण—वैदिक प्रकाशन मन्दिर, प्रयाग।

4. वेद प्रवचन—सन् 1963, दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय, हिसार।

5. Vedic Culture—सन् 1949, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली। पं० ठाकुर दत्त शर्मा द्वारा प्रवर्तित अमृतधारा पुरस्कार (500 रु०) इस ग्रन्थ पर लेखक को मिला।

आर्यसमाज विषयक ग्रन्थ—

1. आर्यसमाज—सन् 1924 1993 वि०।

2. सनातनधर्म और आर्यसमाज, सन् 1951।

3. आर्यसमाज की नीति,—सन् 1951 सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली।

4. आर्यसमाज और इस्लाम—सन् 1967, उर्दू में भी प्रकाशित।

आर्यसमाज विषयक अंग्रेजी ग्रन्थ—

1. The Origin. Mission and Scope of Arya Samaj : सन् 1940।
2. The Arya Samaj and the International Aryan League : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली, सन् 1947।
3. The Arya Samaj : A World Movement, सन् 1953।

तुलनात्मक अध्ययन—

1. शंकर-रामानुज-दयानन्द—सन् 1930 कलाप्रेस, प्रयाग।

2. राजा राममोहन राय : केशवचन्द्र सेन : दयानन्द, सन् 1931 कला प्रेस, प्रयाग।

3. सायण और दयानन्द—सन् 1957 कलाप्रेस प्रयाग।

महर्षि दयानन्द विषयक अन्य ग्रन्थ—

4. राष्ट्र-निर्माता दयानन्द—वैदिक प्रकाशन मन्दिर, प्रयाग।

5. Social Reconstruction By Buddha and Dayanand,—सन् 1956।

6. महर्षि दयानन्द के प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का अंग्रेज़ी अनुवाद सन् 1946। इस ग्रन्थ के बर्मी तथा चीनी भाषाओं में अनुवाद भी प्रकाशित

7. सत्यार्थ-प्रकाश : एक अध्ययन—वैदिक प्रकाशन मन्दिर, प्रयाग।

स्वामी दयानन्द विषयक अंग्रेज़ी ग्रन्थ—

1. The Sage of the Modern Times—Swami Dayanand, 1953 आर्यसमाज विश्व प्रचार सिरीज़।

2. Swami Dayanand on the formation and functions of the State. उक्त प्रचारमाला के अन्तर्गत 1954 में प्रकाशित।

3. Land Marks of Swami Dayanand's Teachings, 1947

4. The Philosophy of Dayanand, 1955, गंगा ज्ञान मन्दिर।

कर्मकाण्डविषयक ग्रन्थ—

1. वैदिक विवाह पद्धति—सम्पादन सन् 1928।

2. वैदिक उपनयन-वेदारम्भ पद्धति—सन् 1930 ट्रैक्ट विभाग।

3. संस्था क्या, क्यों कैसे ?—सन् 1964।

4. सरल संध्याविधि—सन् 1965, 2012, आर्यसमाज मथुरा।

5. संस्कारप्रकाश—वैदिक प्रकाशन मन्दिर, प्रयाग।

6. धर्मशिक्षा पद्धति—10 भाग।

स्फुट ग्रन्थ—

1. विधवा विवाह मीमांसा—सन् 1920 चांद कार्यालय, इलाहाबाद।

2. महिला व्यवहार चन्द्रिका—सन् 1938।

3. हम क्या खायें—घास या मांस?—सन् 1949।

4. कम्यूनिज्म—सन् 1950, उत्तरप्रदेश सरकार ने 500 रु॰ प्रदान कर पुस्तक को सम्मानित किया, राजधर्म प्रकाशन, रोहतक।

5. जीवन-चक्र—आत्मकथा, सन् 1954 उत्तर प्रदेश सरकार ने 500 रु॰ पुरस्कार रूप में दिया।

स्फुट दार्शनिक ग्रन्थ—

1. मुक्ति से पुनरावृत्ति—दक्षिण अफ्रीका प्रचार ग्रन्थमाला।

2. कर्मफल सिद्धान्त—सन् 1966, 1968, 1981, आर्यसमाज चौक प्रयाग।

अन्य ग्रन्थ—

1. धर्मसुधासार
2. उपदेश सप्तक
3. भारतीय उत्थान और पतन की कहानी
4. धर्म कर्म की कसौटी पर।

कतिपय प्रयागस्थ मित्रों के सहयोग से पं॰ गंगाप्रसाद उपाध्याय ने आर्यसमाज चौक प्रयाग के माध्यम से 'रिलिजस रेनांसा सिरीज' नामक अंग्रेजी ग्रन्थमाला का प्रकाशन आरम्भ किया। इस ग्रन्थमाला के लिये एक सम्पादक मण्डल का गठन किया गया जिनमें डॉ॰ बाबूराम सक्सेना (रीडर, संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय), डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा (रीडर हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय), डॉ॰ सत्यप्रकाश (प्रवक्ता, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) रायसाहब बाबू मदनमोहन सेठ एम॰ ए॰ एम॰ आर॰ ए॰ एम॰ (भूतपूर्व प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त) के अतिरिक्त स्वयं उपाध्यायजी प्रधान सम्पादक थे। इस पुस्तक माला का ध्येय सस्ते दामों में उच्च कोटि का ऐसा साहित्य अंग्रेजी भाषा के माध्यम से देना था, जो धार्मिक क्षेत्र में नवजागरण का काम करे।

Religious Rennaissance Series के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ—

1. Reason and Religion—सन् 1939।
2. Swami Dayanand's Contribution to Hindu Solidarity—सन् 1939।
3. I and My God : सन् 1939।
4. Origin Mission and Scope of Arya Samaj : सन् 1940।
5. Worship : सन् 1940।
6. Christianity in India सन् 1941।
7. Superstition : सन् 1941।
8. Marriage and Married Life : सन् 1941, 1957।

अंग्रेज़ी के लघु ग्रन्थ—

विदेश यात्रा के अनन्तर उपाध्याय जी ने अनुभव किया कि अंग्रेजी में लघु पुस्तकों के माध्यम से आर्यसमाज के सिद्धान्तों को विदेशस्थ पठित समुदाय तक पहुँचाना अधिक सुगम है। फलतः उन्होंने 1953-54 में **'आर्यसमाज विश्वप्रचार सिरीज़'** का प्रकाशन किया। इसके अन्तर्गत निम्न पुस्तकें प्रकाशित हुई—

1. O Hindus : wake up.
2. Devas in the Vedas.
3. Vedic Philosophy.
4. Yajnas or Sacrifices.
5. The Vedas : Holy scriptures of Aryanas.
6. The world as we View it.
7. Rationalism.
8. Deities.
9. Sanatan Dharm. (2 parts)

अन्य मतों से सम्बन्धित ग्रन्थ—

1. धम्मपद—सरल भाषानुवाद सन् 1932।

2. इस्लाम के दीपक—1963 में प्रकाशित। इस पुस्तक का उर्दू रूपान्तर 'मसाबीहुल इस्लाम' भी प्रकाशित हुआ। संस्थाओं और व्यक्तियों के सहयोग से उर्दू संस्करण की एक हजार प्रतियाँ इस्लामी केन्द्रों, लोकसभा के मुस्लिम सदस्यों, ईरान, पाकिस्तान, मिस्र तथा अरब में मुफ्त बाँटी गयी। इस ग्रन्थ को

लिखने में लगभग 15 वर्ष लगे। उपाध्यायजी ने एक मौलवी गुरु रखकर अरबी पढ़ी और कुरान का अध्ययन किया। इस पुस्तक के निकलने पर इस्लामिक जगत् में बड़ी सनसनी मची, कुछ सोचने लगे कि इसे जब्त कराया जाय, परन्तु श्री उपाध्याय जी की शैली इतनी उत्तम थी कि कहीं भी हाथ रखने को जगह नहीं मिली। कुरान या हजरत मुहम्मद का जहाँ भी नाम आया बड़े आदर सूचक शब्द प्रयोग किये गये। कानूनन कोई पकड़ नहीं थी। प्रबल यूक्तियाँ दी गई थी। उर्दू समाचार पत्रों के उद्धारण थे, मुसलमानी विद्वानों के उद्धरण थे।

मुसलमानों की ओर से चन्दा लेकर इसका उत्तर दो जिल्दों में दिया गया। एक व्यक्ति ने चिढ़ कर लिखा—पण्डित जी मुसलमानी जमाना नहीं है नहीं तो आपकी पीठ पर कोड़े पड़ते। यह भी लिखा गया कि सत्यार्थप्रकाश के उपरान्त यह प्रभावशाली प्रकाशन है, पर यह उससे भी अधिक खतरनाक है, क्योंकि मिठास के साथ जहर उगला गया है।''

3. सनातनधर्म—वैदिक प्रकाशन मन्दिर प्रयाग।

दक्षिण अफ्रीका प्रचार ग्रन्थमाला के अन्तर्गत निम्न पुस्तकें अंग्रेजी में छपीं—

1. Life after Death.
2. A Criticism of the Elementary teachings of Hinduism.

उपाध्याय जी के संस्कृत ग्रन्थ—

1. आर्य स्मृति—सन् 1947।
2. अर्योदय काव्य (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध)—सन् 1950।

उर्दू ग्रन्थ—

1. वेदों की अजमत।
2. कुर्बानी क्यों?

ट्रैक्ट विभाग की ओर से उर्दू पद्य—

1. आहे बेजुबां।
2. मुसद्दस दयानन्द।

उपाध्याय जी के ट्रैक्ट्रों की कहानी—

ईसाइयों ने अपने धर्म के प्रचारार्ध लघु पुस्तकें (ट्रैक्ट) लिखने, छपाने तथा बाँटने की प्रणाली प्रवर्तित की थी। प्रयाग में नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन बुक एण्ड ट्रैक्ट सोसाइटी नाम की संस्था दशाब्दियों से विभिन्न भाषाओं में ईसाई धर्म के समर्थन तथा हिन्दू एवं इस्लाम आदि धर्मों के खण्डन में ट्रैक्ट लिख कर लाखों की संख्या में प्रकाशित करती रही है। विशाल मेलों तथा अन्य

अवसरों पर ईसाई प्रचारक इन ट्रैक्टों को जनसाधारण में निःशुल्क वितरित भी करते रहे हैं। ईसाइयों की इस संस्था और उसकी कार्य प्रणाली को देख कर उपाध्याय जी के मन में भी विचार आया कि क्या आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार इस प्रणाली से नहीं किया जा सकता ? पुनः उन्होंने इस विचार को क्रियान्वित करने के लिए ट्रैक्ट लिखने आरम्भ किये। प्रथम ट्रैक्ट था—'ईश्वर और उसकी पूजा'। इसका प्रथम संस्करण 2000 प्रतियों का प्रकाशित हुआ। 2 रुपया सैकड़ा मूल्य रखा गया और 1 प्रति के दो पैसे। छः सात ग्राहक बने। लेखक ने अपने उत्तरदायित्व पर प्रकाशन आरम्भ किया। जो धन वसूल होता वह प्रेस को दे दिया जाता। ट्रैक्टों के पैकेट बनाने और डाकखाने पहुँचाने के कार्य में घर के बच्चे सहायता करते। इस प्रकार मुद्रण-व्यय के अतिरिक्त और कुछ व्यय नहीं होता। प्रकाशक का औपचारिक दायित्व आर्यसमाज चौक प्रयाग को दिया गया था, अतः लाभ की स्थिति में उक्त संस्था को ही लाभ की राशि मिलती और यदि घाटा होता तो उसे झेलना पड़ता लेखक को। तथापि ट्रैक्टों का प्रचार हुआ क्योंकि लोग इनकी उपयोगिता महसूस करते थे।

प्रारम्भिक ट्रैक्टों में एक नीति यह बरती गई कि यथासम्भव विषय के प्रतिपादन में ऋषि दयानन्द के वचनों को ही ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाय। इस प्रकार प्रथम सात ट्रैक्ट स्वामी जी के ग्रन्थों के उद्धरणों के आधार पर हो तैयार किये गये। धीरे-धीरे ट्रैक्टों का अधिकाधिक प्रचार होने लगा। जब पूर्व प्रकाशित संस्करण समाप्त हो जाता तो नवीन संस्करण छापना पड़ता। चार वर्षों में बीस ट्रैक्ट निकले जिनकी कुल 4 लाख प्रतियाँ छपीं। जब ट्रैक्टों के कार्य में गति और विस्तार आया तो काम बढ़ गया। फलतः आर्यसमाज चौक के अधीन एक उपसभा बनी और 1924 से यह कार्य इसी सभा को सौंपा गया। इसी वर्ष महर्षि की जन्म शताब्दी मनाये जाने की तैयारियाँ हो रही थीं। शताब्दी समिति के प्रधान महात्मा नारायण स्वामी जी ने ट्रैक्टों के पक्ष में कई विज्ञप्तियाँ, प्रकाशित की तथा आर्यजनों को इन्हें अधिकाधिक प्रचारित करने की प्रेरणा की। फलतः लाखों की संख्या में ट्रैक्ट मंगाये गये और बाँटे गये। सामयिक समस्याओं को प्रकाश में लाने हेतु भी कई ट्रैक्ट लिखे गये। यही वह समय था जब स्वामी श्रद्धानन्द जी ने शुद्धि एवं संगठन का शंखनाद किया था। फलतः अनेक ट्रैक्ट इन समस्याओं को लेकर लिखे गये। 'हमारे बिछुड़े भाई' 'हमारा संगठन' आदि इसी प्रकार के ट्रैक्ट थे।

अब तक जो ट्रैक्ट लिखे गये थे, 16 पृष्ठों के होते थे। अब यह आवश्यक समझा गया कि सामयिक समस्याओं को प्रकाशित करने के लिये आठ पृष्ठों के ट्रैक्ट लिखे जायें। परिणामस्वरूप 8 पृष्ठों की द्वितीय ट्रैक्ट-माला आरम्भ

की गई। इसके अन्तर्गत 'हिन्दुओं जागो' 'हिन्दू स्त्रियों की लूट के कारण', हिन्दू धर्म का नाश' 'मसजिद के आगे बाजा' जैसे ट्रैक्ट छपे। ट्रैक्टों के इस कार्य में उपाध्याय जी को जिन महानुभावों का सहयोग मिला, वे हैं—श्री रामदीन वैश्य, श्री रामाधार और श्री दरबारीलाल।

प्रारम्भ में इस बात का हिसाब रखा गया कि अब तक कितने ट्रैक्ट कुल छपे हैं, बाद में पता लगाना भी कठिन हो गया। ट्रैक्टों की भाषा सरल तथा सुबोध है। उनमें प्रस्तुत की गई युक्तियाँ और तर्क प्रामाणिक, रोचक तथा ज्ञानवर्धक हैं। एक दो ट्रैक्ट अन्य व्यक्तियों ने भी लिखे। सरल भाषा के साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखा गया कि ऐसी शब्दावली का प्रयोग न किया जाय जो दूसरे मतवादियों को चुभने वाली हो या आपत्तिजनक लगे। फलतः ट्रैक्ट्रों की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। हिन्दी में दो ट्रैक्टमालायें (16 पृष्ठ के 67 ट्रैक्ट तथा 8 पृष्ठ के 23 ट्रैक्ट) निकली तथा अंग्रेजी में 10 ट्रैक्ट्रों की 16 पेजी एक माला। कुछ ट्रैक्ट उर्दू में भी छपे परन्तु उनका अधिक प्रचार नहीं हुआ। इन ट्रैक्ट्रों की उपयोगिता इस बात से भी जानी जाती है कि गुजराती, मराठी, बंगला तथा तमिल एवं तेलगू जैसी प्रान्तीय भाषाओं में भी इनके अनुवाद हुए हैं।

आर्यसमाजेतर साहित्य—सन् 1910 में उपाध्याय जी ने हिन्दी शेक्सपीयर शीर्षक पुस्तकमाला 6 भाग का रोचक भाषा में प्रणयन किया। प्रत्येक भाग की पृष्ठसंख्या 150 और पारिश्रमिक भी रु॰ 150.00 था। अंग्रेजी के महान् नाट्यकार शेक्सपीयर की सभी नाट्य-कृतियों से हिन्दी भाषी जनता को परिचित कराने का यह प्रयास सराहनीय था। इससे पूर्व शेक्सपीयर की रचनाओं का गद्यानुवाद 'टेल्स फ्राम शेक्सपीयर' नाम से अंग्रेजी गद्यकार चार्ल्स लैम्ब ने किया था। सन् 1918 में उपाध्याय जी को 'पशुपक्षी' नामक एक ग्रन्थ माला 14 भागों में लिखी, दुर्भाग्यवश यह बाबू चिन्तामणि घोष की मृत्यु से अप्रकाशित ही रही। काशी में बाबू शिवप्रसाद गुप्त की प्रसिद्ध प्रकाशन संस्था ज्ञानमण्डल से सन् 1918 में 'अंग्रेज़ जाति का इतिहास' पुस्तक प्रकाशित हुई थी।

पण्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय के जीवन का एक-एक क्षण महर्षि दयानन्द के विचारों-सिद्धान्तों-कार्यों के चिन्तन-मनन-अनुकरण-लेखन में व्यतीत होता था। उनकी प्रत्येक गतिविधि महर्षि के आशीर्वाद से आर्यसमाज को वैश्विक बनाने के लिए क्रियाशील होती थी। एक ज्योति स्तम्भ की भाँति विश्व को वैदिक साहित्य की विशाल हृदयता से परिचित कराने के लिए पण्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय के साहित्य का संरक्षण और अध्ययन आज की आवश्यकता है। उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं आर्यसमाज के मूलभूत तथ्यों को दिग्-दिगन्त में

प्रसारित करने का जो भगीरथ प्रयत्न किया था, उससे वे सदा-सदा के लिए अमर हो गए हैं।

(6) हरिहर कृपालु द्विवेदी

पण्डित हरिहर कृपालु द्विवेदी ग्राम-समहन (पंडितपुर), कस्बा-मेजा, इलाहाबाद के निवासी थे। टोंस नदी के किनारे बसे इसी ग्राम में पण्डित जी का जन्म लगभग सन् 1884 में हुआ था। वे आरम्भ में बिहार के पटना जिले में मुरारका संस्कृत कालेज के अध्यक्ष थे। अद्वैत वेदान्त पर उनका अप्रतिम अधिकार था। विद्यालय में शरद अथवा ग्रीष्म के अवकाश में ग्राम लौटते तो ग्राम युवकों को वेदान्त का अध्यापन करते। खण्डन-खण्ड खाद्य, अद्वैत सिद्धि, ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य, भगवद्गीता आदि वेदान्त दर्शन के क्लिष्ट ग्रन्थों की सरलतम व्याख्या करते। उन्होंने अपने योग्यतम शिष्यों को उदयनाचार्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ आत्मतत्त्वविवेक (बौद्धधिक्कार नाम से विख्यात) का भी आद्योपान्त सफल अध्यापन किया था। महामहोपाध्याय पंडित द्विवेदी के पटना से अवकाश प्राप्त कर लौटने पर सेठ गौरीशंकर गोयनका ने उनके गम्भीर ज्ञान की ख्याति सुन सन् 1930 में उन्हें वाराणसी में अपने गोयनका संस्कृत विद्यालय का प्राचार्य मनोनीत किया था। इस पद पर 14 वर्षों तक कार्य सम्पादित कर सन् 1944 में वे कार्यमुक्त हुए। पं॰ द्विवेदी के नीलकण्ठ मोहल्ला स्थित आवास पर मध्याह्नकाल में विद्वत् मंडली जुटती और नित्यप्रति शास्त्र चर्चा चलती। इनके परिवार के एक व्यक्ति न्यायमूर्ति के पद पर अधिष्ठित रह चुके हैं। अपने अन्तिम दिनों में वे अमरकण्टक, मध्य प्रदेश में आश्रम बनाकर वहीं रहने लगे थे। पं॰ हरिहर कृपालु द्विवेदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद के प्रख्यात अध्यक्ष पं॰ प्रभात शास्त्री तथा गोयनका संस्कृत कॉलेज, वाराणसी के प्राचार्य पंडित कमलाकान्त मिश्र के गुरु थे। प्रिय शिष्य कमलाकान्त को उन्होंने सरस्वती मन्त्र दिया था। उनके आश्रम से स्वामी ब्रह्माश्रम (छानवे तहसील, मिरजापुर) सदृश अनेक संस्कृत विद्वान् और तपस्वी निकले।

(7) प्रसन्न कुमार आचार्य

संस्कृत व प्राचीन इतिहास के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् प्रो॰ प्रसन्न कुमार आचार्य[1] का जन्म सन् 1890 में बंगाल में हुआ था। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम॰ ए॰ की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् लेडेन यूनिवर्सिटी से पी-एच॰ डी॰ की उपाधि अर्जित की। लन्दन यूनिवर्सिटी से डी॰ लिट्॰ की

1. उत्तर खोजते प्रश्न, डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय, पृ॰ 136 से साभार।

डिग्री उन्हें प्राप्त हुई। सन् 1920 में भारतीय शिक्षा सेवा के सदस्य के रूप में म्योर सेन्ट्रल कॉलेज में उन्होंने योगदान किया। सन् 1928 में वे संस्कृत विभाग में उपाचार्य पद पर नियुक्त हुए। उन्हीं के कार्यकाल में म्योर सेन्ट्रल कॉलेज को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित किया गया। सन् 1928-49 पर्यन्त प्रो॰ प्रसन्न कुमार आचार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रोफेसर व अध्यक्ष बनाए गए।

प्रो॰ आचार्य संस्कृत के साथ-साथ प्राचीन भारतीय इतिहास, भारतीय कला व पुरातत्त्व के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे संस्कृत विषय के अतिरिक्त प्राचीन भारतीय इतिहास की कक्षाओं में भी पढ़ाते थे। विश्वविद्यालय के आचार्यों एवं छात्रों में प्रो॰ आचार्य का अतीव सम्मान था। सन् 1950 में वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उनकी 'भानसार' कृति ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हुई। प्रो॰ आचार्य सन् 1960 में गोलोकवासी हुए।

(8) कमलाकान्त मिश्र

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य ब्रह्मर्षि पण्डित कमला कान्त मिश्र का जन्म विक्रम संवत् 1949 (सन् 1892) में भाद्र कृष्ण जन्माष्टमी की पुण्यमयी निशा में प्रयाग जनपद के दक्षिण-पूर्व गङ्गा तट पर महर्षि दुर्वासा धाम के समीप जमनीपुर कोटवा ग्राम में एक मध्यर्वीय सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था। पिता पंडित रामफल मिश्र तथा माता श्रीमती विरञ्जा देवी के चार पुत्रों में आपकी गणना तृतीय थी। आपका विवाह गंगापार दक्षिण में रामगढ़ गाँव करछना तहसील में पंडित शिववरण चतुर्वेदी की भगिनी, सौभाग्यवती श्रीमती सुयोग्या देवी के साथ सम्पन्न हुआ था। पण्डित शिववरण चतुर्वेदी को प्रयाग में बेतिया की महारानी के राजपण्डित का सम्मान प्राप्त था। आपको सुयोग्य तीन पुत्रों––डॉ॰ केशव प्रसाद मिश्र, श्री धर्मराज मिश्र तथा डॉ॰ विजयनारायण मिश्र एवं पाँच पुत्रियों—प्रभावती, विभावती, चन्द्रावती, गिरिजावती एवं ललितावती के पितृत्व का सौभाग्य मिला था।

पण्डित प्रवर कमलाकान्त मिश्र जी की प्रारम्भिक शिक्षा उनके मामा के संरक्षण में समीपस्थ ननिहाल जमनीपुर ग्राम में हुई थी। वहाँ रहकर आपने अमर-कोश, सारस्वत-चन्द्रिका, ग्रहलाघव आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। आगे की शिक्षा प्रयाग में संगम के दक्षिण तट पर स्थित 'श्रीनिवास उपाध्याय संस्कृत पाठशाला', महमूदाबाद (अकेला पेड़) में गुरुवर्य नागेश्वर प्रसाद द्विवेदी से प्राप्त हुई। पण्डित नागेश्वर प्रसाद का निवास समीपस्थ बेलवार ग्राम होने से अवकाश के दिनों में भी कमलाकान्त जी की लघुकौमुदी आदि की शिक्षा विधिवत् चलती

थी। प्रथम श्रेणी में विद्यालय की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मछली शहर के उकनी के प्रसिद्ध पण्डित भोलानाथ आदर्श संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश लिया और व्याकरण के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित जयदेव मणि त्रिपाठी (बच्चा पण्डित) से व्याकरण विषय का अध्ययन कर 'काशी राजकीय संस्कृत कालेज' से व्याकरण की परीक्षा उत्तीर्ण की।

प्रयाग में दारागंज के पैतृक आवास में रहते हुए व्याकरण शास्त्री तथा व्याकरण एवं वेदान्त-आचार्य की परीक्षाओं का पाठ्यक्रम महानिर्वाणी वेद विद्यालय, दारागंज, प्रयाग के प्रधानाचार्य पण्डित गयादत्त त्रिपाठी से विधिवत् अधीत किया और काशी राजकीय संस्कृत कॉलेज से उक्त परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। 'हरिहरचरितचम्पू' काव्य के निम्न श्लोक से स्पष्ट है कि पण्डित गयादत्त त्रिपाठी व्याकरण शास्त्र के निष्णात पण्डित थे, उनकी शिष्यमण्डली में पण्डित कमलाकान्त मिश्र का प्रमुख स्थान था—

शास्त्राम्बुजा–तर्ककलोदयानां श्रीमद्गयादत्तमहोदयानाम्।
प्रधानशिष्यः किल भूत पूर्वोऽपि वावदूकोऽयमभूत पूर्व।।

अर्थात् शास्त्रार्थ महारथी पण्डित कमलाकान्त मिश्र शास्त्ररूपी कमलको अपनी तर्कबुद्धि से विकसित करने वाले पण्डित गयादत्त त्रिपाठी के प्रधान शिष्य थे।

अध्यापन का दायित्व निर्वाह करने के लिए आपको कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं हुई। प्रयाग के दारागंज में अवस्थित निर्वाण वेद विद्यालय में आपने अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया और वहीं अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित हुए। अध्यापक के रूप में 26 वर्षों तक व्याकरण और वेदान्त का इस पाठशाला में पाठन किया। आचार्य कक्षाओं में उन्हें एक और विद्वान् गुरु की चरण रज और विद्या का अधिकार मिला, वे थे महामहोपाध्याय पण्डित हरिहरकृपालु द्विवेदी, उनके सान्निध्य में पण्डित कमलाकान्त मिश्र ने अद्वैत वेदान्त विषय का गहन अध्ययन कर अपने ज्ञान को पुष्ट किया। महामहोपाध्याय पण्डित हरिहरकृपालु द्विवेदी प्रारम्भ में बिहार के पटना जिले में मुरारका संस्कृत कॉलेज के अध्यक्ष थे। विद्यालय में ग्रीष्मावकाश अथवा शरदवकाश होने पर कर्मा बाजार (नैनी) के निकट अपने गाँव पण्डितपुर को वे लौटते तो मिश्र जी को खण्डन-खण्ड-खाद्य, अद्वैतसिद्धि, ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य, भगवद्गीता आदि वेदान्त के क्लिष्ट ग्रन्थों को उनसे समझने का अवसर सुलभ होता। महामहोपाध्याय पण्डित हरिहरकृपालु द्विवेदी जी के पटना से सेवानिवृत्त होने पर, उनके गंभीर ज्ञान से प्रभावित सेठ गौरीशंकर गोयनका ने उन्हें वाराणसी में अपने 'गोयनका संस्कृत विद्यालय' का अध्यापक आग्रहपूर्वक मनोनीत किया, इस पद पर वे 14

वर्षों तक रहकर सन् 1944 में कार्यमुक्त हुए। अनन्तर यह कार्यभार पण्डित कमलाकान्त मिश्र को सौंपा गया, पंडित जी ने सन् 1944-1966 तक अपने विद्यागुरु द्वारा रिक्त पद पर कार्य किया किन्तु अध्ययन से विमुख नहीं हुए। महामहोपाध्याय द्विवेदी जी के नीलकण्ठ मोहल्ला स्थित आवास पर मध्याह्न में नियमित रूप से जाकर उदयनाचार्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ आत्मतत्त्वविवेक (बौद्धधिक्कार नाम से विख्यात) ग्रन्थ का आद्योपान्त सफल अध्ययन किया, साथ ही वेदान्त के अन्य ग्रन्थों का भी आद्योपान्त अध्ययन किया और विद्वत्ता के क्षेत्र में अपने गुरु के सफल उत्तराधिकारी हुए। प्रतिभा से प्रसन्न गुरु हरिहर कृपालु द्विवेदी ने अपने शिष्यों में केवल कमलाकान्त को सरस्वती मन्त्र प्रदान किया। कमलाकान्त का सौभाग्य था कि गुरुकृपा से उन्हें सरस्वती सिद्ध हुईं। आपकी इसी योग्यता, प्रतिभा, अध्यवसाय और परिश्रम ने आपको वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के सम्मानित प्राध्यापक पद पर आसीन कराया। आजीवन वे इस पद पर प्रतिष्ठित रहकर देश-विदेश के मेधावी शिष्यों को विद्या दान देते रहे।

काशी के विद्वानों में शास्त्रार्थ की परिपाटी प्राचीन है, इस कसौटी पर खरा उतरने वाला ही पण्डित और विद्वान् सर्वमान्य था। गोयनका महाविद्यालय में भी नियमित पाक्षिक सभा एवं शास्त्रार्थ की परम्परा थी। विद्यालय के अध्यक्ष होने के कारण पण्डित कमला कान्त को इन आयोजनों की निरन्तर अध्यक्षता करनी होती। अपने ओजस्वी व्याख्यानों एवं सबल तर्कों से वे विद्यार्थियों एवं विद्वानों के मध्य विद्यमान शास्त्र सम्बन्धी सभी भ्रम दूर कर देते। यदा-कदा काशी विद्वत् परिषद् की ओर से भी शास्त्रार्थ आदि साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते, ऐसी सभाओं में पंडित कमलाकान्त के सबल निर्णयों तथा व्याख्यानों की धूम रहती, विद्वद् मण्डली उनको सुनने के लिए ही मानो एकत्र होती। इस सम्बन्ध में किसी सहृदय की यह उक्ति प्रमाण के लिए पर्याप्त है—

माद्यद्वादीन्द्रवृन्दोद्धतगजघटनाकोटीकोटीरकुम्भोद्रित्ताहङ्कार
मुक्ताकवलनकुशलःकलपनोधन्नखाग्रः।
शास्त्रग्रामास्तपारातिगहनविषयापारकान्तारमध्य–
स्वेच्छाचारोऽधिकारीबुधवरकमलाकान्तकण्ठीरवोऽसौ।।

अर्थात् पंडित कमलाकान्त मिश्र विविधशास्त्रों के गहन वन में स्वच्छन्द विचरण करने वाले एक ऐसे सिंह के समान थे, जो उसके तीक्ष्ण नख के अग्रभागरूपी अपनी शास्त्रार्थ कला की अति सूक्ष्मता से उन्मत्त शास्त्रार्थी महापण्डितों की बुद्धिरूपी मुक्ता को इस प्रकार निकाल लेते थे जैसे सिंह अपने तीक्ष्ण नखाग्र से उन्मत्त हाथियों के मस्तक का भेदन कर गजमुक्ता को निकाल लेने में कुशल होता है।

महानिर्वाणवेद विद्यालय में अध्यापन काल में भी आपके अध्यापन और वक्तृता की धाक थी। वे व्याकरण की कक्षा ले रहे हों अथवा वेदान्त की, सभी कक्षाओं के विद्यार्थी एवं अध्यापक उपस्थित होते, यही नहीं, अन्य विद्यालयों के छात्र व उनके गुरु भी अपनी समस्याओं के शास्त्रीय समाधानों के लिए मिश्र जी के पास आते और सन्तुष्ट होकर वापस जाते।

पंडित कमलाकान्त मिश्र ने अपने ही समान मेधावी एवं अध्यवसायी शिष्य तैयार किए थे। व्याकरण तथा वेदान्त दोनों विषयों में निष्णात और प्रतिष्ठित अनेक छात्रों ने मिश्र जी की कीर्ति पताका को निरन्तर फैलाया। उनके प्रखर तथा योग्यतम कुछ शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं—करपात्री जी महाराज, पं॰ रामचन्द्र शास्त्री खनङ्ग, पंडित रामनिवास गर्ग, पंडित शिवदत्त पाण्डेय, पंडित यमुना प्रसाद शुक्ल, पंडित महानन्द द्विवेदी, पंडित सूर्यकिशोर शुक्ल, पंडित सूर्यनारायण शुक्ल, पंडित कृष्णाकान्त शुक्ल, पंडित सदानन्द द्विवेदी, पंडित रामहर्ष शुक्ल, पंडित रामानन्द मिश्र, पंडित शेषनारायण सोकहा, पंडित चन्द्रबली पाण्डेय, पंडित मत्तगजेन्द्र त्रिपाठी, पंडित द्वारका प्रसाद शास्त्री (ज्योतिष्पीठ), पंडित कृष्णानन्द मिश्र, वैद्य (ककरा) आदि-आदि। यह कथा है उनके स्वेदशी शिष्यों की, परन्तु उनके विदेशी शिष्यों की चर्चा करना भी प्रासंगिक ही है।

प्रो॰ लुडिवग आल्सडोर्फ तथा प्रो॰ पाउल थीमे नामक दो जर्मन विद्वान् संस्कृत ज्ञान की आकांक्षा लेकर भारत आए। पण्डित कमलाकान्त मिश्र की ख्याति उन्हें अध्ययन के लिए प्रयाग ले आई। प्रो॰ आल्सडोर्फ जर्मनी के प्रसिद्ध हैम्बर्ग विश्वविद्यालय में वर्षों तक संस्कृत के अध्यापक थे, उनका प्रयाग आगमन सन् 1931-32 में हुआ, जीवन के उन दो वर्षों में उन्होंने पण्डित कमलाकान्त से नियमित संस्कृत व्याकरण, साहित्य तथा प्राकृतभाषा का अध्ययन किया तथा दो वर्ष पश्चात् जर्मनी जाकर अधीत विद्या का प्रचार किया। सन् 1974 में जर्मनी में उनका निधन हुआ।

प्रो॰ पाउल थीमे येल विश्वविद्यालय, अमेरिका और ट्यूविङ्गेन विश्वविद्यालय, जर्मनी में संस्कृत के अध्यापक थे, उन्होंने 1933-34 में महानिर्वाण वेद विद्यालय में पं॰ मिश्र से नागोजी भट्ट रचित परिभाषेन्दुशेखर, लघुशब्देन्दुशेखर, सिद्धान्तकौमुदी, वेद, व्याकरण और साहित्य के कतिपय ग्रन्थों को पढ़ा था। यह मिश्र जी के पाण्डित्य एवं अध्यापन शैली का परिणाम था कि वे पाश्चात्त्य जगत् में आज भी वेद एवं व्याकरण के अग्रणी विद्वान् के रूप में सम्मानित हैं। प्रो॰ थीमे का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'पाणिनि एण्ड द वेद' उनके प्रयाग प्रवास काल में ही 'इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद' से प्रकाशित हुआ था, सम्प्रति इसका द्वितीय संशोधित संस्करण दिल्ली से मोतीलाल बनारसी दास द्वारा

प्रकाशित किया गया है।

प्रो॰ पाउल थीमे प्रथम बार सन् 1969 में सपत्नीक वाराणसी आए थे, सम्मान्य गुरु प्रो॰ कमलाकान्त मिश्र के धर्म संघ शिक्षा मण्डल, दुर्गा कुण्ड स्थित उनके निवास पर जाकर उनके दर्शन किए थे। धर्म संघ शिक्षा मण्डल में वाराणसी के विद्वज्जनों ने उस अवसर पर प्रो॰ थीमे का भव्य स्वागत किया था। पंडित कमलाकान्त मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र श्री हरिश्चन्द्र वैद्यकप्रवीण थे। तृतीय सुयोग्य पुत्र डॉ॰ विजय नारायण मिश्र, सन् 1969-72 तक जर्मनी में अध्यापन कार्य के लिए गए थे। अवकाश के क्षणों में प्रो॰ थीमे गुरु पुत्र से पूज्य गुरु के ही गुणों व सद्व्यवहार की चर्चा किया करते थे। प्रो॰ थीमे ने डॉ॰ विजय नारायण मिश्र के द्वारा अपने गुरु के लिए संस्कृत में एक पत्र भेजा था, यह पत्र एक विदेशी संस्कृत प्रेमी विद्वान् की गुरु के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का परिचायक है। सम्प्रति विजय नारायण मिश्र नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद में पुस्तकालयाध्यक्ष हैं।

प्रो॰ पाउल थीमे को द्वितीय बार सन् 1972 में प्रथम विश्व संस्कृत सम्मेलन में वेद एवं धर्मशास्त्र के अध्यक्ष के रूप में भारत में निमंत्रित किया गया था। उस सम्मेलन में उनकी भेंट अपने प्रयागप्रवासकालीन मित्रों—प्रो॰ क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा प्रो॰ लक्ष्मीनारायण तिवारी से हुई थी। प्रो॰ तिवारी के अनुसार—प्रो॰ थीमे ने अपने गुरु कमलाकान्त का स्वास्थ्य समाचार हम दोनों से पूछा, पुनः श्रद्धापूर्वक पूर्व दिशा की ओर नतमस्तक होकर 'गुरुपादेभ्यो नमः' कहकर पूज्य गुरु के प्रति भावपूर्ण नमस्कार ज्ञापित किया।

काशी प्रवास के समय ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य 1008 श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज से आपकी अत्यधिक अन्तरंगता थी, सम्भवतः इस कारण कि मिश्र जी मूलतः प्रयाग के निवासी थे और शंकराचार्य अधिकतर प्रयाग में ही रहते थे। काशी में पूज्यपाद शंकराचार्य श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती का आश्रम ब्रह्म मठ नाम से विख्यात था। गोयनका महाविद्यालय, काशी में आपकी नियुक्ति हो जाने पर शंकराचार्य जी ने सिद्धगिरि बाग स्थित इस आश्रम में आपके सपरिवार निवास की विशेष व्यवस्था कर दी थी। मिश्र जी अनेक वर्षों तक इस मठ में एक प्रकार से आस्थान पण्डित के रूप में रहते रहे। पश्चात् जब विद्यालय का अस्सी स्थित छात्रावास बन कर तैयार हो गया तो सन् 1952-1966 तक विद्यालय की सेवा से अवकाश ग्रहण करने तक वहीं रहे।

भारत के प्रसिद्ध संन्यासी सम्राट् स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती, जो बाद में 1008 स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए, गुरु की विद्वत्ता, निश्छल स्वभाव, निष्कलुष चरित्र आदि गुणों से विशेष प्रभावित थे। महाविद्यालय

की सेवा से अवकाश ग्रहण करने पर स्वामी करपात्री जी महाराज ने दुर्गाकुण्ड स्थित अपने धर्मसंकट आश्रम में उनके रहने की स्वतंत्र व्यवस्था की। लगभग 16 वर्षों तक यहाँ रहते हुए उन्होंने मुक्त हृदय से अपनी ज्ञानधारा से अनेक साधु-सन्तों, विद्वानों-विद्यार्थियों को शिक्षा दान किया। यहीं आश्विन् शुक्ल 10 संवत् 2031 तदनुसार 10 अक्टूबर, 1974 को उन्होंने जीवन से मुक्ति प्राप्त की। तीन वर्ष बाद उनकी पत्नी सुयोग्या देवी का भी निधन हो गया।

पण्डित कमलाकान्त मिश्र को संस्कृत जगत् के श्रेष्ठतम सम्मान तथा पुरस्कार प्राप्त थे—महामहाध्यापक—भारत धर्म महामण्डल, वाराणसी, सन् 2006; विद्वच्छिरोमणि—गीर्वाण वाग्वर्धिनी सभा, रामघाट, काशी, 2018; महामहोपाध्याय—भारती परिषद्, प्रयाग। इसके अतिरिक्त अनेक मानपत्र आदि से समय-समय पर वे सम्मानित होते रहे। हिन्दी जगत् में श्री पण्डित जी की विशेष प्रतिष्ठा थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हैदराबाद की 'दर्शन परिषद्' के वे सदा ही सभापति मनोनीत हुए।

पण्डित कमलाकान्त मिश्र विद्यावीर होने के साथ बलवीर भी थे। प्रतिदिन हज़ारों दण्ड-बैठक, मुद्गर-गदा आदि फेरना तथा मल्लयुद्ध उनके जीवन की नियमित दिनचर्या थी। प्रातःकाल गंगा स्नान और गो सेवा उनके आजीवन व्रत थे। उनके सात्त्विक भोजन में गोघृत-दुग्ध-दधि की ही प्रधानता होती थी। उनका श्यामल शरीर पुष्ट और भव्य था। सांवली काया, सिर पर छोटे बाल, मस्तक पर श्वेत मलयगिरि चन्दन का वर्तुल टीका, सिर में साफा; शरीर पर कुर्ता, धुली धोती, पैरों में जूता तथा कन्धे पर अंगौछा उनके शान्त-गम्भीर से व्यक्तित्व को और सजाते थे। शीत से रक्षा के लिए वे मात्र पश्मीने का दुशाला ओढ़ते थे। भोजन-वस्त्र-रहन-सहन में वे कृपणता नहीं करते थे तो भी मनोवृत्ति से वे अद्वैत वेदान्ती ही थे, कभी किसी वस्तु का लोभ नहीं, संग्रह की प्रवृत्ति नहीं, धन इकट्ठा करने में रुचि नहीं, मान-सम्मान की चिन्ता नहीं, स्वाध्याय से अरुचि नहीं। हाथ में पुस्तक लिए वे घण्टों अध्ययन में दत्तचित्त रहते। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण घर के निकट सदस्यों तक का उनसे बात करने का साहस न होता। पान खाने वाले सज्जन अच्छी तरह मुँह साफ करके उनके सामने बात करने खड़े होते। विद्यालय जाते तो मार्ग में परिचितों का प्रणाम तो स्वीकार करते परन्तु अधिक बात न करते।

पंडित कमलाकान्त मिश्र ने अपनी जन्मभूमि कोटवा में ग्रामवासियों के सहयोग से तिलक महाविद्यालय इण्टर कालेज की स्थापना की तथा आजीवन संस्थापक अध्यक्ष रहे। गाँव में रामलीला, होलिकोत्सव आदि आयोजन प्रारम्भ किये तथा प्रत्येक वर्ष इन आयोजनों में भाग लेने के लिए गाँव वालों के मध्य

उपस्थित होकर उनके मध्य अपना प्रेम एवं सौहार्द बिखेरते रहे। ग्रीष्मावकाश में गाँव आते तो आस-पास के गाँवों से लोग उनके दर्शन के लिए उपस्थित होते थे। दारागंज, प्रयाग में पैतृक आवास के अतिरिक्त उन्होंने अल्लापुर में एक निजी आवास का भी निर्माण कराया जिसमें उनके वंशज सम्प्रति निवास कर रहे हैं।

ऋषिकल्प पण्डित कमलाकान्त मिश्र का सम्पूर्ण जीवन देववाणी संस्कृत की सेवा के लिए सदा समर्पित रहा। ऐसे सौम्य व्यक्तित्व मनीषी धरा-धाम पर कभी-कभी ही जन्म लेकर, साहित्य जगत् को धन्य कर समाज का कल्याण करते हैं।

(9) मिट्ठू लाल शास्त्री

पंडित मिट्ठू लाल शास्त्री का जन्म 15 जनवरी सन् 1896 को हुआ था। उनका जन्म स्थान उत्तर प्रदेश के ज़िला फ़र्रुखाबाद ग्राम कान्तबुदुर में है।

इनके पूज्य पिताश्री का शुभनाम श्री गिरिधारी लाल एवं माताश्री का शुभनाम श्रीमती रुक्मिणी देवी था। प्रारम्भिक शिक्षा (अरबी, फारसी माध्यम से) तथा हाईस्कूल तक की पढ़ाई फ़र्रुखाबाद में ही पूरी हुई। कुशाग्रबुद्धि होने से वे अपनी कक्षा में प्रथम आते थे। वे निरन्तर छात्रवृत्ति-लाभ करते रहे और इस धनलाभ से (जो कि अत्यल्प मात्रा में था) उन्होंने साहित्य विषय की पुस्तकें खरीदीं।

इन्हीं कुछ वर्षों में उनके माता-पिता और उनकी तीन बहिनों का निधन एवं अग्रजा को वैधव्य दुख प्राप्त हुआ। इन सब से उबरने के बाद वे प्रयाग आ गए। यहाँ कायस्थ पाठशाला से उन्होंने इण्टरमीडिएट परीक्षा पास की।

प्रयाग विश्वविद्यालय से बी॰ ए॰ पुनः संस्कृत में एम॰ ए॰ किया। अन्य उपाधियों में एस॰ ओ॰ एल॰ (लाहौर), काव्यतीर्थ, वेदान्ततीर्थ, साहित्याचार्य, साहित्योपाध्याय, विद्याभूषण तथा शास्त्री है। स्वयं डी॰ फिल् न होते हुए भी उन्होंने अनेक शोधार्थियों को अपने सुयोग्य निर्देशन में डी॰ फिल् की उपाधि दिलवाई। उन्होंने श्रीराम दयाल मिश्र, श्री लक्ष्मी नारायण शास्त्री, महामहोपाध्याय डॉ॰ गंगा नाथ झा, डॉ॰ ताराचन्द, डॉ॰ देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर, डॉ॰ टॉमस, स्वामी परमानन्द गिरि सम महनीय गुरुजनों से शिक्षाप्राप्त की।

सन् 1916 में अतरसुइया इलाहाबाद निवासी स्व॰ दुर्गाप्रसाद जी की कन्या से उनका विवाह हुआ। सन् 1918 में प्रथम पुत्र का जन्म तथा तत्काल मृत्यु हो गई।

प्रथम नियुक्ति सम्भवतः सन् 1926 या 27 में संस्कृत विभाग में

प्राध्यापक पद पर राजाराम कॉलेज, कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में हुई। 3-4 वर्षों में मन उचटने से वे पुनः प्रयाग आ गए। द्वितीय नियुक्ति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रवक्ता पद पर (लगभग सन् 1930 में) हो गई, जो कि सन् 1956 में सेवानिवृत्ति-पर्यन्त रही। वे शताब्दी के तृतीय दशक में श्री सौदामिनी संस्कृत महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति के सदस्य भी रहे।

प्रथम सन्तान की मृत्यु के 14 वर्षों के पश्चात् पुनः सन् 1931 से सन्तानोत्पत्ति प्रारम्भ हुई। ईश्वर की अनुकम्पा से 3 कन्या व 1 पुत्र का जन्म हुआ। चौदह वर्ष सन्तान न होने की अवधि में वे बालकों को एकत्र कर मेवा-मिष्ठान्न बाँटते थे।

एक महत्त्वपूर्ण घटना–उनके जीवन में घटी जिसने उनकी जीवन शैली बदल दी। अन्तिम सन्तान पुत्र गुरुदत्त ने सन् 1938 में जन्म लिया। प्रारम्भ से ही उसे कुछ लिवर सम्बन्धी कष्ट था जो आयु के साथ बढ़ता गया। डाक्टरों की तमाम देख-रेख और उपचार ओषधियों से भी स्थिति और स्वास्थ्य बिगड़ता गया। 19 मास पश्चात् सन् 1940 अगस्त मास में उसका देहावसान हो गया। इस वज्राघात से वे बिल्कुल टूट गए। इससे उबरने में उन्हें कई वर्ष लगे किन्तु वे इस कष्ट से सर्वथा मुक्त कभी नहीं हो पाए। माता-पिता दोनों के लिए यह आघात इतना कष्टप्रद रहा कि उनका स्वास्थ्य ही असंतुलित हो गया। पत्नी को लकवा का आक्रमण होने से (सन् 1940) उनका दाहिना अंग लगभग निष्क्रिय हो गया था, जो कि आंशिक रूप से मृत्युपर्यन्त (जनवरी सन् 1955) रहा।

शास्त्री जी को भी अनेक रोगों को झेलते हुए जीवन यापन करना पड़ा। सन् 1940 से ही उनकी जीवनचर्या विशेषकर जीवन शैली बिल्कुल ही बदल गई। आशा का स्थान निराशा ने ले लिया। वेशभूषा बदल गई। चूड़ीदार पैजामा, अचकन और टोपी में रहने के स्थान पर मोटी धोती कुरता पहनने लगे। बाल बनवाना बन्द कर दिया। अध्ययन-अध्यापन तो यथावत् चलाते रहे। संध्या पूजन, नियम, व्रत, उपवास इत्यादि अधिकाधिक होते गए। इसके साथ ही गृहस्थ-धर्म और कर्तव्यों के पालन में कभी त्रुटि नहीं हुई। धैर्य की उनमें कमी नहीं थी, और कभी हुई भी नहीं।

झूँसी में स्वामी परमानन्द गिरि के वे शिष्य बने गुरुदीक्षा लेकर। सप्ताह में 1 दिन का समय वहाँ अवश्य बिताते थे आत्मिक शान्ति के लिए। गुरु के शरीर छोड़ने के बाद भी उन्होंने यथाशक्ति वहाँ जाने का क्रम जारी रखा था।

अपनी जन्मस्थली शान्तनुपुर जिला फ़र्रुखाबाद में वे विश्वविद्यालय-प्रदत्त सभी बड़ी छुट्टियाँ (ग्रीष्मावकाश, दशहरा-दीवाली तथा शीतावकाश) बिताते थे और अपने भाई व परिवार के साथ खेती पर भी पूरा ध्यान व जानकारी रखते

थे। पूजा-पाठ, यज्ञोपवीत, उपनयन, विवाहादि संस्कार वे वेदोक्त विधि से निःशुल्क कराते थे। विवाह संस्कारों में पुरोहित के साथ स्वयं भी मन्त्रोच्चारण करते थे। प्रातः, सायं, रात्रि—तीन समय पूजा के पश्चात् ही अन्न ग्रहण करते थे। पत्नी की मृत्यु के बाद तो वे वीतराग संन्यासी समान ही हो गए। प्रातः गङ्गा स्नान, दिनभर सत्संग, कथा इत्यादि में आना-जाना, खाने की परवाह नहीं, कभी कुछ ले लिया, कभी तो यूं ही सारा दिन बीत जाता। आदिवस वे पदयात्रा ही करते थे। वे स्वपाकी थे, किसी ब्राह्मण के यहाँ भी कच्चा-पक्का भोजन नहीं करते थे।

अखिल भारतीय कायस्थ-सभा के वे प्रमुख कार्यकर्ता रहे। कायस्थ समाज की सभी बैठकों में या महासभाओं में वे अवश्य भाग लेते थे। कुरीतियों-कुप्रथाओं को मिटाने का प्रयास वे निरन्तर ही करते रहे। वे सदैव निर्धन और निर्बल की धन द्वारा सहायता करते थे। उत्तरपुस्तिकाओं की मूल्यांकन राशि से निर्धन विद्यार्थियों की वे छात्रवृत्ति के रूप में मदद करते थे। गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार की संस्था को उन्होंने गुप्तदान में एक बड़ी धनराशि प्रदान की थी।

संस्कृत भाषा के साथ वे आंग्ल भाषा के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्हें उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं का भी पर्याप्त ज्ञान था। उनके द्वारा संगृहीत साहित्य में हिन्दी, बांग्ला, गुजराती, मराठी तथा अंग्रेज़ी पुस्तकें उपलब्ध हैं, संस्कृत साहित्य का तो बाहुल्य है ही।

उनके द्वारा लिखित पुस्तकें–

1. कायस्थ कौन हैं?
2. हर्षचरित के पञ्चम उच्छ्वास का अंग्रेज़ी अनुवाद।
3. प्राथमिक वेद संग्रह।

इनके अतिरिक्त अनेक लेख तथा शोधपत्र थे जो सम्प्रति आसानी से प्राप्य नहीं हैं।

अन्तिम दो वर्ष उन्होंने मम्फोर्डगंज, इलाहाबाद में व्यतीत किए। इसी समय से उनका रक्तचाप अधिक हो गया था। उनके पुत्रवत् शिष्य स्वर्गीय श्री श्याम नारायण जी ने उन्हें अपने निवास भवन के एक कमरे में आदरपूर्वक स्थान दिया था। भोजन का आग्रह भी किया पर वे इसके लिए नहीं माने।

15 जनवरी, 1974 को कड़ाके की ठण्ड थी। प्रातः 5 बजे ही नहा धोकर पूजा-पाठ के पश्चात् सत्संग के लिए निकले। अपने दूर सम्बन्ध के पौत्र (जो गोल चौराहा मम्फोर्डगंज के निकट रहते थे, के पास बैठकर प्रतिदिन थोड़ी

देर अखबार पढ़ते थे), उस दिन भी बैठे। चाय पी। ठण्ड बढ़ रही थी, तेज हवा भी चल रही थी। उन्होंने कहा—'बेटा! 'मुझे ठण्ड अधिक लग रही है। उन लोगों ने कई रजाइयाँ व कम्बल उढ़ा दिए, अँगीठी में आग ज़ला कर रख दी किन्तु उन की ठण्ड और बेचैनी बढ़ती गई, दवा से लाभ नहीं हुआ। वे सबसे यही कहते रहे कि मैं अब जा रहा हूँ, मेरे साथ सब लोग 'ओ३म् नमः शिवाय' कहो, मेरे लिए कोई भी न रोए।

उनका निधन मम्फोर्डगंज इलाहाबाद में 15 जनवरी, 1974 को प्रातः 11 बजे हुआ था। उनके पुत्र-तुल्य शिष्य श्री श्यामनारायण जी ने ससम्मान उनके सभी अन्तिम संस्कार सम्पन्न किए।

(10) क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय

प्रो॰ क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय भारत के प्राच्यविद्या के उन पण्डितों में थे, जिनकी शोध पद्धति और विद्वत्ता को पाश्चात्त्य विद्वान् भी स्वीकार करते थे। उनके महनीय व्यक्तित्व तथा संतुलन की दिव्य आभा तथा उनके निष्पक्ष चिन्तन विलास और निर्णय का उत्कर्ष अवलोकनीय है। उनकी विद्याविनयसम्पन्नता, ब्राह्मणोचित शास्त्रोक्त गुण तथा आत्मानुशासन द्वारा दूसरों को अनुशासित होने की प्रेरणा देना, अपने शास्त्रोक्त आचरण, आहार-विहार द्वारा संयमित जीवन का उद्धरण प्रस्तुत करना उनकी सामान्य जीवनचर्य्या के विशिष्ट अंग थे। भारतीय संस्कृति के प्रकाशपुंज स्तम्भ नेता श्री सुभाष चन्द्र बोस तथा प्रख्यात रचनाकार श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के सम्पर्क ने उनमें प्रकृत्या श्रेष्ठ गुणों का आधान किया था। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति के आदर्शों से मण्डित व्यक्तित्व से देश के नवयुवकों को सम्पूरित करना चाहा था, प्रो॰ क्षेत्रेश चन्द्र भगवद्गीता के वैसे ही जीवित संस्करण थे। स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रोत्थान के संकल्प को पूरा करने वाले अनेक नवयुवकों में से प्रमुख दो—नेता जी सुभाष चन्द्र बोस तथा पं॰ क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए अपने-अपने मार्ग विशेषों को अपना कर शिखर पुरुष के रूप में स्थापित हुए थे। सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के वंशज पं॰ क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय ने शिक्षा और साहित्य के प्रति अभिरुचि उनसे ही विरासत में प्राप्त की थी।

पं॰ क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय का जन्म 27 अक्टूबर 1896 को पं॰ बंगाल के चौबीस परगना जिले के आमता नामक गाँव में पं॰ गंगानन्द चट्टोपाध्याय के कुल में हुआ था। आपके पिता श्री अतुलचन्द्र चट्टोपाध्याय सरकारी विभाग में सेवारत होने के साथ-साथ अंग्रेज़ी भाषा के कुशल ज्ञाता थे। माता सुरसुन्दरी सुशिक्षित धर्मभीरु महिला थीं। धार्मिक प्रकृति की माता और पिता की अंग्रेज़ी

भाषा में निपुणता उन्होंने सहज ग्रहण की थी। अंग्रेज़ी साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् प्रो॰ ज्योतिष चन्द्र चट्टोपाध्याय की एक मात्र पुत्री जगत लक्ष्मी देवी से उनका विवाह हुआ था। उनके तीन सुयोग्य पुत्र महेश, उमेश तथा भवेश तथा पुत्रियाँ गौरी व पार्वती उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अद्यापि लब्धप्रतिष्ठ हैं। बाल्यकाल में माता सुरसुन्दरी देवी ने क्षेत्रेश तथा उनकी बहनों आभा एवं प्रभा को भगवान् शंकराचार्य के जीवन पर आधारित एक बंगला नाटक पढ़कर सुनाया था, इस नाटक का इनके बालपन पर अत्यन्त गम्भीर प्रभाव पड़ा, उसी क्षण उन्होंने शंकराचार्य की भाँति वेदान्त दर्शन के अध्ययन का संकल्प ले लिया था। अपने पिता श्री अतुलचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा हिन्दी स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री रायबहादुर रसमय मित्र से भाषाविज्ञान में गम्भीर रुचि लेकर आपने भाषा विज्ञान का गम्भीर अध्ययन किया। यह वह समय था जब सामान्य जन वेदों को अति पूज्य और अति कठिन मान कर उनके अध्ययन से पराङ्मुख हो रहे थे, क्षेत्रेश चन्द्र ने वेदों को सर्वसुलभ बनाने की दृष्टि से न्याय-तर्क आदि शास्त्रों के अध्ययन का मोह त्याग वेदाध्ययन को अपना जीवनलक्ष्य बनाया।

सन् 1913 में मैट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण कर उन्होंने 1915 में इण्टरमीडिएट कक्षा में प्रेसीडेंसी कॉलेज कलकत्ता में प्रवेश लिया। यहाँ नेता जी सुभाष चन्द्र बोस उनके अभिन्न मित्र एवं सहपाठी रहे। यहीं दोनों मित्रों ने स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रोत्थान के कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। दोनों ही मित्र भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान तथा भारतीय ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति में आजीवन लगे रहे। उक्त सदुद्देश्य की सार्थक पूर्ति हेतु एक दूसरे को पत्राचार द्वारा प्रोत्साहित भी करते रहे। सुभाष की अदम्य इच्छा थी देशभक्ति के मार्ग पर क्षेत्रेश को ले जाने की, किन्तु क्षेत्रेश ने शैक्षिक मार्ग से ही राष्ट्र की प्रगति के पथ को प्रशस्त बनाने का वादा सुभाष को दिया, उसे क्रियान्वित भी किया।

अध्ययन की उत्ताल आकांक्षा उन्हें पं॰ बंगाल से उत्तर प्रदेश ले आई, यहाँ उन्होंने शिक्षा के प्राचीन केन्द्र इलाहाबाद के म्योर सेन्ट्रल कॉलेज में बी॰ ए॰ कक्षा में प्रवेश लिया। यहाँ उन्हें गुरु के रूप में परम स्नेही प्रो॰ गंगा नाथ झा तथा सहपाठी के रूप में गुरु पुत्र प्रो॰ अमर नाथ झा का सान्निध्य मिला। दोनों परिवारों ने इन मधुर सम्बन्धों का सदा निर्वाह किया। यहाँ उन्हें प्रो॰ आदित्य राम भट्टाचार्य सदृश अन्य विद्वद्वरेण्य गुरुओं से भी ज्ञानार्जन का सुअवसर मिला। सन् 1917 में बी॰ ए॰ की परीक्षा में प्रथम श्रेणी तथा सम्पूर्ण विश्वविद्यालय में तृतीय स्थान अर्जित कर, क्षेत्रेश चन्द्र संस्कृत पण्डितों के वैदुष्यपूर्ण सान्निध्य की अभिलाषा से बनारस चले आए और क्वींस कालेज

बनारस में संस्कृत विषय की दर्शन शाखा में विशेष अध्ययन कर प्रथम श्रेणी में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

क्षेत्रेश चन्द्र ने काशीवास की अवधि में महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज, लक्ष्मण शास्त्री तैलंग, महामहोपाध्याय वामाचरण भट्टाचार्य, अम्बादास शास्त्री तथा अच्युतानन्द त्रिपाठी सदृश मूर्धन्य विद्वानों से विधिवत् शिक्षा ग्रहण कर अपने ज्ञान में वृद्धि की। विदेशी विद्वान् ऑर्थर वेनिस के सत्संग का भी लाभ उन्हें मिला। बनारस में ही उन्होंने डॉ० तुकाराम 'लड्डू' से पाली, प्राकृत तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया। भाषाविज्ञान तथा अवेस्ता के गम्भीर ज्ञान विस्तार हेतु उन्होंने प्रो० सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय तथा प्रो० आई जे० तारापोरवाला का शिष्यत्व भी स्वीकार किया।

सन् 1919 में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर क्षेत्रेश चन्द्र ने महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज के निर्देशन में शोधकार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने काशी के धुरन्धर विद्वानों से प्राच्य परम्परागत शास्त्रीय विधि से व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, मीमांसा आदि विषयों के मानक ग्रन्थों के अध्ययन का क्रम भंग नहीं होने दिया। उसी वर्ष कारमाइकेल कॉलेज, रंगपुर (वर्तमान बांग्लादेश) में संस्कृत अध्यापक के रूप में आपकी नियुक्ति हुई। अध्यापन करते हुए ही उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से क्रमशः सन् 1921 में वेद एवं सन् 1922 में वेदान्त विषयों में एम० ए० की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की।

सन् 1924 में क्षेत्रेश चन्द्र की नियुक्ति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रवक्ता पद पर हुई। निरन्तर 34 वर्षों तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अध्यापन काल में वे क्रमशः प्रवक्ता, उपाचार्य एवं प्रोफेसर पदों को सुशोभित कर सफल एवं अध्यवसायी अध्यापक के सम्मान के भागी हुए। सन् 1958-1961 पर्यन्त वे संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर आरूढ रहे। इस सुदीर्घ अन्तराल में उन्होंने संस्कृत और संस्कृति से सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। संस्कृत की विभिन्न शाखाओं में अध्ययन करते हुए वेद, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, तर्क, व्याकरण, काव्यशास्त्र, पालि, प्राकृत, भाषाविज्ञान, ईरानी-फारसी साहित्य, इंडोलॉजी तथा भारतीय इतिहास आदि विषयों के गूढ ग्रन्थों का निपुणतापूर्वक अध्यापन किया। क्षेत्रेश चन्द्र अन्य भाषाओं में अनूदित ग्रन्थों को पढ़ने में विश्वास नहीं रखते थे। उनका मानना था कि अनूदित ग्रन्थों में लेखक की विचारधारा के साथ समुचित न्याय नहीं हो पाता है। ग्रीक, फ्रेंच, जर्मन तथा ईरानी भाषा के मौलिक ग्रन्थों को आत्मसात् करने की दृष्टि से उन्होंने इन भाषाओं का स्वयं ज्ञान प्राप्त किया। आगे चल कर उनका यह ज्ञान तुलनात्मक भाषाविज्ञान तथा संस्कृतियों के

तुलनात्मक अध्ययन में विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ। उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में ही ईश और केन उपनिषदों की अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद सहित मौलिक व्याख्या लिखी थी। इन व्याख्याओं से उनका भाषा पर अधिकार और कुशाग्र बुद्धि का सम्यक् परिचय मिलता है।

पं॰ क्षेत्रेश चन्द्र प्राचीन ज्ञान की विरासत को शिष्य रूपी अग्रिम पीढ़ी को सौंपने की दृष्टि से छात्रों को कक्षा में प्रत्येक विषय रुचि लेकर पढ़ाते किन्तु काव्य और नाटक के अध्यापन में उन्हें विशेष रस आता। मेघदूत के श्लोकों का सरस पाठ तथा शाकुन्तल के संवादों की अभिनयात्मक प्रस्तुति कवि की मूलभावना के साथ विद्यार्थी को जोड़ कर नायक-नायिका के मनोरम संसार में ले जाती। अध्यापन के समय उनका विशेष ध्यान शब्दों के शुद्ध उच्चारण पर भी होता था, शब्दों के अशुद्ध उच्चारण से अर्थ का अनर्थ उन्हें असह्य था। श्लोकों की व्याख्या ऐसी गहराई से नूतन उद्भावनाओं के साथ करते कि छात्र मन्त्रमुग्ध हो जाते। साहित्यिक विषयों को पढ़ाते समय वे अपने इतिहास के ज्ञान का भी प्रायः प्रयोग करते और अपने मत की पुष्टि में पुरातात्त्विक तथा ऐतिहासिक साक्ष्यों का प्रयोग करते। महाकवि कालिदास की रचनाओं का अध्यापन प्रारम्भ करने के पूर्व वे कई दिन तक उनकी तिथि के निर्धारण की समस्या पर साहित्य और इतिहास दोनों दृष्टियों से अकाट्य तर्क प्रस्तुत कर अपने मत का प्रतिपादन करते, यद्यपि नवीन शोधों से प्राप्त परिणामों को स्वीकार करने को भी वे सदा प्रस्तुत रहते। वे अकाट्य साक्ष्यों से कालिदास को ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का सिद्ध करते किन्तु इधर जब कालिदास को 400वीं शताब्दी ईसा पश्चात् मानने के गुप्तकालीन साक्ष्य मिलने लगे, तब उन्होंने भी उस ऐतिहासिक दृष्टि को स्वीकार कर लिया था। पढ़ाई का माध्यम अंग्रेज़ी होने के बावजूद वे हिन्दी में अध्यापन करते, इससे छात्रों को भी विषय सुग्राह्य होता और बंगला मातृभाषी क्षेत्रेश चन्द्र का हिन्दी वाक्य विन्यास भी पुष्ट होता। संस्कृत और अंग्रेज़ी भाषा पर उनका अधिकार था, एम॰ ए॰ की कक्षाओं में वे प्रायः धाराप्रवाह संस्कृत अथवा अंग्रेज़ी बोलते और छात्र एकाग्रचित्त हो कर सुनते।

पं॰ क्षेत्रेश चन्द्र का भूगोल का ज्ञान भी परिपक्व था। शिलालेखों, मुद्राओं, ताम्रपत्रों और मूर्तियों की कालगणना और भौगोलिक स्थिति सम्बन्धी उनकी सम्मतियाँ इतिहासज्ञों के लिए भी उपादेय होतीं। अध्ययन के सभी आयामों का विस्तृत ज्ञान होने के कारण किसी भी विषय पर शोधपत्र लिखना उनके लिए कठिन न था। विषय कितना भी गूढ हो, प्राच्य और पाश्चात्त्य दोनों दृष्टियों के प्रयोग में निष्णात क्षेत्रेश चन्द्र उसे गहराई से प्रस्तुत करते। यही कारण था कि प्राच्य विद्या सम्मेलनों में तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में उनके द्वारा

प्रस्तुत प्रपत्रों की विद्वज्जन भूरि-भूरि प्रशंसा करते।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन के कार्यकाल में पं॰ क्षेत्रेश चन्द्र संस्कृत तथा इतिहास विभाग से समान रूप से सम्बद्ध रहे और दोनों ही विभागों की उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहे। दोनों ही विषयों से सम्बद्ध शोधकार्यों में भी उनका योगदान स्मरणीय रहा। पुरातात्त्विक अनुसन्धानों और उत्खननों में तो उनकी विशेष रुचि थी। विश्वविद्यालय ने कौशाम्बी उत्खनन का दायित्व उनकी ही प्रेरणा से स्वीकार किया था। विश्वविद्यालय के कौशाम्बी संग्रहालय एवं प्रभाग संग्रहालय उन्हीं के प्रयत्नों के प्रतिफल हैं। प्राचीन ईरानी और भारतीय सभ्यता के परस्पर सम्बद्ध सूत्रों का उद्घाटन भी उनकी ही ज्ञान पराकाष्ठा को सूचित करता है। अतएव इस क्षेत्र में उनका गवेषणापूर्ण आधिपत्य देख कर भारत सरकार ने उनको वेद और अवेस्ता के तुलनात्मक शोध की योजना प्रदान की। संस्कृत से पाश्चात्त्य पद्धति से आजीविका पालन के लिए जुड़े होने पर भी वे प्राच्य पद्धति की पाठशलाओं के आधुनिकीकरण के लिए प्रयासरत रहे। श्री सौदामिनी संस्कृत महाविद्यालय, विवेकानन्द मार्ग, इलाहाबाद के प्रबन्धक पद पर रहकर वे वहाँ अनेक कवि सम्मेलनों, व्याख्यानों, प्रतियोगिताओं, नाटकों के मंचन, गोष्ठियों के आयोजन आदि में सक्रिय भूमिका निभाते रहे। विभिन्न सांस्कृतिक संस्थानों की सदस्यता तथा वेद एवं वेदेतर विषयों पर व्याख्यान आदि से उन्होंने संस्कृत की आजीवन सेवा की। उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के प्रतिदान में भारत सरकार के राष्ट्रपति श्री राधाकृष्णन् ने उन्हें सन् 1966 में राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित कर आजीवन अतिरिक्त पेंशन का प्रबन्ध किया।

बनारस में स्थित राजकीय संस्कृत महाविद्यालय वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हो गया और क्षेत्रेश चन्द्र को इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् 1958 में अवकाश ग्रहण करने के तीन माह पूर्व संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी का निदेशक नियुक्त कर दिया गया। इस अवधि में वेद, व्याकरण, साहित्य और इतिहास विषयक शोधों को उन्होंने गवेषणा के शिखर तक पहुँचाने में शोधार्थियों की भरसक सहायता की। उन्होंने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में मुद्रणालय खोल कर संस्कृत ग्रन्थों का मुद्रण एवं प्रकाशन प्रारम्भ किया। निदेशक पद से अवकाश ग्रहण कर उन्होंने उसी विश्वविद्यालय के कुलपति पद को भी अलंकृत किया। वे साढ़े तीन वर्ष तक ऑल इण्डिया रेडियो में भारत सरकार के सलाहकार के पद पर भी कार्य करते रहे। इस पद पर रहते हुए उन्होंने संस्कृत शिक्षण के पाठों का सप्ताह में दो बार प्रसारण किया। उनके द्वारा तैयार किए गए ये पाठ परिमार्जित करके अनेक बार प्रसारित किए जा चुके हैं।

सन् 1928 में पं० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय को वेद एवं अवेस्ता के लोकप्रिय पाश्चात्त्य विद्वान् कार्ल० एफ० गैल्डनर के सम्मान में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया। यह उनका पहला आमन्त्रण था फिर यह क्रम उनकी मृत्यु पर्यन्त चलता रहा, वे निरन्तर राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रपत्र प्रस्तुत कर प्रतिभागिता करते रहे।

क्षेत्रेश चन्द्र दिसम्बर सन् 1924 में प्रथम बार ऑल इण्डिया ओरियन्टल कॉन्फ्रेंस के तृतीय मद्रास अधिवेशन के आयोजन में सक्रिय भूमिका निभा कर जुड़े थे। उसके बाद सन् 1937 में नवें त्रिवेन्द्रम अधिवेशन में वेद और इंडो-आर्यन विभाग की अध्यक्षता तथा सन् 1955 में 18 वें अन्नामलाई नगर अधिवेशन में वैदिक विभाग की अध्यक्षता की। सन् 1946 दिसम्बर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कराँची अधिवेशन में दर्शन विभाग की अध्यक्षता की। सन् 1949 में सम्मेलन द्वारा प्रारम्भ किए गए अभियान में संयुक्त भारत की संघटक सभा में हिन्दी भाषा को कार्यालयीय भाषा बनाने के लिए अथक प्रयास किया था। हिन्दी के लिए की गई उनकी सेवाओं के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें साहित्य वाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया था।

सन् 1935 में रोम में आयोजित प्राच्य विद्या विशारदों की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस में क्षेत्रेश चन्द्र ने 'दास और दस्यु' विषय पर प्रपत्र प्रस्तुत किया था। सन् 1940 में क्षेत्रेश चन्द्र ने भारतीय इतिहास कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 'बृहद्रथ से मौर्य राजाओं तक' विषय पर प्रकाश डाला था। सन् 1961 में कानपुर में सम्पन्न शिक्षा अधिवेशन में वे संस्कृत विभाग के सभापति मनोनीत हुए थे।

पण्डित क्षेत्रेश चन्द्र की स्मरण क्षमता अद्‌भुत थी। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी कवियों की पुस्तकों के लम्बे-लम्बे अंश उन्हें कण्ठाग्र थे। विश्वविद्यालय एक्ट के अधिकांश नियम-उपनियम उन्हें शब्दशः याद थे, आवश्यकता पड़ने पर वे उनका सहज प्रयोग कर लेते थे। वे स्वभाव से गम्भीर, अहंभाव से युक्त किन्तु विनम्र थे। अपने अधिकारी (कुलपति) की उचित बात विनम्रता से स्वीकार करते और अनुचित आदेश न मानने के लिए दृढ़ता से मना कर देते। मूलतः वे विनोदी स्वभाव के थे, विनोद में बंगला को माँ और हिन्दी को मौसी कहते और कहते, *'माँ की अपेक्षा मौसी अधिक स्नेही है'*।

पण्डित क्षेत्रेश चन्द्र का हृदय शिष्यों के लिए वात्सल्य रस से भरा-पूरा था। वे गुरु और शिष्य के सम्बन्ध को जीवन्त मानते और अपने शिष्यों से आन्तरिक रूप से जुड़ कर उनकी समस्याओं का समाधान भी करने को उद्यत

रहते, चाहे वह समस्या साहित्यिक हो या व्यक्तिगत। निर्धन छात्रों से तो उन्हें विशेष सहानुभूति रहती, अपने निजी पुस्तकालय से भी पुस्तकें देकर वे उनकी सहायता करते। धन की आवश्यकता होने पर छात्र उनसे निस्संकोच आर्थिक सहायता स्वीकार करते। इसके विपरीत जो छात्र अध्ययन में प्रमाद करते, उन्हें वे कठोरतापूर्वक स्वाध्यायान्माप्रमदः का उपदेश भी करते। 'शिष्यादिच्छेत् पराजयम्' ही उनके जीवन की साधना थी, यही उनका जीवन धन था। प्रो॰ लल्लन जी गोपाल, प्रो॰ लक्ष्मी मल्ल सिंघवी, पंडित आदित्य नारायण झा, प्रो॰ अमलानन्द घोष, डॉ॰ सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, डॉ॰ उदय नारायण तिवारी, प्रो॰ गोवर्धन राय शर्मा, पंडित विद्यानिवास मिश्र, प्रो॰ गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, प्रो॰ कमलेश दत्त त्रिपाठी, पंडित रामगोविन्द पाण्डेय आदि उनकी शिष्य मण्डली के भास्वरमान् रत्न हैं। धर्मशास्त्र के महाविद्वान् प्रो॰ ए॰ बी॰ कीथ, प्रकाण्ड दर्शनशास्त्री प्रो॰ आर॰ डी॰ रानाडे, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, काव्यशास्त्री महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, महान् धर्मशास्त्री प्रो॰ पी॰ वी॰ काणे आदि दिग्गज विद्वान् उनकी विलक्षण प्रतिभा के प्रशंसक थे।

पं॰ क्षेत्रेश चन्द्र ने विभिन्न दायित्वों का निर्वाह करते हुए सरस्वती की आराधना की। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें सन् 1960 में तुलनात्मक धर्म के लिए 'स्टेफनोज़ निर्मलेन्दु घोष प्रवक्ता' नियुक्त किया। सन्1963 तथा 1964 में उन्होंने 'God, reaches out his hands' विषय पर आठ व्याख्यान दिए। पटियाला विश्वविद्यालय ने उन्हें 'तुलनात्मक धर्म' शिक्षा के लिए गुरु गोविन्द सिंह आचार्य पद का प्रस्ताव दिया, अस्वस्थता के कारण उस पद के लिए उन्होंने अनिच्छा व्यक्त कर दी। सन् 1960 में अहमदाबाद विश्वविद्यालय एवं संस्कृत महाविद्यालय, कलकत्ता में उन्होंने 'वैदिक धर्म एवं दर्शन का इतिहास' विषय पर तीन-तीन व्याख्यान दिए। श्रद्धेय गुरु प्रो॰ गंगा नाथ झा के सम्मान में जिस गंगा नाथ शोध संस्था की उन्होंने स्थापना की थी, शोध संस्थान से जर्नल का प्रकाशन प्रारम्भ किया था, उसी शोध संस्थान ने उनकी निःस्पृह सेवाओं को लक्ष्य कर सन् 1971 के अंक को 'पंडित क्षेत्रेश चन्द्र स्मृति अभिनन्दन ग्रन्थ' के नाम से प्रकाशित कर उन्हें समर्पित किया।

3 मार्च 1974 को वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति पंडित बलराम उपाध्याय विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में दीक्षा देने के लिए उन्हें स्वयं निमन्त्रित करने आए। श्वासकष्ट से पीड़ित होने पर भी कुलपति के आग्रह पर उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी तथा विषय की रूप-रेखा पर विस्तार से चर्चा भी की। कुलपति के जाने के पश्चात् श्वास कष्ट की अत्यधिक पीड़ा से शय्या पर लेट कर ही नित्य की भाँति पूजा पाठ करने लगें, उन्हीं किसी क्षण में कब

ज्योतिर्लोक को महाप्रयाण कर जीवनमुक्त हो गए, कोई जान न सका।

पं॰ क्षेत्रेश चन्द्र द्वारा लिखित पुस्तकों एवं शोधपत्रों की सूची—

1. ईशोपनिषद्

2. केनोपनिषद्

अंग्रेज़ी अनुवाद भाष्य सहित। पण्डित जर्नल में सन् 1915 में प्रकाशित। श्री विद्यानिवास मिश्र ने पुनः प्रकाशित किया था।

3. Vedic Religion, 4. Jorasthrian Religion—दो भागों में सन् 1975 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित।

5. वेदामृतम् (वेदावित्त प्रकाशिका) सन् 1997 में गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ से प्रकाशित।

6. Study in Vedic and Indo-Iranian Religion and Literature, श्री विद्यानिवास मिश्र के सम्पादन में सन् 1978 में भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी से दो भागों में प्रकाशित।

7. Kalidasa and His Age, प्रो॰ गोविन्द चन्द्र पाण्डेय के सम्पादन में इलाहाबाद संग्रहालय से सन् 1999 में प्रकाशित, पुनः राका प्रकाशन द्वारा प्रकाशित।

8. शोधपत्र संकलन (1977)।

(11) बाबूराम सक्सेना

ऋषिकल्प जीवन के साक्षात् प्रतिमान प्रो॰ बाबूराम सक्सेना के व्यक्तित्व में विद्याव्यसन, कर्मण्यता और संयम का निष्कलंक समन्वय था। प्राथमिक कक्षाओं से ही सदा प्रथम स्थान पाने वाले प्रो॰ सक्सेना ने तीन विश्वविद्यालयों के कुलपति पद को अलंकृत कर शिक्षा जगत् की उच्चतम उपलब्धियों को हस्तगत किया, साथ ही आत्मश्लाघा और आत्माभिमान से सर्वथा रहित हो कर समाज के समक्ष 'सादा जीवन उच्च विचार' का आदर्श स्थापित किया।

प्रो॰ बाबू राम सक्सेना का जन्म 12 मई बुधवार, सन् 1899 को महेवागंज, जिला-लखीमपुर खीरी में अदावल कुल में हुआ था। उनके पिता बाबू पुत्तुलाल ज्येष्ठ होने से तीन छोटे भाइयों और एक बहिन के विशाल परिवार के कर्ता-धर्ता थे। आयात-निर्यात का व्यवसाय कर वे इस संयुक्त परिवार और अपनी जमींदारी का खर्च संभालते थे।

पाँच वर्ष की आयु में सन् 1903 में बाबूराम सक्सेना की शिक्षा प्राथमिक विद्यालय महेवागंज से प्रारम्भ हुई। हाईस्कूल परीक्षा सन् 1914 में विद्यालय में

सर्वाधिक अंकों से उत्तीर्ण की। उसी वर्ष इण्टर कक्षा की पढ़ाई के लिए उन्होंने इविंग क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद में प्रवेश लिया, इस परीक्षा में भी विद्यालय में प्रथम श्रेणी और वरीयता सूची में चतुर्थ स्थान प्राप्त किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संस्कृत विषय में उस सत्र में उन्होंने सर्वाधिक अंक अर्जित किये। बी० ए० की परीक्षा उन्होंने सन् 1918 में प्रथम श्रेणी में तथा एम० ए० की परीक्षा सन् 1920 में संस्कृत विषय में प्रथम श्रेणी में तथा विश्वविद्यालय में योग्यतासूची में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की। उल्लेख्य है कि उक्त सत्र में एम० ए० परीक्षा में 11 विद्यार्थियों में से केवल तीन विद्यार्थी पास हुए थे और उनमें से एक थे प्रो० बाबू राम सक्सेना।

अक्टूबर सन् 1920 में प्रो० सक्सेना डॉ० गंगा नाथ झा के आमन्त्रण पर शोधकार्य करने के लिये वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी चले गए। यहाँ उन्होंने प्रो० ए० बी० ध्रुव के निर्देशन में सन् 1921 में संस्कृत अलंकारों पर शोध कार्य पूर्ण कर एक वर्ष के अल्प समय में ही पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर ली। जिज्ञासु-प्रवृत्ति प्रो० सक्सेना ने वाराणसी में उस समय के शिखरस्थ संस्कृत विद्वानों पं० गोपीनाथ कविराज, पं० रामावतार शर्मा तथा पं० दामोदर गोस्वामी का शिष्यत्व स्वीकार कर उनसे नियमित अध्ययन कर अपना ज्ञानवर्धन किया। जनवरी सन् 1922 में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के भाषा विज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रो० रॉल्फ टर्नर के निर्देशन में 'अवधी भाषा का उद्‌भव और विकास' विषय पर उच्चस्तरीय शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर राज्य सरकार की ओर से डी० लिट्० की छात्रवृत्ति प्राप्त की। सन् 1931 में प्रो० रॉल्फ टर्नर, प्रो० जूलेस ब्लॉख, प्रो० सर जॉर्ज ए ग्रियर्सन उनके शोध कार्य के परीक्षक हुए तथा मौखिकी परीक्षा में प्राचार्य ए० सी० वुलनर, प्रो० ई० डब्लू स्क्रिप्चर परीक्षक हुए। उनका विवाह 18 जून सन् 1922 को श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा की पुत्री और हिन्दी की सुविख्यात कवयित्री श्री महादेवी वर्मा की छोटी बहन श्रीमती श्यामा देवी से हुआ था। प्रो० सक्सेना को सात सुयोग्य पुत्रियों तथा एक सुलक्षण पुत्र के पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी ज्येष्ठ पुत्री प्रीतिलता अदावल ने विवाह नहीं किया अपितु पी-एच० डी० की उपाधि अर्जित कर दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर नियुक्त हुईं। उनके कुलदीपक श्री नवीन कुमार अदावल इंजीनियरिंग की पढ़ाई समाप्त कर 'राजकीय पॉलिटेक्निक, मुजफ्फर नगर के प्राचार्य पद से कार्यमुक्त हुए। अवशिष्ट सभी पुत्रियों ने भी स्नातकोत्तर अथवा पी-एच० डी० की उपाधि अर्जित कर विद्याप्रेमी पिता की पुत्रियाँ होने का दायित्व निर्वाह किया।

19 अक्टूबर सन् 1922 को उनकी नियुक्ति इलाहाबाद विश्वविद्यालय

के संस्कृत विभाग में प्रवक्ता पद पर हुई। 18 मार्च सन् 1933 को उन्हें रीडर पद पर और 21 जुलाई सन् 1950 को विभागाध्यक्ष के पद पर अग्रसरित किया गया। इसी अन्तराल में वे सन् 1936-1941 तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमन्त्री रहे। सन् 1947 से 1952 तक वे के॰ पी॰ युनिवर्सिटी कॉलेज, इलाहाबाद के अवैतनिक प्राचार्य पद पर नियुक्त रहे। सन् 1952-56 तक 4 वर्ष की अवधि तक वे अधिष्ठाता, कला संकाय तथा अधिष्ठाता छात्र कल्याण भी रहे। 30 सितम्बर सन् 1958 को उन्हें नियमित सेवा-कार्य से मुक्ति मिल गई। सन् 1954-1960 तक उन्होंने रॉकफेलर फाउन्डेशन की परामर्शदातृ समिति के सक्रिय सदस्य के रूप में डेकन कॉलेज पूना में भारतीय भाषाओं पर बृहद् कार्य करके देश में अंग्रेज़ी हटाकर हिन्दी को स्थापित करने की पूरी तैयारी की थी।

प्रो॰ सक्सेना का सौभाग्य था कि उन्हें सन् 1929-30 तक पुनः दो वर्षों तक अपने श्रद्धेय गुरु प्रो॰ रॉल्फ टर्नर से स्कूल ऑव ओरियण्टल स्टडीज़, लन्दन यूनिवर्सिटी में भाषाविज्ञान का अध्ययन करने का अवसर मिला। इस अवधि में उन्होंने प्रो॰ डेनियल जोन्स तथा प्रो॰ ए॰ लॉयड जेम्स से प्रयोगात्मक ध्वनि विज्ञान, प्रो॰ जॉबसन से लिथुएनियन तथा प्रो॰ एच॰ डब्ल्यू बेली से अवेस्ता और सेगाडिन भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। प्रो॰ ई॰ डब्ल्यू॰ स्क्रिप्चर के साहाय्य से इन्स्ट्रूमेण्टल भाषाविज्ञान पर उनका कार्य महत्त्वपूर्ण है। सन् 1959 में फेडरल गवर्नमेण्ट जर्मनी के निमन्त्रण पर वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों के छह सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल के एक सदस्य के रूप में वे पुनः यूरोप गए थे। 1 अक्टूबर सन् 1959 से 1961 तक भाषा विज्ञान इण्डोआर्यन स्टडीज़ विभाग, सागर विश्वविद्यालय के अध्यक्ष पद पर रह कर उन्होंने दो विभागों की स्थापना की। 15 नवम्बर 1961 को सागर से कार्यमुक्त होकर शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार के आह्वान पर हिन्दी तथा अन्य वैज्ञानिक और भारतीय भाषाओं में तकनीकी शब्दावली आयोग के वाइस चेयरमैन मनोनीत हुए। 1 जून 1964 को रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर, मध्य प्रदेश के वे प्रथम कुलपति नियुक्त हुए। नियुक्ति का तीन वर्षीय कार्यकाल पूरा करने के पश्चात् पुनः दिल्ली लौटकर वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली का कार्य सम्पादित कर मई सन् 1970 में अपने नगर इलाहाबाद लौट आए।

सुयोग्य व्यक्ति की आवश्यकता तो सर्वत्र होती है। इलाहाबाद नगर भी उनकी प्रतीक्षा में आँखे बिछाए था। सन् 1972 में उन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। एक सुदीर्घ अवधि 5 वर्ष तक इस पद पर रहते हुए वे प्रो॰ गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,

इलाहाबाद की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष भी रहे। नवम्बर सन् 1977 में भागलपुर विश्वविद्यालय में उन्हें विजिटिंग प्रोफेसर बनाया गया। वे जिस संस्था से सम्बद्ध होते, स्वयं परिश्रम से कार्य करते, कार्यकारिणी सदस्यों का उत्साहवर्धन कर उनसे भी संस्था की उन्नति के लिए कार्य करा लेते।

प्रो॰ सक्सेना ने स्वदेश तथा विदेशों में भाषा विज्ञान, देवनागरी लिपि, हिन्दी-संस्कृत साहित्य आदि से सम्बद्ध अनेक संस्थाओं की नींव डाली। अनेक संस्थाओं के सदस्य, मंत्री तथा अध्यक्ष रह कर पूर्ण मनोयोग से हस्तगत दायित्वों को पूरा किया। अनेक संस्थाओं, विश्वविद्यालयों आदि में दार्शनिक तथा साहित्यिक विषयों पर व्याख्यान दिए। अनेक शोधपत्र हिन्दी तथा अंग्रेज़ी भाषा में लिखकर अनेक गोष्ठियों में प्रस्तुत किये। उन्होंने—

1. इवोल्यूशन ऑव अवधी
2. सामान्य भाषाविज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन से अब तक दस संस्करण प्रकाशित
3. अर्थविज्ञान
4. दक्खिनी हिन्दी
5. संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका
6. कीर्तिलता (विद्यापति)

आदि सूचीगत अमूल्य पुस्तकें साहित्य संसार को अपने उच्चकोटि के लेखन द्वारा प्रदान कीं।

प्रो॰ सक्सेना ने देशजभाषा-लखीमपुरी पर जो शोधकार्य किया था, सन् 1922 में ही उसे एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल ने प्रकाशित किया था। उनके इस कार्य को यूरोपीय विद्वानों में प्रशंसा मिली थी, विशेष रूप से इण्डो—आर्यन भाषा विज्ञान के महारथी प्रो॰ जूलेस ब्लॉख सदृश विद्वान् के द्वारा। मध्यप्रदेश में बस्तर राज्य को सम्मिलित किया जाए अथवा नहीं—बरतर की भाषा के आधार पर यह निर्णय करने का दायित्व प्रो॰ बाबूराम सक्सेना को ही सौंपा गया था। उन्होंने वहाँ की बोली का अध्ययन करके उसे छत्तीसगढ़ी का रूपान्तर मात्र होने का निर्णय दिया, फलस्वरूप बस्तर मध्य प्रदेश का अंग बना।

प्रो॰ सक्सेना ने कर्मठतापूर्वक जीवन के एक-एक क्षण का सदुपयोग शिक्षा के उन्नयन के लिए किया, किन्तु राजनीति से दूर रहकर। वे नवागन्तुक शिक्षकों से कहते—तुम लोग अध्ययन-अध्यापन करो, राजनीति वरिष्ठ अध्यापकों के लिए छोड़ दो। वे विश्वविद्यालय को मात्र परीक्षा संस्था नहीं, शिक्षण संस्था बनाने के अनुसार कार्य करते। वे स्वयं घड़ी के अनुसार समय से कक्षा में आते,

गरिमामय किन्तु रुचिपूर्ण शैली में अध्यापन करते और अपने अधीनस्थों को भी ऐसा ही करने का परामर्श देते। वे स्वयं गुरुमर्यादा का ध्यान रखते, छात्रों के वैचारिक स्तर के उन्नयन को कटिबद्ध रहते, प्रतिभाशाली छात्रों के लिये छात्रवृत्तियों का प्रबन्ध करने को प्रयत्नशील रहते। वे अध्यापकों की अध्ययन-अध्यापन की उत्कृष्टता और वरीयता पर जोर देते। वे कहते—बेईमान अध्यापक को गोली मार देना चाहिए। यही नहीं, ईमानदार व्यक्ति का सम्मान करते, चाहे वह छात्र हो या अध्यापक। यदि कहीं चूक होती तो अध्येता को यथाकथञ्चित् सन्तुष्ट कर भ्रमित नहीं करते, कहते—कल देख कर बताऊँगा। शिष्य स्वीकार करने से पहले उसकी योग्यता—रुचि—मनोयोग सबकी परीक्षा लेते, एक बार उस सुपात्र का शिष्यत्व स्वीकार कर लेने पर दत्तचित्त हो उसके साथ बिना थके कार्य करते। यदि वह शोधच्छात्र होता तो उसका लिखा एक-एक अक्षर देखते। छात्र यदि योग्य होता तो जातिवाद, क्षेत्रवाद से ऊपर उठ कर नियुक्ति में भी उसकी भरसक सहायता करते।

वे उदारमना, निष्कपट, सत्यवादी थे पर कटु स्वभाव नहीं। वे अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप सब पर छोड़ते और हर एक को अपना स्नेहभाजन बना लेते परन्तु उनके स्नेहिल मृदु स्वभाव का लाभ उठा कर कोई उनसे अनुचित लाभ नहीं उठा पाता। उस समय वे नितान्त दृढ़, संयमी और अनुशासनप्रिय स्वभाव का परिचय देते। पंडित रविशंकर विश्वविद्यालय के कुलपति पद से उन्होंने स्वाभिमानपूर्वक त्यागपत्र दिया था क्योंकि मध्य प्रदेश सरकार के युवा शिक्षामन्त्री अपने नगर के एक (दुर्व्यवस्थाओं के शिकार) लॉ कालेज को मान्यता देने के लिए उन पर दबाव बना रहे थे। उन्होंने जिस संस्था को छुआ, स्वच्छ प्रशासन का वातावरण बनाया। संस्कृत नाटकों का मंचन कर वे संस्कृत नाट्य परम्परा का भी पोषण करने को कटिबद्ध रहते।

उनके इस व्यक्तित्व निर्माण में महर्षि दयानन्द की जीवन छाप और आर्यसमाज के सिद्धान्तों का बड़ा योगदान था। आर्यसमाज के संस्कार उन्हें बाल्यकाल से मिले थें, जिनका निर्वाह आजीवन उन्होंने पूर्ण आस्था के साथ किया। वे सायं-प्रातः-दोनों सन्ध्याकालों में नियमित हवन करते और ऋषि दयानन्द के निर्मल चरित्र को व्यावहारिक जीवन में भी चरितार्थ करते।

प्रो॰ सक्सेना के व्यक्तित्व पर दूसरी गहरी छाप थी अपने श्रद्धेय गुरु प्रो॰ टर्नर की। परिश्रमी, मितभाषी, अनुशासित, निरहङ्कारी और निश्छल। प्रो॰ टर्नर के प्रति उन्हें अपार श्रद्धा थी, नाम लेते ही अभिभूत हो जाते। पं॰ गंगा नाथ झा से भी उन्हें शिक्षा मिली थी, उनका भी वे अत्यधिक सम्मान करते। पं॰ गंगा नाथ झा भी स्वीकार करते कि प्रो॰ बाबूराम सक्सेना के उपाध्यायत्व से मेरी

महामहोपाध्याय उपाधि सार्थक हुई है। प्रसिद्ध विद्वान् प्रो॰ सुनीति कुमार चैटर्जी, अध्यक्ष भाषा विज्ञान, कलकत्ता विश्वविद्यालय भी उन्हें अपने अग्रणी शिष्य के रूप में स्वीकार करते। स्वयं उत्तर भारत के भाषाविज्ञान के विद्यार्थियों को निस्संकोच उनके निर्देशन में शोध कार्य करने भेजते। छात्रगण भी उनके सान्निध्य में बैठ ज्ञानार्जन को उत्सुक रहते।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि भारतीय परम्परा के अनुपालक डॉ॰ बाबूराम सक्सेना का आशीर्वाद मुझे भी सन् 1980 में अध्यापन आरम्भ करते समय प्राप्त हुआ था।

(12) सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी

पण्डित सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी जी का ज़न्म विक्रमीय संवत् 1959 (सन् 1902) के श्रावण मास की शुक्ल द्वितीया मंगलवार को इलाहाबाद जिले के करछना तहसील में बारा परगना के लालापुर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता पण्डित लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी अपने युग में प्रयाग के प्रख्यात कर्मकाण्डी विद्वानों में से थे और संस्कृत के अच्छे पण्डित थे। चतुर्वेदी जी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। नयपुरा के चतुर्वेदी वंश में इनका सांकृत्य गोत्र था। जिस युग में चतुर्वेदी जी पैदा हुए थे और जिस वातावरण में उनका बाल्य जीवन बीता था; वह संस्कृत भाषा से अधिक प्रभावित था और आजकल की भाँति अंग्रेज़ीमय नहीं था। उनके पिता स्वयं संस्कृत के बड़े विद्वान् और कर्मकाण्डी पण्डित थे। अतः अजिन-मेखला-दण्डधारी नितान्त वटु वेश में इनके विद्याध्ययन का श्रीगणेश प्रयाग के सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्यालय धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला, अहियापुर (वर्तमान मालवीय नगर) में हुआ। यहीं से इन्होंने प्रथमा, मध्यमा तथा शास्त्री द्वितीय खण्ड की परीक्षाएँ व्याकरण विषय से उत्तीर्ण कीं; किन्तु शास्त्री तृतीय खण्ड की परीक्षा के समय वाराणसी में परीक्षा केन्द्र के सम्मुख जो आंग्ल शासक द्वारा जनता के दमन का दृश्य इन्होंने देखा, उसके कारण परीक्षा में बैठने से विरत रहे। यह सन् 1921 ई॰ के असहयोग आन्दोलन का समय था। इस वर्ष इन्होंने कोई परीक्षा नहीं दी। सन् 1914 से सन् 1929 तक निरन्तर पन्द्रह वर्षों में वही एक वर्ष ऐसा था, जिसमें इन्होंने कोई परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की। इसके बाद वे बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय में प्रविष्ट हुए; किन्तु वहाँ थोड़े ही समय रह सके, क्योंकि प्रवास में छात्र-जीवन की अनेक असुविधाएँ तो थी हीं, स्वास्थ्य भी अनुकूल नहीं रहता था; फलतः वे वाराणसी से प्रयाग वापस आ गए और यहीं संस्कृत की परीक्षाएँ पुनः देने लगे।

प्रयाग आकर प्रो॰ चतुर्वेदी ने संस्कृत अध्ययन के साथ-साथ यहाँ के

दयानन्द एंग्लो वैदिक हाईस्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ना प्रारम्भ किया। यहीं से उनके छात्र-जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। अपनी अम्लान प्रतिभा और परिश्रमशीलता के बल पर संस्कृत और अंग्रेज़ी दोनों ही क्षेत्रों में उन्हें आशातीत सफलताएँ प्राप्त हुईं। सन् 1923 में जब उनकी अवस्था लगभग 21 वर्ष की थी और वे व्याकरण की शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कर आचार्य परीक्षा के प्रथम वर्ष में बैठ रहे थे, उन्होंने उत्तर प्रदेश की हाई स्कूल परीक्षा में भी प्रवेश प्राप्त किया और प्रयाग मण्डल के सम्पूर्ण परीक्षार्थियों में सर्वप्रथम आए। सन् 1925 ई० में वाराणसी की व्याकरणाचार्य परीक्षा उन्होंने तत्कालीन श्रेणी विभाजन के अनुसार उपाध्यायवर्ग में नहीं, अपितु तारांकित आचार्यवर्ग में सम्मानपूर्वक उत्तीर्ण की। सन् 1926 की काव्यतीर्थ परीक्षा में बंगाली तथा गैर-बंगाली समस्त छात्रों में उनका द्वितीय स्थान रहा। सन् 1929 ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय की एम० ए० (संस्कृत) परीक्षा में वे सर्वप्रथम आए। उनका चित्र तत्कालीन सर्वविश्रुत अंग्रेज़ी दैनिक पत्र पायोनियर में निम्नलिखित प्रशस्ति के साथ प्रकाशित हुआ—

'इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय की एम० ए० (संस्कृत) की प्रीवियस तथा फाइनल (दोनों) परीक्षाओं में प्रथम बार प्रथम श्रेणी प्राप्त की है। प्रयाग विश्वविद्यालय के अद्यावधि इतिहास में किसी भी छात्र ने यह विशिष्टता नहीं प्राप्त की।'

एम० ए० और व्याकरणाचार्य परीक्षाएँ उत्तम श्रेणी में उत्तीर्ण कर प्रो० चतुर्वेदी यथासमय प्रयाग विश्वविद्यालय में ही अथवा उत्तर प्रदेश के अन्यान्य राजकीय शिक्षा सेवाओं में उच्चपद प्राप्त कर सकते थे। किन्तु उनके नितान्त संकोची और अमहत्त्वाकांक्षी स्वभाव के कारण उन्हें उत्तर प्रदेश से बाहर मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग में अध्यापन कार्य सँभालना पड़ा। उनकी नियुक्ति तत्कालीन मध्यप्रदेश के एकमात्र राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मॉरिस कॉलेज, नागपुर में हुई। यह सन् 1929 का वर्ष था। मध्यप्रदेश में प्रो० चतुर्वेदी निरन्तर प्रायः 30 वर्षों तक क्रमशः प्रवक्ता (लेक्चरर) प्रोफेसर और प्रिंसिपल के पद पर समासीन रहे और सन् 1958 ई० में पद-निवृत्त हुए। समूचे मध्यप्रदेश में विशेषतया शिक्षा-विभाग में उनके प्रगाढ़ पाण्डित्य और अध्यापन की बड़ी धाक थी। उनके छात्र और सहयोगी सब के मन में उनके प्रति अपार श्रद्धा और आदर के भाव थे। उनके प्रिय छात्रों में से प्रान्तीय एवं केन्द्रीय प्रशासन में अनेक आई० सी० एस० और आई० ए० एस० में उच्च पदाधिकारी नियुक्त हुए।

सन् 1955 ई० में बनारस संस्कृत कॉलेज (वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय का पूर्व रूप) के प्राचार्य (प्रिंसिपल) पद के लिए प्रो० चतुर्वेदी

चुने गये थे, किन्तु मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री पंडित रविशंकर शुक्ल के अनुरोध पर, उन्हीं की प्रेरणा से नव-संस्थापित राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर–जो छत्तीसगढ़ के समृद्धतम दूधाधारी मठ के दान से प्रारम्भ किया गया था–का प्रथम प्राचार्य पद प्रो० चतुर्वेदी ने स्वीकार किया। तीन वर्ष तक वहाँ रहकर आपने अपने ढंग से एक अपूर्व संस्कृत संस्थान का संचालन किया; जो आज भी पाठ्यक्रम, छात्रवृत्ति, प्राध्यापक वेतन, प्रतिष्ठापद, विशाल भवन, ग्रन्थागार आदि की दृष्टि से स्पृहणीय और आदर्श है। इसी प्रकार नागपुर और सागर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग और ओरिएंटल फैकल्टी के अध्यक्ष तथा मध्यप्रदेश में राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के संस्थापक प्राचार्य के रूप में संस्कृत के उन्नयन में प्रो० चतुर्वेदी ने विशिष्ट कार्य किया।

मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग से पद-निवृत्त होने के अनन्तर प्रो० चतुर्वेदी कुछ दिनों के लिए भी कार्यविरत नहीं रह सके। अखिल भारतीय संस्कृतज्ञों की छानबीन करके केन्द्रीय शासन आयोग ने प्रो० चतुर्वेदी को केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय में संस्कृत का विशेषाधिकारी नियुक्त किया, जहाँ वह सन् 1959-60 में रहे। अपने कार्यकाल में प्रो० चतुर्वेदी ने केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की संस्कृत शाखा द्वारा जो उत्तमोत्तम कार्य और योजनाएँ आरम्भ कराईं, उनके कारण शासन को बहुत सुयश मिला और वह आज भी इन्हीं परम्पराओं पर चल रहा है।

प्रयाग प्रो० चतुर्वेदी की जन्मभूमि ही नहीं, उनकी पितृभूमि थी। कदाचित् मध्यप्रदेश शासन के शिक्षा-विभाग के सेवा-काल में उन्होंने यह सोचा था कि उन्हें अब प्रयाग नहीं लौटना है, क्योंकि उन्होंने नागपुर में अपना सुन्दर भवन 'सारस्वत' बनवा लिया था, किन्तु विधि का विधान कौन टाल सकता है। सन् 1960 ई० में ही वह प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर सादर समाहूत कर अभिषिक्त किए गए। यह था उनके महनीय तप, साधना तथा सौभाग्य का सुफल, जो यथासमय अनायास ही उन्हें मिला।

प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर प्रो० चतुर्वेदी छः वर्ष तक रहे (1961-1966 तक)। इस अवधि में उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। कई दर्जन शोध-निबन्धों का निर्देशन किया, अनेक भाषणमालाएँ आयोजित कीं, अनेकानेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का श्रीगणेश कराया और अपने सैकड़ों छात्रों तथा सहयोगियों का अपूर्व सहकार, सौमनस्य एवं समादर प्राप्त किया। प्रो० चतुर्वेदी देश के अनेक विश्वविद्यालयों की संस्कृत शिक्षा समिति के सम्मानित सदस्य थे। शोधप्रबन्ध-परीक्षण, प्राध्यापक-नियुक्ति, पाठ्यक्रम-निर्माण प्रभृति की समितियों में आपका महत्त्वपूर्ण सहयोग रहता था।

सन् 1966 ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष पद से

ससम्मान पदनिवृत्त होने के अनन्तर प्रो॰ चतुर्वेदी केन्द्रीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मानदेय सहित प्राध्यापक पद पर बुलाये गए। इस पद पर वह पाँच वर्षों तक (सन् 71) रहे। सक्रिय सेवा से पदमुक्त होकर अपने नवक्रीत 'सारस्वत भवन', 25 स्टैनली रोड, इलाहाबाद में बड़ी शान्ति और सुख का यशस्वी जीवन यापन करते रहे। 71 वर्ष की आयु में भी वह युवकोचित स्फूर्ति और गतिशीलता से युक्त थे। वह प्रयाग के सांस्कृतिक जीवन में इतने घुल-मिल गए थे कि कोई भी साहित्यिक सभा हो या समारोह, उनकी महनीय उपस्थिति से वह धन्य हो जाता था।

सुन्दर शरीर एवं स्वास्थ्य, उत्तम यश, उत्तम कुल, उत्तम चरित्र, पारंगत वैदुष्य तथा ऐहिक सुख-साधनों से समन्वित प्रो॰ चतुर्वेदी स्वल्प परिवार और अपने स्वल्प सन्तोषी स्वभाव के कारण परम सुखी थे। उनके एकमात्र अनुज, एकमात्र पुत्र तथा एकमात्र पुत्री हैं। अनुज पद्मानन्द चतुर्वेदी एम॰ ए॰ साहित्याचार्य थे, जो सेवानिवृत्त होकर साथ रहते थे, पुत्र स्वतन्त्र व्यवसाय और गृहस्थी का संचालन करते थे, पुत्री देश के प्रख्यात अधिवक्ता पं॰ कन्हैयालाल मिश्र की ज्येष्ठ वधू थीं, जिनके पति हाईकोर्ट के सुप्रसिद्ध एडवोकेट थे। इस प्रकार वह धर्मपत्नी, पुत्र-पुत्रवधू, पुत्री-जामाता, पौत्र-पौत्री, दौहित्र-दौहित्री से घिरे एवं आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र एक आप्तकाम पुरुष थे।

पण्डित सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी चतुरस्र प्रतिभा, वैदुष्यपूर्ण वाग्मिता, निश्छल सहृदयता, शालीनता और सुजनता के धनी थे। उनके सौम्य मनोरम व्यक्तित्व में किसी के प्रति विरोध या वैमत्य का सामान्यतया कोई स्थान नहीं था। गेहुएँ रंग के, नातिस्थूल, नातिदीर्घ, श्रेष्ठि-जनोचित, मंझोले कद के उनके सुदर्शन स्वस्थ शरीर तथा कभी भारतीय और कभी पाश्चात्त्य परम्परा के मिश्रित परिधान को देख कर सहसा यह भान नहीं होता था कि वे विलक्षण प्रतिभा और निर्मल प्रज्ञा के महान् व्यक्ति थे। किन्तु साधारण बातचीत के अनन्तर ज्यों ही उनकी अगाध विद्या और तथ्यवती चिन्तनधारा का सहज प्रवाह प्रस्फुटित होता था, तो किसी का भी भाव-विभोर होकर निमज्जित हो जाना सुकर था। वे न केवल भारतीय और पाश्चात्त्य दर्शन, व्याकरण, वैदिक एवं संस्कृत-साहित्य के उद्भट विद्वान् थे, अपितु अंग्रेज़ी तथा हिन्दी-साहित्य एवं अन्यान्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी उनकी गहरी पैठ थी। निरन्तर स्वाध्याय और चिन्तन उनका व्यसन था, वाग्देवी की वन्दना और आराधना उनका व्रत था तथा यथा नाम तथा गुण की लोकोक्ति को चरितार्थ करने वाले वे विरल महानुभाव थे। संयम उनकी वाणी और लेखनी का शृंगार था। अपने सहज-प्रसन्न स्वभाव के कारण वे गूढ़ातिगूढ़ विषय को भी अपनी प्रसादगुण-मिश्रित शैली में जब

प्रतिपादित करने लगते थे, तो उनका वैदुष्य देखते और सुनते ही बनता था। सभाओं में वे वक्ताओं और श्रोताओं को अभिभूत कर देते थे और अपनी महनीय उपस्थिति से साधारण गोष्ठी को भी महिमामयी बना देते थे। निरभिमानिता की वे मूर्ति थे। उनकी ईषत्स्मित संभाषण शैली और तर्क पद्धति बहुत ही आकर्षक होती थी, सर्वथा विरोधी विचारधारा वाले व्यक्ति को भी वे सहज प्रभावित करते थे। उनमें अगाध पांडित्य और अध्ययनशीलता के साथ सहृदयता और कर्तव्यपरायणता का अद्भुत मेल था। जो भी काम वे हाथ में लेते थे, उसका निर्वहण भलीभाँति करते थे। विद्याव्यसनियों के वे सहज अनुरागी थे। विद्या के क्षेत्र में प्रमाद और आलस्य से उनका विरोध था। अहर्निश अध्ययन, अनुशीलन और चिन्तन के प्रति जागरूक रहकर उन्होंने अपना यशस्वी अध्यापक जीवन जिस ढंग से जिया था, वैसा बहुत कम लोग जी पाते हैं। अपने अन्तेवासियों के प्रति नितान्त निष्कपट अनुराग के कारण उनकी कीर्तिलता का विस्तार समूचे भारत में था। अपनी जन्मभूमि से सैंकड़ों कोस दूर रह कर जिस कर्तव्यपरायणता और निष्ठा से उन्होंने विद्या के क्षेत्र में महान् कार्य किये थे, वे उन्हीं के लिए सम्भव थे।

(13) उमेश मिश्र

देवगुरु बृहस्पति सदृश, 'आत्मा वै जायते पुत्रः' की उक्ति को सार्थक करते हुए विद्वद्गोष्ठी में विख्यात महामहोपाध्याय पंडित जयदेव मिश्र के नेपाल राज्य में (जनकपुर धाम के निकट) बिनही नामक ग्राम स्थित पैतृक आवास में सन् 1902 में पुत्र उमेश मिश्र का जन्म हुआ। सात वर्ष की अल्पायु में उमेश मिश्र ने माँ सूगा देवी को खो दिया। पत्नी की मृत्यु से आहत पिता ने पैतृक ग्राम छोड़कर वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। वाराणसी में उमेश मिश्र की विधिवत् शिक्षा आरम्भ हुई। सन् 1914 में उमेश मिश्र ने बंगाली टोला हाईस्कूल से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर शिरोमणि स्वर्णपदक जीता। सन् 1916 में बनारस संस्कृत कॉलेज से मध्यमा परीक्षा, सन् 1918 में सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज, वाराणसी से इण्टरमीडिएट परीक्षा पास की। इसी वर्ष उनका विवाह कुमुदिनी देवी से हुआ। सन् 1920 में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से बी० ए० और सन् 1922 में भारतीय दर्शन में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1923 में संस्कृत सभा, कलकत्ता से काव्यतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण कर संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर नियुक्त हुए। सन् 1926 में पिताश्री दिवंगत हुए।

सन् 1923 में डॉ० ब्रजेन्द्रनाथ सील, डॉ० ए० बी० कीथ, डॉ० ए० बी०

ध्रुव, डॉ॰ गोपीनाथ कविराज तथा महामहोपाध्याय सर गंगानाथ झा सदृश श्रेष्ठ शोधपरीक्षकों के परीक्षकत्व में शोध परीक्षा उत्तीर्ण कर 'डॉक्टरेट ऑफ लिटरेचर' की उपाधि प्राप्त की। सन् 1934 में पैतृक ग्राम गजहरा में तथा सन् 1939 में इलाहाबाद में भी एक गृह का निर्माण करवाया। शिक्षक की भूमिका का सार्थक निर्वाह करते हुए वे निरन्तर लेखन और प्रकाशन के कार्य में संलग्न रहे। उनकी अध्ययन-अध्यापन के प्रति समर्पण भावना को लक्ष्य कर भारत सरकार ने 1 जनवरी सन् 1943 को उन्हें महामहोपाध्याय की पदवी से विभूषित किया। इसी वर्ष अनेक मार्गों से उनकी प्रगति के अवसर उपस्थित हुए। उन्होंने संस्कृत अध्ययन पुनरीक्षण समिति, बिहार के सदस्य; ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेंस, वाराणसी में धर्म-दर्शन विभाग के अध्यक्ष; गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के सचिव और मैथिली शैली निर्धारण समिति, मुजफ्फरपुर संस्था के सचिव पद को अंलकृत किया। इन संस्थाओं द्वारा आयोजित सभाओं और संगोष्ठियों में अध्यक्षता की। सन् 1946 में पुनः ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स, नागपुर के धर्म-दर्शन विभाग की अध्यक्षता करने का अवसर मिला। सन् 1948 में स्वयं ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेस के स्थानीय सचिव के पद से दरभंगा में चौदहवीं संगोष्ठी का आयोजन किया। अगले वर्ष सन् 1949 में मिथिला शोध संस्थान, दरभंगा के रजिस्ट्रार और प्रोफेसर तथा बाद में निर्देशक पद पर अधिष्ठित हुए। मिथिला में तीन वर्षीय कार्यकाल समाप्त कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पुनः लौट आए। यहीं निरन्तर शिक्षण कार्य करते हुए वे जून सन् 1959 में अवकाश प्राप्त कर सेवानिवृत्त हुए।

26 जनवरी सन् 1961 को प्रो॰ उमेश मिश्र को सर कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय दरभंगा के कुलपति पद पर अधिष्ठित किया गया। तीन वर्ष का कार्यकाल सफ़लतापूर्वक निर्वाह कर सन् 1964 के फरवरी मास में कुलपति पद से वे मुक्त हुए। कार्यमुक्त हो कर उन्होंने अपने पैतृक गाँव में जल का एक विशाल सरोवर खुदवाया तथा दिवंगत माता-पिता की स्मृति में ग्राम में ही एक शिव मन्दिर का निर्माण कराया। सितम्बर, सन् 1966 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, उत्तर प्रदेश ने प्रो॰ उमेश मिश्र को 'साहित्य वारिधि' की उपाधि से सम्मानित किया।

प्रो॰ उमेश मिश्र बाल्यकाल से ही मेधावी छात्र थे अतः प्रत्येक कक्षा में छात्रवृत्ति प्राप्त कर उत्तम अंकों से उत्तीर्ण होते रहे। सर गंगा नाथ झा और पंडित गोपीनाथ कविराज सदृश गुरुजनों के सान्निध्य में प्रो॰ उमेश मिश्र की प्रतिभा द्विगुणित हुई। उन की बृहस्पति सदृश मेधा ने उन्हें भारतीय दर्शन, काव्य, साहित्य, ज्योतिष, धर्म, मीमांसा, वेदान्त, व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् के रूप

में ख्याति दिलाई। प्रयाग नगरी उनकी कर्मस्थली अवश्य रही किन्तु अगाध वैदुष्य ने उन्हें राष्ट्र स्तर पर प्रतिष्ठित किया। नगर, प्रदेश और राष्ट्र की अनेक संस्कृत-संस्कृति, काव्य, साहित्य, ज्योतिष्, धर्म मीमांसा, वेदान्त सम्बद्ध संस्थाओं ने उन्हें मानद सदस्य और अध्यक्ष मनोनीत कर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया। यही नहीं, उन्होंने पाश्चात्त्य दर्शन का भी सम्यक् परिशीलन किया था।

प्रो॰ उमेश मिश्र मैथिल भूमि के पुत्र थे। मैथिल भाषा उन्होंने पारिवारिक परिवेश में स्वाभाविक रूप से ग्रहण की थी। मातृभाषा मैथिल का ऋण उतारने के लिए उन्होंने उसके प्रचार-प्रसार हेतु आजीवन संघर्ष किया। अनेक मैथिल संस्थाओं से सम्बद्ध रह कर तथा मैथिल भाषा और कोकिलकण्ठी कवि विद्यापति आदि को विषय बना कर अनेक ग्रन्थ लिखे। उनकी मैथिल भाषा में रची कविताएँ भी इस दिशा में किया गया एक सार्थक प्रयास थीं। हिन्दी-संस्कृत ही नहीं, अंग्रेज़ी भाषा भी उन्हें सहज रूप से ग्राह्य हुई थी, अंग्रेज़ी में धाराप्रवाह उनके व्याख्यान श्रोताओं को आश्चर्यचकित करते थे। उनकी पठनप्रियता और अध्यापन शैली से प्रभावित हो कर अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से विभूषित किया था।

प्रो॰ उमेश मिश्र की दिनचर्या नियमित थी। वे प्रातः काल उठ कर पूजा-पाठ करते। अनन्तर निर्धन हो या धनिक, सभी छात्रों की अध्ययन सम्बन्धी कठिनाइयों का निवारण करते। आडम्बर न था, सादी वेशभूषा और सिर पर बिहारी पगड़ी उनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करती। भोजन के लिए प्रायः दूध-फल पर ही निर्भर रहते, और जल के लिए केवल कुएँ पर निर्भर रहते, आजीवन उन्होंने नल का पानी पीने के लिए प्रयोग नहीं किया। आठ प्रहरों में अधिकांश समय अध्ययन में बिताते, केवल एक प्रहर सोते, दिन में विश्राम तो तभी करते जब अस्वस्थ होते, अन्यथा स्वयं पढ़ते अथवा शिष्यों को पढ़ाते।

प्रो॰ उमेश मिश्र का प्रयाग के प्रति प्रेम विशिष्ट और असीम था। वे दरभंगा विश्वविद्यालय में कुलपति पद पर अधिष्ठित हुए लेकिन प्रयाग की संस्कृत संस्थाओं के प्रति सदैव चिन्तनशील रहे। दरभंगा के प्रवास काल में भी प्रयागस्थ संस्थाओं को उनका दिशा-निर्देश निरन्तर प्राप्त होता रहता। गंगा नाथ झा संस्कृत संस्थान के अवैतनिक निदेशक पद पर रह कर उन्होंने स्तरीय लेखन की दृष्टि से जर्नल प्रारम्भ किया, संगोष्ठियाँ आयोजित कीं, पाण्डुलिपि विभाग की स्थापना की, देश के विभिन्न भागों से विद्वानों को व्याख्यान के लिए आमन्त्रित किया। इस प्रकार गंगा नाथा झा संस्कृत संस्थान की प्रसिद्धि देश-विदेश में फैली।

गंगा नाथ ज़ा शोध संस्थान ने सन् 1968 में मरणोपरान्त जर्नल संस्करण

'उमेश मिश्र कॉमेमोरेशन वाल्यूम' के रूप में निकाला, इस वॉल्यूम में देश के प्रतिष्ठित विद्वानों के उच्चस्तरीय लेख समाविष्ट हैं।

प्रो॰ उमेश मिश्र को दुर्लभ ग्रन्थ 'महाकालसंहिता' की प्रति नेपाल से प्राप्त हुई थी, उसका सम्पादन और प्रकाशन मिश्र जी के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी, यह पुस्तक मुद्रित हो कर उनके जीवन काल में न आ सकी। जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने आगम ग्रन्थों में परिश्रम प्रारम्भ किया था परन्तु अब तक परिश्रम करते हुए शरीर पर्याप्त थक चुका था। 16 मई 1967 को अपने घर में 'अष्टादश पुराण परायण यज्ञ' करते हुए उनको पैरालिसिस का आघात लगा। थोड़ा स्वस्थ होते ही वे 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसोफी' ग्रन्थ को पूर्ण करने में जुट गए। 8 सितम्बर 1967 को सायंकाल तक उन्होंने इस ग्रन्थ को अन्तिम रूप देकर पूर्ण कर दिया। मध्यरात्रि में उन्होंने अन्तिम सांस ली।

प्रो॰ उमेश मिश्र की अध्ययन के प्रति प्रगाढ रुचि थी, लेखन में भी वे दत्तचित्त रहते। अपने जीवनकाल में प्रो॰ मिश्र ने लगभग 53 शोधपत्र अंग्रेज़ी, हिन्दी, संस्कृत व मैथिल भाषा में विद्वत्तापूर्ण विषयों पर लिखे। साहित्यजगत् को उन्होंने अनेक स्तरीय ग्रन्थ प्रदान किए, ये समस्त ग्रन्थ उनकी प्रतिभा और क्षमता के प्रमाण हैं। जिनकी सूची निम्न है—

संकलित पुस्तकें—

In English—

1. Catalogue of Sanskrit Manuscripts. in the Ganganath Jha Research Institute, Allahababd, Vol. I, Parts 1 and 2 (Published by the Ganganath Jha Research Institute, Allahabad.

संस्कृत—

2. वेदान्तकोष (स्नातकोत्तर शोध संस्थान, डेकन कॉलेज, पुणे, हस्तलिखित प्रति)

सम्पादित पुस्तकें—

In English—

1. Nyayakaustubha by Mahadeva. (Princess of Wales Sarasvati Bhavan Text Series, Benaras, 1930).

2. Mimansashastrasarvasva by Halayudha (Bihar and Orissa Research Society, Patna 1934).

3. Ekadashadhyayadhikarana by Murari Misra. (Bhandarkar

Oriental Research Institute, Poona).

4. Medhatithi-Bhashya on Manusamhita Vol. II (Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1939).

5. Vijnanadipika along with its Vivrtti by Padmapadacharya. (Allahabad University Sanskrit Series, Vol. 1, 1940).

6. Vidyakara-Sahasrarkam, (An Anthology of Sanskrit Verses) by Vidyakara Misra. (Allahabad University Sanskrit Series, Vol. II, 1942).

7. Paribhashendushekhara with Vijaya of Nagesha Bhatta, 1941. Three editions.

8. Vyutpattivada with Jaya by Gadadhara Bhattacarya, 1940. Two Editions.

9. Shastrartharatnavali by Mahamahopadhyaya Jayadeva Misra, 1940. Three editions.

10. Tantra-ratna, Part I, by Parthasarathinatha Misra, (Sarasvatibhavana Text Series, Benares, 1930). Edited jointly with Mahamahopadhyayaya Dr. Ganganatha Jha.

11. Bhedaratna by Sankara (Ibid).

12. Nyaya-sutra of Gautama with Vatsyayana's Bhashya (Poona Oriental Series 58, 1939). Edited, jointly with Mahamahopadhyaya Dr. Ganganatha Jha.

13. Nibandhasarasangraha (XIV Oriental Conference, Darbhanga Session, Poona).

मौलिक ग्रन्थ—

In English

1. History of Indian Philosophy Vol. I (1957) (out of print); Vol. II (1966); Vol. III (in Manuscript). (Published by Tirabhukti Publications, Sir P.C. Banerji Road, Allahabad).

2. Conception of Matter according to Nyaya-Vaisheshika (1936) (Published by ibid).

3. Mimansakusumanjali or Critical Bibliography of Mimansa (Joint author with Mahamahopadhyaya Dr. Ganganatha Jha) (Published by Banaras Hindu University).

4. A Critical Study of the Bhagavat-Gita, 2nd Edn. (1966) (Published by Tirabhukti Publications, 1 Sir P.C. Banerji Road, Allahabad 2).

5. Index to the English Translation of Shabara Bhashya by Mahamahopadhyaya Dr. Ganganatha Jha, Gaikwad's Oriental Series, Baroda, No. CIII.

हिन्दी भाषा—

6. सांख्ययोग दर्शन, 1958 (तिरभुक्ति प्रकाशन, 1 सर पी० सी० बनर्जी मार्ग, इलाहाबाद, 2)

7. भारतीय तर्कशास्त्र की रूपरेखा, 1950 (राम नारायण लाल प्रकाशक, इलाहाबाद)

8. भारतीय दर्शन, 1960 (हिन्दी समिति प्रकाशन, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ)

9. विद्यापति ठाकुर, चतुर्थ संस्करण (हिन्दुस्तानी अकादमी, मोतीलाल नेहरू पार्क, इलाहाबाद, 2)

मैथिल भाषा—

10. मैथिल संस्कृति और सभ्यता (दो भाग) 1961 (वैदेही समिति प्रकाशन, लालबाग, दरभंगा)

11. कमला (उपन्यासिका) मिहिर प्रकाशन

12. नलोपाख्यान, पञ्चोपाख्यान (महाभारत से उद्धृत)

13. सांख्यकारिकाभाष्य (हस्तलिखित प्रति, मिथिलामोद तथा बटुक प्रकाशन) 1965

14. Tattvachintamani of Gangesha Upadhyaya with Aloka and Darpana (Mithila Research Institute, Darbhanga), 1957.

15. Sanskrit Documents in the National Archives of India. (Jointly edited with Dr. S. N. Sen). (Published by the Ganganatha Jha Research Institute, Allahabad 2).

16. Chandogya Upanishad : Translation of Dr. Ganganatha Jha. (Poona Oriental Series No. 78, 1942).

17. Vachaspati Misra's Vivadachintamani. Translated by Dr. Ganganatha Jha. (Gaekward Oriental Sanskrit Series, Baroda, No. 99, 1942).

18. Smrtisarasangraha by Harinathopadhyaya. A Dharamashastra work (For the Gaekwad Sanskrit Series). (In Manuscript)

19. Atmabodha of Govindabhagavatpadacharya. (In manuscript)

20. Nyaya-Ratnakara by Mahamahopadhyaya Chandra.

21. Proceedings of the XIV Oriental Conference, Vol. I, 1948.

21-44. Journal of the Ganganatha Jha Research Institute. (Vols. I to Vol. 23).

मैथिली भाषा—

45. कृष्णजन्म मनबोध (18वीं शताब्दी) प्रथम संस्करण-पुस्तक भण्डार, लहरसराय; द्वितीय संस्करण, तिरभुक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद

46. मैथिली गद्यकुसुमाञ्जलि (अखिल भारतीय मैथिली साहित्य परिषद्, दरभंगा)

47. मैथिली कुसुममाला

48. कीर्तिलता-विद्यापति (आधुनिक मैथिली में अनूदित) अखिल भारतीय मैथिल साहित्य समिति, इलाहाबाद

49. कीर्तिपताका-विद्यापति (सहलेखक—डॉ० जयकान्त मिश्र)

50. साहित्यदर्पण (मैथिली अनुवाद) हस्तलिखित प्रति।

(14) स्वामी सत्यप्रकाशानन्द सरस्वती

संस्कृतिरूपी गंगा और विज्ञानरूपी यमुना का एकत्र संगम यदि किसी एक विभूति में समाहित था तो उस महान् विश्व विभूति का नाम था—स्वामी सत्यप्रकाशानन्द सरस्वती।

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती को यदि इस शताब्दी का महान वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं विद्वान् कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के रसायनशास्त्रवेत्ता होने के साथ-साथ वेद-ब्राह्मण-उपनिषद्-दर्शन ग्रन्थों में पारङ्गत, उच्च कोटि के भाषाविद् एवं वक्ता, महान् दार्शनिक, चिन्तक, विचारक, बहुसर्जक, लेखक, स्वाधीनता सेनानी, विलक्षण प्रतिभा के धनी, महामानव, आदर्श संन्यासी, अनेक स्तरीय संस्थाओं के संस्थापक तथा सबसे ऊपर महर्षि दयानन्द के प्रति दृढ़ आस्थावान्, जिन्होंने न तो कभी सिद्धान्तों से समझौता किया, न किसी पद की आकांक्षा की, ऐसे अलौकिक पुरुष थे स्वामी सत्यप्रकाशानन्द सरस्वती।

समाज में एक ऐसा वर्ग है जो मस्तिष्क, बाहुबल, उद्योग एवं सेवावृत्ति

के समन्वित रूप में कर्तव्य पालन में व्याप्त है, केवल मुख, हाथ, उरु या चरण बन कर नहीं अपितु समूचे समाज की काया में स्थित होकर, वह वर्णहीन वर्ग कायस्थ है। स्वामी सत्यप्रकाश का जन्म उसी कायस्थ (कुलश्रेष्ठ) कुल में 24 अगस्त, 1905 को पश्चिम उत्तर प्रदेश में बिजनौर नगर के आर्यसमाज मन्दिर में हुआ था। स्वामी जी के पूज्य पिता स्वर्गीय श्री गंगा प्रसाद उपाध्याय बिजनौर के राजकीय स्कूल में अध्यापक थे और माता श्रीमती कलावती देवी एक सुशिक्षिता गृहिणी। सत्यप्रकाश अपने पाँच भाई बहनों में पिता की ज्येष्ठ सन्तान थे। वर्ष 1923 में म्योर सेन्ट्रल कॉलेज, इलाहाबाद से इण्टरमीडिएट तथा सन् 1927 में 22 वर्ष की आयु में रसायन शास्त्र में एम॰ एस-सी॰ किया। अनन्तर डी॰ फिल्॰ की उपाधि प्राप्त कर विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र विभाग में पहले डिमॉन्स्ट्रेटर तथा पुनः अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। डी॰ एस-सी॰ की उपाधि डॉ॰ सत्यप्रकाश ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही सन् 1932 में प्राप्त की।

स्वामी जी को संस्कृत ज्ञान अपने पिता से विरासत में मिला था। वेद एवं वैदिक साहित्य के ज्ञान के प्रति उनकी लगन गहरी थी और उसके वे अच्छे ज्ञाता भी थे। किन्तु वे उन मनुष्यों में से नहीं थे जो ज्ञान की सीमा निर्धारित कर उससे सन्तुष्ट रहें, वे तो संस्कृत के अधिकाधिक ज्ञान के लिए सदा उत्सुक रहते थे। वैदिक साहित्य पर अनेक ग्रन्थ लिखने के साथ-साथ उन्होंने चारों वेदों का अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद भी किया। यह एक श्रमसाध्य कार्य था, किन्तु उनका संस्कृत भाषा के प्रति प्रेम तथा वैदिक धर्म के प्रति आस्था ही इस कठिन कार्य में प्रेरणा बनी।

स्वामी सत्यप्रकाश का विवाह सुलक्षणा कन्या डॉ॰ रत्नकुमारी जी के साथ हुआ। वे आर्य कन्या इण्टर कॉलेज, इलाहाबाद में अध्यापिका और बाद में प्रधानाचार्या थीं। नगर में उनकी ख्याति विदुषी, लेखिका, कवयित्री और शिक्षाविद् के रूप में थी। वे सही अर्थों में उनकी जीवनसंगिनी तथा भारतीय महिला थीं। डॉ॰ रत्नकुमारी जी का देहान्त कानपुर में अचानक दिल का दौरा पड़ने से हो गया था, उनके अप्रत्याशित स्वर्गवास को भी स्वामीजी ने एक निष्काम योगी की भाँति स्वीकार किया। यही नहीं अपने ज्येष्ठ पुत्र की मार्ग दुर्घटना में असामयिक मृत्यु को भी उन्होंने 'दुखेष्वनुद्विग्नमना' के धैर्य से स्वीकार्य किया था। इस आघात ने स्वामी जी के जीवन की दिशा बदल दी और वे महर्षि दयानन्द की जीवन शैली का अनुकरण करते हुए 10 मई, 1971 को गृहस्थ से संन्यासी हो गए। उसी समय से उन्होंने स्वामी सत्यप्रकाशानन्द सरस्वती नाम धारण किया। स्वामी सत्यप्रकाश के संन्यास ग्रहण

कर लेने पर विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रांगण में 'ऋतम्भरा' नाम की कुटिया बना कर उनके रहने का प्रबन्ध किया गया। उनका संन्यास स्वार्थ के लिए नहीं परार्थ के लिए था। जन सामान्य ने उनके संन्यासी जीवन से अधिकाधिक लाभ उठाया। प्रत्येक व्यक्ति जो उनके सम्पर्क में आता था, उनसे अपनत्व पाता था, उसे लगता मानों वे अपना सारा स्नेह उसे ही दे रहे हैं। मात्र वे आश्रम परिवर्तन के लिए ही संन्यासी नहीं बने थे। उन्होंने सच्चे अर्थों में लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा का परित्याग किया था। वे संन्यास लेकर संसार से भागे थे जीवन से नहीं। जीवन के तो प्रत्येक क्षण का उन्होंने सदुपयोग किया। उनकी साहित्यानुरागी, कर्मठ और लोकसंग्रही प्रवृत्ति ने उन्हें विश्राम के क्षण दिए ही नहीं थे। संन्यास आश्रम में दीक्षा ले लेने से ये आयाम अधिक विस्तृत हो गए थे। एकान्त में बैठकर वेदों की व्याख्या करते, व्यस्त क्षणों में वेदों का प्रसार करते, शिष्यों को प्रेम और प्रेरणा से गढ़ते। पूर्ण वैदिक रीति से स्वामी जी ने संन्यास की दीक्षा ली और आजीवन संन्यास की मर्यादा का पूर्ण परित्यागपूर्वक पालन किया। संन्यास ग्रहण कर लेने पर उन्होंने परिवार से सारे सम्बन्ध समाप्त कर लिए। वे परिचितों से कहते—'अशक्त हो जाऊँ तो मुझे सड़क पर फेंक देना, परिवार वालों को मत सौंपना।' संन्यासी स्वामी सत्यप्रकाश कषाय वस्त्र धारण कर स्वामी शंकरानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द आदि की भाँति देश-विदेश की बड़ी-बड़ी सभाओं को सम्बोधित करते, स्वदेश तथा पाश्चात्त्य देशों के विश्वविद्यालयों में सरल-रोचक-गम्भीर व्याख्यान देकर विद्वानों की श्रद्धा के पात्र बनते, वैदिक धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार का संकल्प पूर्ण करते।

वीतरागी संन्यासी स्वामी सत्यप्रकाश नें गीता के उपदेश—'सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ' को पूर्ण सार्थक किया था। जाड़ा-गर्मी-बरसात सभी ऋतुओं में वे केवल गेरुआ कुर्ता और अधोवस्त्र पहनते, आवश्यकता पड़ने पर एक हल्का चादर शरीर पर डाल लेते। प्रोफेसर सी॰ वी॰ रमन उनके सूक्ष्म वस्त्र देखकर उनसे प्रायः परिहास करते थे। वे लाभ-हानि से भी ऊपर थे, धन संचय की प्रवृत्ति उनमें तनिक भी न थी। गोविन्द राम हासानन्द, दिल्ली जैसे बड़े प्रकाशक से भी कभी अपनी बहुप्रचलित पुस्तकों के आय-व्यय का हिसाब नहीं करते थे। मान-अपमान की भी उन्हें चिन्ता नहीं था। स्व॰ प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सभाओं में भी वे बिना उत्तेजित या उत्साहित हुए निर्विकार बैठे रहते। सब परिस्थितियों में शान्त और सहज रहना उनके स्थितप्रज्ञ होने का प्रमाण था।

सन् 1983 में तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन की घटना है—समापन समारोह में हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा विद्वज्जनों को

सम्मानित कर रही थीं, सभी विद्वान् मंच तक जाते और सम्मानित होकर लौटते। हिन्दी को विज्ञान साहित्य से समृद्ध बनाने के लिये प्रथम वैज्ञानिक के रूप में स्वामी सत्य प्रकाश का नाम उद्‌घोषित हुआ, वे अपने आसन से तनिक न हिले, संन्यासी धर्म की मर्यादा सम्मान से ऊपर थीं। महादेवी जी को अब विद्वान् का नहीं, विद्वान् संन्यासी का सम्मान करना था, वे मंच से उतरीं और संन्यासी के पास आकर उन्हें सम्मानित कर मानों संन्यासाश्रम को गौरवान्वित किया।

अध्यापन काल में भी उनकी सादगी देखकर प्रतीत होता था मानों वे गुरुकुल के आचार्य हों। खादी का संफेद कुर्ता, धोती, गांधी टोपी तथा पैरों में चप्पल, स्वदेशी वेशभूषा प्रायः पैदल या कभी सायकिल पर चलने वाले कुछ स्थूल किन्तु सौम्य प्रभावशाली व्यक्तित्व। वे महात्मा गांधी तथा महर्षि दयानन्द से अत्यधिक प्रभावित थे। रहन-सहन में सादगी गांधी जी से सीखी तो जीवन में दर्शन तथा आस्तिकता दयानन्द से ग्रहण की। वे कहते—गाँधी को पढ़ता हूँ तो लगता है मानों उनके अन्दर से दयानन्द बोल रहे हों। दयानन्द और गाँधी की ही भाँति उनके व्यक्तित्व में विज्ञान और वैदिक संस्कृति का अद्‌भुत संगम था।

उन्हें भोजन करने और कराने का पर्याप्त शौक था। प्रत्येक परिचित-अपरिचित अतिथि को वे सस्नेह अपने हिस्से का फल, मिठाई आदि अवश्य खिलाते। स्वयं भी, भोजन फीका हो या स्वादिष्ट, तृप्तिभाव से ग्रहण करते। व्यंजन निर्माण की अनेक विधियाँ उन्हें ज्ञात थीं, प्रायः वे उनका वर्णन करते। आम्रफल और कॉफी उन्हें विशेष प्रिय थे। वे भोजन में अनावश्यक पथ्यापथ्य या परहेज़ की तनिक भी चिन्ता नहीं करते थे तथापि उनका यह समग्र क्रियाकलाप पद्मपत्र पर पानी की बूँदों के समान सर्वथा निर्लेप और अनासक्त था। आडम्बर और अनावश्यक संग्रह उनके जैसे व्यक्तित्व के लिए कठिन न थे किन्तु विरक्ति में सबसे अधिक स्वाद मिलता था।

अगाध पाण्डित्य के स्वामी थे वे। विज्ञान, साहित्य और दर्शन का कोई विषय उनसे अछूता न था। वे सुप्रसिद्ध रसायनवैज्ञानिक थे, अकार्बनिक रसायन उनका विषय था और इस विषय पर वे अधिकारपूर्वक पुस्तकें लिखते थे। विज्ञान के क्षेत्र में जिन गिने-चुने विद्वानों के नाम लिए जा सकते हैं उनमें स्वामी सत्यप्रकाश अग्रणी हैं। उनका लेखन चाहे अंग्रेज़ी माध्यम से हो अथवा हिन्दी, चाहे वह उच्चकोटि की पाठ्‌यपुस्तकों का हो या मौलिक ग्रन्थों का, स्तरीय होता था। उत्तर और दक्षिण भारत के विद्वानों एवं विद्यार्थियों के मध्य वे सदा चर्चित होते थे। उनकी एक पाठ्‌यपुस्तक ''Advanced Chemistry of Rare elements'' तो विदेशों में भी सम्मानित है। इसी तरह 'प्राचीन भारत में रसायन का विकास'

तथा 'Founders of Science in Ancient India' भी मौलिक सामग्री से परिपूर्ण होने के कारण पर्याप्त लोकप्रिय है।

स्वामी सत्यप्रकाश की दृष्टि विज्ञान और धर्म के अद्‌भुत समन्वय से समृद्ध थी। वे धर्म, दर्शन और विज्ञान को अविरोधी मानते थे। उन्हें कभी यह हीन भावना नहीं अनुभूत हुई कि अंग्रेज़ी की पुस्तक़ों में भी वे दर्शन तथा वैदिक ज्ञान का विश्लेषण और उसके द्वारा वैज्ञानिक तथ्यों का समर्थन कर रहे हैं। डॉ० सत्यप्रकाश ने सन् 1923 से ही विज्ञान पत्रिका में लिखना शुरू कर दिया था, बाद में विज्ञान के सम्पादक बनकर न जाने कितने लेखकों को हिन्दी में विज्ञान लेखन के लिए दीक्षित किया। स्वामीजी ने विज्ञान परिषद् का सभागार बनवाने के लिए तन-मन-धन से हर सम्भव सहायता दी। वैदिक संस्कृत, संस्कृति, विज्ञान और विशेषरूप से हिन्दी में विज्ञान लेखन की विशिष्ट सेवाओं के लिए 19 अप्रैल, 1991 को आगरा की एक महती संस्था ने स्वामी जी को देश के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा द्वारा दिल्ली में पुरस्कृत करवा कर सम्मानित किया था। डॉ० सत्यप्रकाश ने अपने जैसे कर्मठ, अध्यवसायशील, कार्यकुशल, दत्तचित्त अनेकों शिष्य गढ़े। जो उनके सम्पर्क में आया, अध्ययन की प्रेरणा और स्नेह की वर्षा से अभिसिञ्चित होता रहा। वे वैज्ञानिकों के योगदान को बड़ी आदर की दृष्टि से देखते थे और उन्हें आगे बढ़ाने के लिए हर सम्भव सहायता देते थे। स्वामी जी ने डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० आत्माराम, डॉ० सालिगराम भार्गव, डॉ० रामदास गौड़, डॉ० गंगा नाथ झा तथा डॉ० रत्नकुमारी की स्मृति में व्याख्यान मालाएँ प्रारम्भ कराई। अद्यापि ये व्याख्यान विज्ञान परिषद्, प्रयाग के सभागार में तथा अन्य स्थानों पर भी समय-समय पर दिए जाते हैं।

डॉ० सत्यप्रकाश का लेखन बहुआयामी एवं सघन था, विषय चाहे विज्ञान, संस्कृत, दर्शन, आर्यसमाज या जीवन से सम्बन्धित हो, वे समान अधिकार से लिखते। उन्होंने फ्रेंच भाषा का भी अध्ययन किया था। उन्होंने विज्ञान परिषद् से सन् 1958 में हिन्दी भाषा में एक विज्ञान शोध पत्रिका का प्रकाशन चालू किया। उनका कहना था कि विश्व की तमाम शोध पत्रिकाओं के बीच हिन्दी की भी विज्ञान शोध पत्रिका को स्थान मिलना चाहिए, वे इसमें सफल भी रहे। उन्होंने 'विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका' का सम्पादन—प्रकाशन 38 वर्षों तक किया। विज्ञान की इस पत्रिका का प्रकाशन विज्ञान परिषद् से आज भी हो रहा है। जनसाधारण में विज्ञान को सुगम बनाने के लिए डॉ० सत्यप्रकाश की यह अमूल्य देन है। इसी प्रकार विज्ञान परिषद् की 75वीं वर्षगाँठ पर आयोजित अमृत महोत्सव में उन्होंने 'बाल विज्ञान सीरीज़' के अन्तर्गत 75 पुस्तकें प्रकाशित करने का संकल्प लिया। अपने जीवन काल में 'रंग-बिरंगे फल' जैसी 3 दर्जन पुस्तकें

प्रकाशित भी कीं। डॉ॰ सत्यप्रकाश ने वैदिक यज्ञों के सम्बन्ध में गणित तथा ज्यामिति का विशेष अध्ययन किया और संस्कृत व संस्कृति से सामग्री लेकर तत्सम्बन्धित कई पुस्तकें लिखीं, उन्होंने 'अग्निहोत्र' का रसायन शास्त्र ही लिख दिया। भाषा हिन्दी हो या अंग्रेज़ी, लेखन उनके लिए कठिन न था। वे कहते, मैंने अंग्रेज़ी में कम और हिन्दी में ज्यादा लिखा है। उन्होंने छोटी कक्षाओं से लेकर उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों तक के लिए विज्ञान की पुस्तकों का लेखन किया। अपने जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने लेखन में ही बिताया, वे ब्राह्ममुहूर्त में ही उठकर बैठ जाते और अपनी प्रखर स्मरण शक्ति से कोई भी अंश पुस्तकों में से निकालकर उसका अपने लेखन में उपयोग करते। सरस्वती पुत्र का लेखन कार्य मृत्यु पूर्व अशक्त हो जाने तक चलता रहा। उनका पुस्तकालय कीमती तथा दुर्लभ पुस्तकों से भरा हुआ था। मृत्यु से दो वर्ष पूर्व उन्होंने ये पुस्तकें आर्य समाज कटरा तथा विज्ञान परिषद् को दान में दे दी थीं। मॉरिशस के एक हिन्दी-संस्कृत-भारत प्रेमी धनिक श्री मोहन लाल मोहित ने छः लाख रुपये की धनराशि देकर डॉ॰ सत्यप्रकाश की अध्यक्षता में अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ की स्थापना करवाई। स्वामी जी ने आजीवन इस संस्था के संचालन में अपनी कर्तव्यपरायणता का परिचय दिया। इस पीठ की ओर से 'महर्षि दयानन्द वेद जर्नल' आज भी प्रकाशित होता है। स्वामी जी ने अपने जीवनकाल में मुझे भी इस जर्नल का सलाहकार सम्पादक नियुक्त किया था। इस संस्था द्वारा देश के अनेक भागों में वैदिक शोध संगोष्ठियाँ सम्पन्न कराई गईं।

अद्‌भुत वक्तृता शक्ति के धनी थे स्वामी जी, गूढतम विषयों को तर्कों और उदाहरणों से रोचक बना ऐसा सरलतम हृदयग्राही विश्लेषण प्रस्तुत करते कि सब कुछ स्पष्ट हो जाता। विचार सम्प्रेषण की कला में वे पटु थे इसलिए अपने भाषणों से श्रोता को मन्त्रमुग्ध कर लेते थे, विषय चाहे साहित्यिक हो अथवा सामाजिक, वैज्ञानिक हो अथवा धार्मिक। उनका जीवन सहज था औपचारिकता से परे, आडम्बरों से अछूता—सादा भोजन भी मधुकरी की भाँति तृप्तभाव से ग्रहण करते। खादी की वेशभूषा में भी पाण्डित्य की उस प्रखरता का आभास देते जो उनमें भरी थी। आश्चर्य होता है उनकी अपूर्व बौद्धिक क्षमता पर जो या तो अनुपात में सामान्य से अधिक थी अथवा लगन की निरन्तरता से अधिक सी आभासित होती थी। वैदिक धर्म और दर्शन की प्रशस्यता और पराकाष्ठा के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने अनेक बार दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, यूरोप, अमेरिका आदि देशों की यात्रा की थी और भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता से विश्व को परिचित कराया था।

छायावाद के उत्कर्षकाल में उनका नवरहस्यवादी (Neomysticism) 36 कविताओं का संकलन सन् 1927 में 'प्रतिबिम्ब' नाम से छपा था। जिसकी भूमिका स्वयं कवि सत्यप्रकाश ने अंग्रेज़ी में लिखी थी। उन्होंने ईश तथा श्वेताश्वतर उपनिषदों के काव्यानुवाद किए, सन् 1980 में इनके प्रकाशित होने पर स्वामीजी को अपार प्रसिद्धि मिली थी। कविता को कठिन शब्दों और जटिल विचारों से बोझिल बनाने के पक्षधर वे कदापि न थे, भावानुकूल विचार संकलन उनकी रचनाओं की विशिष्टता थी। 'प्रतिबिम्ब' संकलन की उत्कृष्ट रचनाओं के अवलोकन से स्पष्ट भासित होता है कि यदि कवि रसायन शास्त्र के गह्वर में न उतरा होता अथवा वैदिक साहित्य साधना के उच्च शिखर पर न चढ़ा होता तो निश्चित ही साहित्य जगत को कुछ अनूठे काव्य रचना मोतियों का उपहार और मिला होता। कवि की कुछ काव्य रचनाएँ अभी भी अप्रकाशित हैं, जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं।

स्वामी सत्यप्रकाश का सम्पूर्ण व्यक्तित्व आर्यसमाज के लिए समर्पित था। उपाध्याय परिवार का उत्तराधिकारी होने के कारण उन्होंने वाणी और लेखनी दोनों के द्वारा आर्य समाज की भरपूर सेवा की। उनकी पकड़ न केवल विज्ञान पर थी अपितु महर्षि दयानन्द के साहित्य के शब्द-शब्द पर उनका प्रामाणिक और अप्रतिम अधिकार था। आर्य समाज के सत्संगों में वे बाल्यकाल से ही नियमित रूप से रविवार को जाते थे। विश्वविद्यालय स्तर पर काम करने वाले आर्य विद्वानों में स्वामी जी एकमात्र थे जिन्होंने महर्षि दयानन्द की अनेक मान्यताओं की वैज्ञानिक व्याख्या की थी। आस्थावश स्वीकार किए गए सिद्धान्तों की विज्ञान सम्मत विवेचना कर के महर्षि की उद्भावनाओं को विद्वद् वर्ग में आदरणीय बनाया था। महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज के प्रति कट्टर निष्ठावान् होते हुए भी वे वैचारिक स्वतंत्रता के पक्षपाती थे और अपने सैद्धान्तिक मतभेदों को बिना संकोच के व्यक्त करते थे। आर्यसमाज में बढ़ते पुरोहितवाद तथा यज्ञों के नाम पर अनावश्यक पाखण्डों के प्रचार के प्रति वे अपना रोष व्यक्त किया करते थे। वे कहते थे कि पुरोहितों में से अधिकांश का वैदिक अध्ययन और अर्थानुशीलन नगण्य है, वे अपने प्रवचनों से अल्पपठितों को भले ही प्रभावित कर लें, प्रबुद्ध समाज में उससे आर्यसमाज की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती है। वे धर्म और कर्मकाण्ड में अन्तर करते थे और यज्ञों के नाम पर यजमान से कपोलकल्पित अनुष्ठान करवाना अनुचित समझते थे। विदेशों में महर्षि दयानन्द की विचारधारा से लोगों को अवगत कराने के लिए स्वामी जी ने अनथक यात्राएँ की थीं। विदेशों की आर्यसमाजों को निकट से देखने और समझने के अवसर उनको मिले थे। विदेशों के मूल निवासियों को आर्यसमाज में साथ लेकर चलने के लिए वे सदा

प्रयत्नशील रहे। कीनिया की अफ्रीकी जाति के अनेक युवकों से उन्होंने इस हेतु से सम्पर्क भी बनाया, किन्तु भारतीय विदेशवासी नागरिकों की अरुचि के कारण यह प्रयोग बहुत सफल न हो सका। वे प्रायः कहते कि आर्य समाज अपने को सार्वभौम वैदिक धर्म का प्रचारक कहता है किन्तु भारत के बाहर गोरी, पीली, काली जातियों में अब तक अपना अनुयायी वर्ग नहीं बना सका है।

स्वामी सत्यप्रकाश ने वाणी और लेखनी दोनों के द्वारा आर्यसमाज की भरपूर सेवा की। सारस्वत साधनों से समृद्ध परिवार में जन्म लेने के कारण उनकी जितनी पकड़ आधुनिक विषयों पर थी उतनी ही वैदिक साहित्य एवं दर्शन पर। उपाध्याय परिवार की ज्येष्ठ सन्तान स्वामी सत्यप्रकाश ने आर्यसमाजी संस्कारों तथा विचारों से सम्बद्ध रहकर आजीवन कुल परम्परा का निर्वाह किया। 18 वर्ष की आयु में आर्यसमाज की सदस्यता स्वीकार कर संन्यास ग्रहण करने तक देश या विदेश के आर्यसमाजों में प्रति रविवार को उनकी उपस्थिति स्वाभाविक थी। महर्षि दयानन्द की तर्कपूर्ण वैज्ञानिक विचारधारा से वे पूर्ण परिचित थे। वेद, ईश्वर और महर्षि के प्रति उनकी आस्था गहरी थी तथापि वे वैचारिक स्वतंत्रता के पक्षपाती थे और अपने सैद्धान्तिक मतभेदों को निर्भयता से व्यक्त करते थे। वे नगर-देश-विदेश की अनेक संस्थाओं के मानद सदस्य रहे, संन्यास लेकर उन्होंने सभी संस्थाओं के सम्मानित पदों का परित्याग कर दिया। उनकी मान्यता थी—संन्यासी को पद या सम्मान का कोई लोभ नहीं होना चाहिए। संन्यास लेकर उन्होंने परिव्राजक के रूप में वैदिक धर्म और आर्यसमाज का प्रचार विश्व भर में किया। अनेक बार यूरोप, अमेरिका, दक्षिणी तथा पूर्वी अफ्रीका, मॉरिशस आदि देशों की यात्रा का उद्देश्य भारतीय संस्कृति और आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार मात्र था। इस प्रकार उन्हें भारतेतर आर्यसमाजों को निकट से देखने का अवसर मिला था।

स्वामी सत्यप्रकाश अपने व्याख्यानों में यज्ञ की व्याख्या महर्षि दयानन्द के समान ही देवपूजा, संगतिकरण, दान के रूप में करते थे। उनके अनुसार यज्ञ का अर्थ था—उत्तम कर्म। केवल अग्नि में हवि अर्पित करना यज्ञ नहीं, लोकसेवा यज्ञ है। अतः ऐसे उत्तम कर्म का उनके अनुसार स्वयं करना इष्ट और फलप्रद था। वे पारायण यज्ञ को भी अनुचित और पौराणिक मानते थे। वेदों में बहुआयामी ज्ञान विहित है ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण वेद से यज्ञ करने का कोई मतलब नहीं है। पूर्णाहुति के प्रति भी लोगों के मन में आकर्षण उत्पन्न करना वैदिक हैं। वे प्रायः कहते, 'आर्य समाज में भी यज्ञ के नाम पर दुकानदारी चलने लगी है, भविष्य में इससे अनेक समस्याएँ उपजेंगी। वैदिक यज्ञ सम्बन्धी विशेष अध्ययन करके गणित तथा ज्यामितीय दृष्टिकोण से उन्होंने 'अग्निहोत्र का

रसायनशास्त्र' आदि कई पुस्तकें लिखीं थीं।

मानव सेवा में सतत संलग्न स्वामी सत्यप्रकाश प्रखर राष्ट्रवादी थे। उन्होंने खादी का वरण नेतागिरी के लिए नहीं अपितु स्वदेशी की भावना में भरकर अंगीकार किया था और उसे मृत्युपर्यन्त निभाया था। महात्मा गाँधी से प्रभावित उन्होंने न केवल चरखा काता वरन् स्वतंत्रता आन्दोलन में भी भाग लिया। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लेकर वे कारावास गए और कारागार की यातनाओं को सहा। महर्षि दयानन्द एवं गांधी के सच्चे दूत के रूप में उन्होंने आजीवन आदर्श परम्पराओं का पालन किया।

जीवन और मृत्यु उस परमात्मा का बनाया हुआ ही एक अटूट नियम है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि स्वामी जी 18 जनवरी, 1995 को हमारे बीच से चले गए किन्तु अपने उत्तम व्यक्तित्व तथा श्रेष्ठ कृतित्व के लिए वे सदा स्मरण किये जाते रहेंगे।

भारत के उद्धार हेतु हजारों पृष्ठों में समाहित उनके लेखन का क्रमबद्ध परिचय इस प्रकार है—

विज्ञान विषयक पुस्तकें

1. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा : 1954, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

2. Advanced Chemistry of Rare elements : 1956, एस० चांद एंड कम्पनी, दिल्ली।

3. Founders of Science in ancient India : 1965, रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑफ एंशियन्ट साइन्टिफिक स्टडीज़, दिल्ली।

4. साबुन और ग्लिसरीन : 1966, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ।

5. A Critical Study of Brahmagupta and his works : 1968, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ ऐस्ट्रोनॉमिकल एण्ड संस्कृत रिसर्च, नई दिल्ली।

6. रासायनिक शिल्प की एकक संक्रियाएँ, 1973, हिन्दी संस्थान उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

7. Patanjali Rajyoga : 1975, एस० चाँद एण्ड कं० दिल्ली।

8. Physico-chemical aspects of High Polymers, एस० चाँद एण्ड कं० दिल्ली।

9. भौतिक और रासायनिक नियतांक 1978, हिन्दी संस्थान उत्तर प्रदेश,

लखनऊ।

10. The Bakhshali Manuscript 1979, रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

11. The Shulba Sutra 1968, 1979, रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।

12. Coinage in Ancient India 1968, 1986, गोविन्द राम हासानन्द, दिल्ली।

13. प्राचीन भारत में रसायन का विकास 1960, 1986, नया संस्करण पुस्तकायन दिल्ली।

14. Chemical Studies of Archaeological findings.

15. Wealth of India, (हिन्दी संस्करण) : समस्त खण्ड 1971-1988)

वैदिक दर्शन विषयक पुस्तकें

1. मनुष्य और मानव धर्म (1975) (विश्व की अनेक भाषाओं में अनूदित)
2. वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप
3. आर्य समाज : सिद्धान्त और प्रगति (1988)
4. आर्य समाज : संघर्ष और समस्याएँ (1987)
5. योग और प्राण सौष्ठव (1987)
6. योग, प्राणायाम और चेतनाएँ (1988)
7. प्रभु के मार्ग पर (1981)
8. प्रार्थना और चिन्तन (1981)
9. योग और उसकी अनुभूति (1984)
10. योग, नैतिकता और जीवन मूल्य (1989)
11. सिद्धान्त और साधना (1985)
12. ईश्वर और ईश्वरीय ज्ञान (1983)
13. अध्यात्म और आस्तिकता (1984)
14. सिद्धान्त और साधना (1985)
15. The Self, life and Consciousness (1983)
16. Man and his religion (1972, 1983)
17. Agnihotra (1937-1985)

18. Speeches, Writings and Addresses Vol. I & Vol. II (1981)
19. Vincit Veritas (1971)
20. Three hazards of life (1986)
21. A critical study of Philosophy of Dayanand (1975)
22. Light within (1974)
23. Nectareal songs of Vedas (1975)

(15) उमाशंकर श्रीवास्तव 'जानकार'

अध्ययन-अध्यापन को ही जीवन का सर्वस्व मानने वाले पं॰ रघुनायक प्रसाद श्रीवास्तव के एकमात्र सुपुत्र उमाशंकर लाल श्रीवास्तव विद्वज्जगत् तथा कवि गोष्ठियों में 'जानकार' उपनाम से प्रसिद्ध थे। सन् 1913 में लब्धजन्मा वे मूलतः ग्राम रामपुर, गोपीगंज, भदोही जनपद के निवासी थे, किन्तु अध्ययन एवं वृत्ति की खोज में विवाह के पश्चात् इलाहाबाद आये और फिर इलाहाबाद के ही होकर रह गये। जानकार जी की पत्नी श्रीमती फूल कुमारी श्रीवास्तव मडुआडीह, बनारस के जमींदार परिवार की कन्या हैं। 92 वर्ष की आयु में वे अपने पुत्र-पौत्रों के साथ सक्रिय रूप से सुखपूर्वक रह रही हैं। जानकार जी का आरम्भिक समय संघर्षमय रहा। उन्होंने सेवा समिति विद्या मन्दिर, माडर्न घोष इण्टर कालेज, कायस्थ पाठशाला स्कूल एवं सी॰ एम॰ पी॰ डिग्री कालेज में अध्यापन कार्य के साथ-साथ संस्कृत का अध्ययन जारी रखा। अत्यन्त सरल स्वभाव, निश्छल प्रवृत्ति जानकार जी सही अर्थों में विद्याव्यसनी थे।

जानकार जी की संस्कृत साहित्य में अद्भुत गति थी। वे आजीवन संस्कृत वाङ्मय का अनुशीलन करते रहे। उन्होंने व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य का अध्ययन संस्कृत पाठशाला, लोहिया का हाता तथा श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय, दारागंज में किया। अवकाश-प्राप्ति के अनन्तर भी वे न्याय दर्शन के अनुशीलनार्थ श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय जाते थे। वहाँ के प्राचार्य प्रख्यात विद्वान् पंडित रामबदन शुक्ल जी की उन पर विशेष कृपा थी। उन्होंने ज्योतिष शास्त्र एवं आयुर्वेद में भी श्रम किया था। संस्कृतज्ञ विद्वान् के स्वभाव के विपरीत अंग्रेज़ी भाषा पर भी उनका पूरा अधिकार था।

जानकार जी संस्कृत साहित्य के साथ-साथ संगीत कला में भी निपुण थे। उनका कण्ठ मधुर था। प्रयाग संगीत समिति में वे आजन्म थ्योरी के विभागाध्यक्ष रहे तथा संगीत शास्त्र के अनेक ग्रन्थों की रचना की। चलचित्र जगत् के तत्कालीन अनेक संगीतकार उनके मित्र अथवा शिष्य थे। काव्यकला में भी वे निष्णात थे। काव्यक्षेत्र में प्रयोग के लिए उपनाम 'जानकार' भविष्य में उनका

पर्याप्त हो गया। उनके पौत्र-पौत्रियाँ गर्व से अपने नाम के साथ पितामह के इस उपनाम को धारण करते हैं। वे हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेज़ी में साधिकार रचना करते थे। उन्होंने 'काव्यकलश' नाम से कविता संग्रह लिखा, किन्तु वह प्रकाशित न हो सका। कवि सम्मेलनों में उनकी कवितायें बहुत जमतीं थीं। मुंशी काली प्रसाद कुलभास्कर के जन्म दिवस पर 3 दिसम्बर को के॰ पी॰ इण्टर कालेज सभागार में आयोजित सभा में उनका काव्यपाठ नियत था।

धोती-कुर्ता एवं माथे पर चन्दन का टीका उनकी वेश-भूषा थी। वे रामायण एवं गीता पर प्रवचन दिया करते थे। राम मन्दिर, सिविल लाइन्स तथा आर्यसमाज, चौक आदि धर्म सभाओं में प्रायः उनका प्रवचन हुआ करता था। उनकी प्रवचन शैली बड़ी आकर्षक एवं मनोहारी थी। उन्हें गीता एवं रामायण का अधिकांश कण्ठस्थ था।

अध्यापकत्व, विद्यार्थित्व, संगीतकलाविज्ञत्व, कवित्व एवं प्रवचनकर्तृत्व ने जानकार जी के व्यक्तित्व को इतना व्यापक बना दिया था कि वे प्रयाग महानगर में अत्यन्त लोकप्रिय थे। अनेक परिवारों से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनकी शिष्य मण्डली उन्हें आज भी स्मरण करती है।

आचार्य जानकार शास्त्री के ज्येष्ठ पुत्र डॉ॰ आनन्द कुमार श्रीवास्तव सी॰ एम॰ पी॰ डिग्री कॉलेज में संस्कृत विभागाध्यक्ष/प्राचार्य हैं। वे अपनी विद्वत्ता और पाठन शैली के लिए साहित्यिक समाज में लोकप्रिय हैं। ज्येष्ठ पुत्रवधू होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है। पूज्य श्वसुर की प्रेरणा से मैं भी यथाशक्ति संस्कृत साहित्य सेवा में सम्पृक्त रहती हूँ। कनिष्ठ पुत्र श्री शेष कुमार श्रीवास्तव उच्च न्यायालय इलाहाबाद में वरिष्ठ अधिवक्ता हैं। उनकी पत्नी श्रीमती पिंकी श्रीवास्तव कुशल गृहिणी हैं। विद्यमान वंशपरम्परा में दो पौत्र निशीथ जानकार तथा पुनीत जानकार उच्चशिक्षा प्राप्त कर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में प्रबन्धन में उच्चाधिकारी हैं। दो पौत्रियाँ पांखुरी जानकार तथा निर्झरी जानकार अभियन्ता का पाठ्यक्रम उत्तीर्ण कर कार्यरत हैं। पिताश्री के आशीर्वाद से दोनों पौत्रवधूएँ डॉ॰ नूपुर जानकार तथा डॉ॰ समीक्षा जानकार ख्यातिप्राप्त चिकित्सिकाएँ हैं।

जानकार जी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें 1. व्याकरण कुसुमाञ्जलि, 2. मुद्राराक्षस व्याख्या, 3. वेदविवेचनम् एवं 4. कठोपनिषद् व्याख्या प्रसिद्ध हैं। उनके अनेक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आकाशवाणी इलाहाबाद से उनकी संस्कृत वार्ताएँ प्रायः प्रसारित होती थीं।

(16) राम बदन शुक्ल

उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपदान्तर्गत ग्राम कोड़रा, मंत्रालय—सहजनवाँ

निवासी संस्कृत जगत् के मूर्धन्य विद्वान् न्याय-वेदान्त-मीमांसादि दर्शन के मर्मज्ञ, वैयाकरणशिरोमणि, पण्डित रामबदन शुक्ल के प्रबल वैदुष्य से काशी एवं प्रयाग विद्वत् स्थलियों में कौन मनीषी ऐसा है जो सर्वथा अपरिचित रहा हो। व्याकरण एवं न्याय दर्शन के विशेष अधिकारी रामबदन शुक्ल सहज परिवेश में बाह्याडम्बर अथवा आधुनिक चाकचिक्य से सर्वदा दूर रहते थे। ग्रामीण कृषक परिवार में जन्म होने के कारण पारिवारिक आदर्श संस्कार स्वभावतः अनुस्यूत थे। इनके पितामह श्री बालकराम शुक्ल, एवं पिता श्री यदुनाथ शुक्ल व माता श्रीमती लखराजी देवी थीं। आपका जन्म लगभग सन् 1914 में हुआ था, जन्म के कुछ ही दिनों बाद पिताश्री के गोलोकवास के फलस्वरूप आपके भरण-पोषण का सम्पूर्ण दायित्व माता जी के ऊपर आ गया। माँ की स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे सम्यक् रूप से लालन-पालन करते हुए समुचित शिक्षा दिला सकें। शैशवावस्था में माँ के लाड़-प्यार से पोषित बालक रामबदन गाँव के ही प्राथमिक विद्यालय में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने लगे। अर्थाभाव के कारण शिक्षा शुल्क देने में असमर्थ होकर इनकी शिक्षा बाधित होने की सम्भावना बढ़ने लगी। तब इनकी माँ ने अपने पिता श्री बहाल त्रिपाठी (पहलवान) से अपनी स्थिति बताई और पहलवान जी ने मदद करने का आश्वासन देकर शिक्षा जारी रखने का सुझाव दिया। इस प्रकार रामबदन जी का प्रवेश संस्कृत पाठशाला हरपुर, बुदहट गोरखपुर में हुआ। वहाँ अपने नाना श्री बहाल त्रिपाठी तथा मामा श्री बलिराज त्रिपाठी के संरक्षण-निर्देशन में संस्कृत शिक्षा लेने के बाद पुनः मुक्तेश्वरनाथ संस्कृत पाठशाला, गोरखपुर में इनका प्रवेश कराया गया। मामा जी की प्रेरणा से शिक्षा ग्रहण करने के साथ वे पहलवानी भी सीखने लगे। कुछ ही दिनों में पहलवानी और संस्कृत अध्ययन के कार्य आपस में विरोधी रूप से स्पष्ट होने लगे। अन्ततः रामबदन मामा जी की छत्रछाया को तिलांजलि देकर संस्कृत के विधिवत् अध्ययन के लिए अयोध्या के बड़ा स्थान स्थित संस्कृत पाठशाला में रहने लगे। वह स्थान वैष्णव सम्प्रदाय का था जब कि पं० रामबदन जी के परिवार के लोग पूर्णतया शैव थे। अतः रामबदन जी के ऊपर भी शैवमत प्रभावी था। अयोध्या की पाठशाला से शास्त्री तक शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त स्नातकोत्तर शिक्षा अर्थात् आचार्य शिक्षा हेतु काशी के क्वींस कालेज में प्रवेश लेकर ख्यातिलब्ध विद्वान् पण्डित महाशय जी की सन्निधि में व्याकरण एवं न्याय का सम्यक् अध्ययन किया। इस प्रकार इनके शिक्षा गुरु श्री महाशय जी रहे। इस अवधि में इनके श्यालक श्री हनुमान प्रसाद पाण्डेय, विभागाध्यक्ष, वैकुण्ठनाथ चौहारि संस्कृत महाविद्यालय, वैकुण्ठपुर, देवरिया के सान्निध्य ने सोने में सोहागे का कार्य किया।

आचार्य अन्तिम वर्ष की परीक्षा देने के बाद वाराणसी में एक शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ जिसमें अपने ज्ञान के कारण पण्डित रामबदन शुक्ल को विजय प्राप्त हुई। इससे प्रभावित होकर सांगवेद महाविद्यालय, वाराणसी के प्रबन्धक महन्त ने व्याकरण शास्त्रार्थ परीक्षा विजयी पंडित रामबदन शुक्ल को प्राध्यापक के रूप में नियुक्त कर लिया। इस प्रकार आजीविका का श्री गणेश सांगवेद संस्कृत महाविद्यालय से हुआ। आपके वैदुष्य का यशोगान यहीं से उच्चता की ओर प्रशस्त हुआ। यहाँ एक रोंचक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है, जो इनकी दीक्षा से सम्बन्धित है। यद्यपि ये पारिवारिक परम्परा से मूलतः कट्टर शैव थे किन्तु काशी में एक ज्यातिर्विद् संन्यासी से अचानक भेंट हुई। उसने इनका हाथ देखा तो कहा, बेटा! तुम्हारी बुद्धि तो प्रखर है किन्तु तुम अल्पायु हो। यह सुनकर ये बहुत चिन्तित हुए और वह संन्यासी भी। इन्होंने संन्यासी से कहा—महाराज! इससे बचने का कुछ सम्यक् उपाय हो तो बताएँ। संन्यासी ने कहा—बच्चा, उपाय तो है किन्तु उपाय से कष्ट कम तो होगा, पूर्णतया टल नहीं सकता। यह कहते हुए उन्होंने बताया कि—तुम वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाओ और आजीवन वैष्णव बने रहो लेकिन फिर भी समय आने पर मृत्युतुल्य कष्ट होगा। यह सुनकर पण्डित रामबदन चिन्तित रहने लगे और दीक्षा गुरु के अन्वेषण में विचार मग्न हो गये। गहन विचार करने के बाद श्री बलराम देशिक स्वामी से दीक्षित होने का सुनिश्चय कर उनके पास जाकर शुभ मुहूर्त में वैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा ग्रहण की।

वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद आपको हरिद्वार के एक संस्कृत महाविद्यालय में पढ़ाने का शुभावसर प्राप्त हुआ। इनके आवास व भोजन की व्यवस्था आश्रम की ओर से थी। वहाँ रहकर आप वैष्णव धर्मानुसार जीवन व्यतीत करते हुए अध्यापन कार्य करने लगे। कुछ दिन बाद इनका स्वास्थ्य सन्निपात ज्वर से इतना खराब हुआ कि इन्हें मृत्युतुल्य घोर कष्ट हुआ। बचने की कोई सम्भावना न देखकर ये औषधीय उपचार के साथ विष्णुसहस्रनाम का पाठ भी मन ही मन करने लगे। तीन दिन बाद स्वास्थ्य में सुधार होने लगा और एक सप्ताहोपरान्त स्वस्थ हो पथ्य ग्रहण करने लगे। इस घटना के बाद इनका वैष्णव सम्प्रदाय में अटूट एवं परम सद्विश्वास हो गया। ये निष्ठावान् होकर वैष्णवधर्म के प्रचार-प्रसार में अभिरुचि लेने लगे। 'श्री वैष्णव सम्मेलन' नामक साम्प्रदायिक पत्रिका में आपके सारगर्भित लेख निरन्तर प्रकाशित होने लगे। आपकी ख्याति एक अच्छे नैयायिक व वैयाकरण के रूप में सर्वत्र प्रसृत होने लगी। इसी बीच एक दिन आश्रम में भोजनालयीय व्यवस्था के विवाद से आपका मन खिन्न हो गया और वहाँ से सब कुछ छोड़कर ये बदरिकाश्रम स्थित श्री

रंगाचारी स्वामी जी द्वारा शिक्षा ग्रहण करने हेतु बद्रीनाथ चले गये। वहाँ रहकर आपने श्रीमद्भागवत, श्रीभाष्यम् आदि अनेक साम्प्रदायिक ग्रन्थों का अनुशीलन व अध्ययन किया। पूर्वजों के कट्टर शैव होने पर भी आप एक उत्कृष्ट वैष्णव धर्मानुयायी बने, आपकी जीवनचर्या में स्वयंपाकी होना, साबुन-तेल आदि का परित्याग, कूपजल सेवन (नल जल परित्याग), धोतीके साथ मिरजई (चौकरी) बहुपट्टा तथा साफा आदि परिवेश, नित्य गो-गंगा-गायत्री सेवन जैसे क्रियाकलाप अनिवार्य तत्त्व के रूप में व्यवस्थित हो गये। जिसका निर्वाह आपने आजीवन किया। आपका विवाह देवरिया जनपद निवासी इन्द्र देव पाण्डेय की सुपुत्री कौशल्या देवी के साथ वैदिक विधानपूर्वक सम्पन्न हुआ।

बदरिकाश्रम से शिक्षित होने के बाद आप एक निष्णात नैयायिक व कण्ठस्थ वैयाकरण अर्थात् शास्त्र एवं पुराण दोनों के मर्मज्ञ विद्वान् के रूप में प्रतिष्ठित हुए। अतएव सन् 1935 से 1938 तक आप ने मौनिय संस्कृत महाविद्यालय, जनकपुर, बिहार में प्राचार्य पद को सुशोभित करते हुए अध्यापन कार्य किया। 1940 में प्रयागस्थ श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय, वैष्णवाश्रम, दारागंज, इलाहाबाद में 1962 तक अध्यापक के रूप में कार्य करने के बाद श्री हरी राम कृष्ण गोपाल सनातन संस्कृत महाविद्यालय, ऊंचामण्डी, इलाहाबाद में प्राचार्य के रूप में नियुक्त हुए। 1962 से 1964 तक लगभग दो वर्ष वहाँ रहने के बाद पुनः वैष्णवाश्रम रामदेशिक विद्यालय में प्राचार्य पद पर सन् 1965 में अधिष्ठित होकर अनवरत रूप से 1968 तक अध्यापन कार्य किया और वहीं से सेवानिवृत्त हुए।

वंशवृक्ष

बालकराम शुक्ल

यदुनाथ शुक्ल — श्रीमती लखराजी देवी

रामबदन शुक्ल

गोदावरी तिवारी (पुत्री) | पुष्पा मिश्रा (पुत्री) | भाष्यकार शुक्ल (पुत्र) | रंगनाथ शुक्ल (पुत्र) (आचार्य श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय, दारागंज इला०)

संध्या | साधना | हरिनाथ | देवनाथ | जीवन नाथ

धर्मनाथ रविनाथ जयनाथ हर्षनाथ विद्यानाथ दिव्यनाथ

सेवा निवृत्ति के बाद आपने विशिष्ट विद्वान् के रूप में शास्त्र चूडामणि योजना के अन्तर्गत एक वर्ष रसानन्द आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, मैनपुरी में तथा कुछ वर्ष श्री रंग लक्ष्मी आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, वृन्दावन में अध्यापन कार्य कर संस्कृत छात्रों को अपने ज्ञानानुभव से संतृप्त किया।

आप पट्टशिष्य श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी, श्री वासुदेवाचार्य विद्याभास्कर, कौशलेश सदन, कटरा अयोध्या के विशेष आवाहन पर श्री त्रिदण्डिदेव संस्कृत शोध संस्थान, अयोध्या, फैजाबाद में निदेशक के पद पर शोभायमान हुए। इस पद पर रहते हुए आपने सन् 1990 तक अनेक जिज्ञासु विद्वानों की विविध शंकाओं का समाधान भी किया। इसके एक वर्ष बाद ही पुनः त्रिदण्डिदेव संस्कृत शोध संस्थान अयोध्या, फैजाबाद में निदेशक के रूप में कार्य करते हुए 06.04.1994 को विद्याभास्कर जी की देख रेख में महाप्रयाण किया। कृष्णवर्णी वेशभूषा के प्रति लापरवाह, मलिनवस्त्रों में ही दिन व्यतीत करने वाले किन्तु अध्ययन-अध्यापन में प्रत्येक क्षण दत्तचित्त पं॰ रामबदन शुक्ल महाकवि कालिदास सम वैदुष्य सम्पन्न थे। मृत्यु विधि का विधान है, पंडित रामबदन शुक्ल के मरण से संस्कृत साहित्य की दीपशिखा का शमन हो गया।

कृतियाँ 1. वेदार्थ संग्रह की चन्द्रिका टीका (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा प्रकाशित) 2. स्फोटविवेचन 3. शब्द शक्ति विचार 4. शब्द प्रामाण्य विचार। अन्य लेख—वैष्णव सम्मेलन एवं सरस्वती सुषमा आदि पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित।

सम्मान व अभिनन्दन—1. विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा भव्य समारोह में अभिनन्दन 2. रोटरी क्लब इलाहाबाद द्वारा सम्मान 3. संस्कृत विद्वत् परिषद् अयोध्या द्वारा अभिनन्दन 4. प्रान्तीय संस्कृत सम्मेलन, रीवां सम्मान तथा अभिनन्दन 5. काशी, प्रयाग, अयोध्या, वृन्दावन आदि स्थलों पर विविध संस्थाओं द्वारा अनेकशः सम्मान एवं अभिनन्दन।

(17) श्याम नारायण श्रीवास्तव

श्री श्यामनारायण का जन्म इलाहाबाद के झूँसी परगना स्थित ग्राम रामापुर में 8 अक्टूबर, 1917 को एक कानूनगो कायस्थ परिवार में हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमती जागेश्वरी देवी तथा पिता का नाम मुंशी माता दयाल श्रीवास्तव 'तपिश' था। श्याम नारायण जी छः भाई बहनों में दूसरे थे।

श्री श्याम नारायण की आरम्भिक शिक्षा गाँव में तथा इलाहाबाद के विभिन्न स्कूलों में हुई। इनके पिता जी ने कई रियासतों जैसे उइया, मांडा, भीषमपुर आदि में मैनेजर के पदों पर कार्य किया, अतः इनकी आरम्भिक शिक्षा भी इन्हीं स्थानों पर हुयी। स्वतन्त्र संग्राम में भाग लेने के कारण इनके पिता जी को उइया रियासत की नौकरी छोड़नी पड़ी। तत्पश्चात् वे अपने परिवार के साथ नैनी में रहने लगे। श्रीं श्याम नारायण ने इण्टरमीडिएट परीक्षा अग्रवाल इण्टर कॉलेज से उत्तीर्ण की। बी॰ ए॰ व एम॰ ए॰ (संस्कृत वेद ग्रुप) इलाहाबाद विश्वविद्यालय से किया। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी अनेक डिग्री अर्जित की। इनका विवाह श्रीमती रामप्यारी से हुआ जो आर्य कन्या इण्टर कालेज में प्राध्यापिका रहीं।

श्री श्याम नारायण विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हुये स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय रहे, फलस्वरूप अपना शोधकार्य पूरा नहीं कर सके। श्री श्याम नारायण पण्डित क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, पण्डित रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री व डॉ॰ बाबू राम सक्सेना के प्रिय शिष्यों में से थे।

श्री श्याम नारायण ने पहली नौकरी संस्कृत शिक्षक के पद पर स्थानीय एंग्लो बंगाली इण्टरमीडिएट कालेज से शुरू की। तत्पश्चात् कायस्थ पाठशाला में संस्कृत हिन्दी प्रवक्ता के पद पर कार्य करते हुये, सी॰ एम॰ पी॰ डिग्री कॉलेज की स्थापना के साथ ही संस्कृत प्रवक्ता व अध्यक्ष के रूप में नियुक्त हुये, और 1977 में सेवा निवृत्त हुये। प्रो॰ श्याम नारायण जी की विद्यार्थी जीवन से ही सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्रों में विशेष रुचि थी। वे साम्यवादी विचारधारा के समर्थक थे। उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ के वे संस्थापक सदस्यों में से थे। वे सन् 1960 से 1966 तक उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य रहे। कई वर्षों तक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी कॉलेज टीचर्स एसोसिएशन के महामंत्री व अध्यक्ष भी रहे। श्री श्याम नारायण ने जीवन भर शिक्षकों के कल्याण व उनके अधिकारों की लड़ाई लड़ी। वे आजीवन इसके लिए संघर्ष करते रहे। आज शिक्षकों की जो स्थिति है, उसका बहुत कुछ श्रेय उन्हें जाता है। वे शिक्षक आन्दोलन के अग्रणी नेताओं में थे।

श्री श्याम नारायण का इलाहाबाद के विकास में भी बड़ा योगदान रहा है। गंगा नदी के पुल (शास्त्री पुल) के निर्माण के लिये उन्होंने अथक परिश्रम किया। तत्कालीन देश के बड़े नेताओं के सम्पर्क के कारण उन्हें इस पुल के निर्माण के लिए मजबूर किया। इसके अतिरिक्त गंगापार के ग्रामीण इलाकों में अनेक सड़कें, ट्यूबवेल व शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करवाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

श्री श्याम नारायण हिन्दी, संस्कृत एवं उर्दू के उद्भट विद्वान् थे। इसके अतिरिक्त उन्हें पालि, प्राकृत, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं का भी प्रगाढ़ ज्ञान था। उनके अन्य प्रिय विषय थे—संस्कृति व इतिहास, तथा माइथोलॉजी। वे आजीवन पठन-पाठन करते रहे। श्री श्याम नारायण ने अथक परिश्रम से पण्डित रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री के साथ कायस्थ कौन हैं? प्रथम भाग का प्रकाशन कराया। दूसरे भाग के प्रकाशन को पूर्ण करने के पहले ही वे चल बसे और यह कार्य अधूरा ही रह गया।

उन्होंने अपने सिद्धान्तों के साथ कभी समझौता नहीं किया। उनके ज्ञान, कुशाग्र बुद्धि, संगठन क्षमता को देखते हुये तत्कालीन कई राजनेताओं ने अपने दल में शामिल कर उच्च पद देने की प्रस्तुति भी की परन्तु वे राजी नहीं हुये। अपने सिद्धान्तों से समझौता न करने के कारण उन्हें कई बार व्यक्तिगत हानि भी हुई परन्तु वे कभी भी नहीं झूके। श्री श्याम नारायण लम्बी बीमारी के बाद 62 वर्ष की आयु में 9 जनवरी, 1980 में (मम्फोर्डगंज स्थित निवास पर) स्वर्गवासी हो गये।

(18) तारिणीश झा

शाण्डिल्यगोत्रीय मैथिल ब्राह्मण आचार्य श्री तारिणीश झा का जन्म 3 अप्रैल, 1918 ई॰ को सहरसा, बिहार के पंचगधिया नामक ग्राम में हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था एवं पिता श्री बाबू जी झा ज्योतिषाचार्य थे। आपने व्याकरणाचार्य पं॰ रविनाथ झा एवं वेदान्ताचार्य पं॰ जटेश्वर झा से शिक्षा प्राप्त करके व्याकरणाचार्य एवं वेदान्ताचार्य की उपाधि प्राप्त की। आप भगवान् श्रीकृष्ण के परम् भक्त थे परन्तु गणेश, दुर्गा, शिव, विष्णु एवं सूर्य के भी सच्चे उपासक होने के कारण स्वयं को पंचदेवोपासक कहते थे। संस्कृत महाविद्यालय, वैद्यनाथ धाम-देवघर तथा धर्मसमाज संस्कृत कालेज मुजफ्फरपुर (बिहार) में प्रकांड विद्वानों की छत्र-छाया में परम्परागत रीति से संस्कृत शास्त्रों का अध्ययन एवं अध्यापन 12 वर्षों तक किया। तदनन्तर श्री नारायण संस्कृत महाविद्यालय, पंचगधिया में स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं में सात वर्षों तक संस्कृत शास्त्रों की शिक्षा प्रदान की। आप श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान, लाहौर में वैदिकपदानुक्रम-कोष के सहसम्पादन हेतु सन् 1945 से सन् 1947 ई॰ तक कार्यरत रहे। तदनन्तर राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में पुराण अनुवादक एवं कोषकार के रूप में 30 वर्षों तक अनवरत कार्य करते हुए सेवा निवृत हुए।

श्री तारिणीश झा द्वारा अनूदित, सम्पादित, मौलिक एवं

टीका-टिप्पणी-संवलित ग्रन्थों की एक शृंखला है। जिसमें काव्य, नाटक, शास्त्रीय ग्रन्थ, कोश, पुराण विषयक लगभग 65 कृतियाँ हैं, जिनमें उनके द्वारा रचित दो मौलिक ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं। आपने संस्कृत साहित्य सम्मेलन प्रयाग से निकलने वाली त्रैमासिक संस्कृत पत्रिका "संगमनी" का 25 वर्षों तक सम्पादन भी किया।

आचार्य श्री तारिणीश झा की जन्मभूमि यद्यपि बिहार थी परन्तु कर्मभूमि प्रयाग रही है। सन् 1948 में प्रयाग आगमन के बाद से आप सम्मेलन में कार्य करते हुए प्रयाग में ही साहित्य साधना करते रहे। अवकाश प्राप्ति के पश्चात् आपका आवास प्रयागस्थ झूँसी क्षेत्र में रहा, जहाँ व्याकरण, साहित्य एवं पुराणों का अहर्निश अध्ययन-अध्यापन तथा राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली की चूडामणि योजना के अन्तर्गत, बंगला लिपि में लिखित ब्रह्मसूत्र-गोविन्द भाष्य के सानुवाद हिन्दी रूपान्तरण में संलग्न रहे।

श्री झा की कृतियों पर उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा सन् 1978-1979 तथा सन् 1989 ई॰ में विशिष्ट साहित्य पुरस्कार तथा सन् 1975-76 ई॰ में शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश शासन द्वारा राज्य साहित्यिक पुरस्कार भी दिये जा चुके हैं। श्री झा जी की साहित्य सेवा एवं साधना को देखते हुए उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ने आपको सन् 1998 में पुनः सम्मानित एवं पुरस्कृत किया। आपकी अधिकांश पुस्तकों का प्रकाशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद ने किया है।

पुस्तक सूची–

1. ईशावास्योपनिषद् (सम्पादन) 1965; 2. सुगमवेदचयनम्, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ 1976; 3. ब्रह्मवैवर्तपुराणम् (सम्पूर्ण) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1985, 1989; 4. कूर्मपुराणम् (सम्पूर्ण); 5. बृहन्नारदीयपुराणम् (सम्पूर्ण); 6. अग्निपुराणम् (सम्पूर्ण); 7. ब्रह्मपुराणम् (पूर्वभाग), 8. ब्रह्मसूत्र गोविन्द भाष्य (सानुवाद बांग्ला-हिन्दी रूपान्तरण)। प्रायः सभी ग्रन्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित।

(19) प्रभात शास्त्री

कवि कुटीर निवासी डॉ॰ प्रभात शास्त्री[1] का जन्म 27 मई, 1918 को इलाहाबाद के दारागंज क्षेत्र में पंडित गंगा प्रसाद मिश्र के घर में हुआ। आपके

---

1. समग्र विवरण 'सम्मान सुमन' डॉ॰ प्रभात शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ से साभार, प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन दिल्ली।

पिता संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् और वैदिक कर्मकाण्डी तथा पितामह पंडित काशी राम मिश्र देववाणी के प्रकाण्ड विद्वान् और आयुर्वेद तथा ज्योतिष् के ख्याति प्राप्त आचार्य थे। संस्कृत परम्परा वाले घर में जन्म लेने के कारण संस्कृत विद्यानुरागी गृहजनों ने त्रिवेणी संस्कृत पाठशाला में प्रवेश दिला कर शिक्षारम्भ करा दी। छात्रजीवन में ही विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते हुए प्रभात प्रतियोगिताओं तथा सांस्कृतिक एवं बौद्धिक कार्यक्रमों में विजय प्राप्त करते रहे। संस्कृत की उच्च शिक्षा के लिए धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत महाविद्यालय में अध्ययन करते हुए साहित्याचार्य में प्रथम श्रेणी प्राप्त की।

प्रभात शास्त्री छात्र जीवन से संस्कृत श्लोक रचना में रुचि रखने लगे थे किन्तु शिक्षा समाप्ति के बाद तो सरस संस्कृत छन्द रचना के सिद्धकवि हो गए। उन्होंने संस्कृत को अपनी आजीविका का साधन न बना कर काव्य साधना का साधन बनाया। विद्यार्थी जीवन में अनेक संस्कृत आचार्यों—पंडित मुकुन्द शास्त्री ख्रिस्ते, प्रो० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, पण्डित महादेव शास्त्री आदि का स्नेह प्राप्त था। पंडित मदन मोहन मालवीय तथा राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के सम्पर्क में आने से संस्कृत के साथ-साथ वे हिन्दी की सेवा में भी समर्पित हो गए।

प्रभात शास्त्री को ज्योतिष् में पूर्ण आस्था और पूर्ण ज्ञान था। आयुर्वेद का ज्ञान उन्होंने लोककथाओं, खान-पान, रहन-सहन की विभिन्न शैलियों से बुद्धिगत कर लिया था। कर्मकाण्ड के ऐसे उत्तम आयोजक कि साधु-सन्तों के अखाड़े भी उन्हें अपना पुरोहित स्वीकार करते। आपके संस्कृत वैदुष्य की चर्चा विद्वत् समाज में सर्वदा होती थी। साहित्य प्रेमी होने पर भी वेद-वेदान्त-व्याकरण में आपकी गति अप्रतिहत थी। धाराप्रवाह संस्कृत सम्भाषण, नाटक, कहानी, समीक्षा एवं काव्य रचना उनके पाण्डित्य के आकर्षण थे। इतर भाषाओं यथा अंग्रेज़ी, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू भाषाओं में भी उन्हें सहजता प्राप्त थी। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से उन्होंने उच्चस्तरीय शोध निबन्ध लिख कर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की थी।

हिन्दी के अनुरक्षण के लिए प्रतिबद्ध और सतत अध्यवसायशील प्रभात शास्त्री अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमन्त्री चयनित हुए। वे जिस सुनियोजित रीति से हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्य करते थे, वह स्वयं में एक उदाहरण था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सर्वांगीण विकास और समुन्नयन डॉ० प्रभात शास्त्री का ही भगीरथ प्रयास था। शास्त्री जी हिन्दी को त्याग की, प्रेम की भाषा मानते थे जो राजदरबारों की नहीं, सन्तों की बोली है, जो राज्याश्रय की अपेक्षा किए बिना अक्षयवट के समान लहलहाती है, जिसमें

लोकतन्त्र को समृद्ध करने की अपूर्व सामर्थ्य सन्निहित है। डॉ॰ प्रभात शास्त्री ने आजीवन हिन्दी सेवा का व्रत जिस निष्ठा के साथ पूर्ण किया, उससे हिन्दी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित हुई है।

हिन्दी साहित्यसेवी मनीषियों—महामना मदन मोहन मालवीय और पुरुषोत्तम दास टण्डन ने जिस व्यापक लक्ष्य को हृदय में रख कर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की थी। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी और डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद जैसे राष्ट्रनायक तपस्वी साधकों का आशीर्वाद उसे प्राप्त था, सम्मेलन के उसी मूल्यवान्, न्यास को अक्षुण्ण रखने के लिए डॉ॰ प्रभात शास्त्री प्राणपण से संघर्ष करते रहे। उनके ज्ञान और दृढ़ता का अभिनन्दन करते हुए भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें राष्ट्रपति सम्मान प्रदान किया था।

सम्मेलन के इतिहास में एक ऐसा भी समय आया जब शासकीय प्रबन्ध चक्र के दुश्चक्र में सम्मेलन प्रशासकीय अधिकारी के अधिकार में चला गया। प्रशासक का साहित्य, शिक्षा और कला से कोई सम्बन्ध नहीं था। लगभग पन्द्रह वर्ष तक शासन तन्त्र के अधीन रह कर सम्मेलन हिन्दी प्रचार तथा साहित्य सन्दर्भ से कट गया। सम्मेलन की स्थिति दयनीय हो गई। उस संकट की घड़ी में राष्ट्रभाषा हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार का स्वप्न देखने वाले प्रभात शास्त्री ने जिस पुरुषार्थ का परिचय दिया वह सम्मेलन के इतिहास में अविस्मरणीय है। अपने सीमित संसाधनों के बल पर प्रभात शास्त्री ने सरकार को चुनौती देकर सम्मेलन को मुक्त कराने में सफलता प्राप्त की और सम्मेलन को पुनः एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में खड़ा कर दिया।

डॉ॰ प्रभात शास्त्री ने साहित्यिक समारोह, जयन्तियाँ, गोष्ठियाँ, परीक्षाएँ, भवन विस्तार, संग्रहालय, पुस्तकालय, पत्रिका, प्रकाशन, मुद्रणादि योजनाओं को कार्यान्वित कर सम्मेलन और हिन्दी—दोनों की प्रतिष्ठा बढ़ाई। हिन्दी विश्वविद्यालय की समुचित व्यवस्था करने में, 'राष्ट्रभाषा सन्देश' पत्रिका के सम्पादन में, सम्मेलन मुद्रणालय से विविध ग्रन्थों के प्रकाशन में, सम्मेलन डायरी प्रकाशन द्वारा पूज्य टण्डन जी का सन्देश हिन्दी प्रेमियों तक पहुँचाने में, सम्मेलन की परीक्षाओं को व्यापक बनाने में प्रभात शास्त्री की कार्यपटुता के दर्शन होते थे।

प्रभात शास्त्री कर्मयोगी थे, उनका जीवन व्यस्तता और सरलता का पर्याय था, वे स्वयं में एक संस्था थे। स्वभाव से मृदु और वात्सल्य से परिपूर्ण किन्तु अनुशासित जीवनप्रिय प्रभात शास्त्री के व्यक्तित्व में सन्निष्ठ ब्राह्मणकुल के संस्कार स्पष्ट लक्षित होते थे। तथापि वे उन कट्टरपंथियों से भिन्न थे जो पुरातन को ही आचरणीय और नवीन को गर्हणीय मानते हैं। सम्मेलन के प्रकाशनों में

वे नवलेखकों, नवकवियों और नवलेखन को समान महत्त्व देते थे। सम्मेलन के प्रतिष्ठित मंगलाप्रसाद पारितोषिक पुरस्कार चयन में भी उनकी समदृष्टि रहती थी। भारतीय कला को सुप्रतिष्ठित करने के लिए भी वे आग्रहशील रहते थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों में आयोजित सांस्कृतिक आयोजन उनकी कलाप्रियता को अभिव्यक्त करते थे। आदिवस संगोष्ठी के उपरान्त सायंकाल कवि सम्मेलन तथा राष्ट्रस्तरीय उत्कृष्ट कलाकारों, श्रेष्ठ नृत्यांगनाओं की विविध शैलियों में स्तरीय नृत्यप्रस्तुतियाँ विशेषतः नृत्यविधा के विस्तार के लिए ही वे समायोजित करते थे। कला की रंगमंचीय प्रतिष्ठा के लिए ही उन्होंने नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुकूल 'राजर्षि टण्डन मण्डपम्' सभागृह का निर्माण करवा कर प्रयागवासियों को एक अमूल्य और चिरस्थाई उपहार दिया है।

शास्त्री जी ने संस्कृत तथा हिन्दी की सेवा के उपलक्ष्य में अनेक सम्मान तथा उपाधियों को अर्जित किया। संस्कृत साहित्य में उत्कृष्ट कार्य करने हेतु मानव संसाधन मन्त्रालय, नई देहली द्वारा इन्हें 'शास्त्र चूडामणि अध्येता, फेलोशिप' प्रदान की गई थी। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के जन्मकाल से ही प्रभात शास्त्री शिष्ट परिषद्, कार्यकारिणी सभा तथा वित्त समिति के सदस्य रहे थे। वे इस विश्वविद्यालय की प्राध्यापक चयन समिति तथा सीनेट समिति के सम्मानित सदस्य थे। केन्द्रीय सरकार के सूचना, रेल, शिक्षा, रक्षा, कृषि, उद्योग, आदि मन्त्रालयों की हिन्दी सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में उन्होंने कार्य किया था। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, तथा हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग आदि हिन्दी सेवी संस्थाओं की कार्यकारिणी परिषद के आप सदस्य थे। प्रभात शास्त्री कांग्रेस में भी सक्रिय थे। सन् 1942 के आन्दोलन में उन्होंने भूमिगत रह कर आन्दोलन को सक्रिय बनाने के लिए अनथक परिश्रम किया था।

शास्त्री जी के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कार्य अनेक अप्रकाशित रागकाव्यों का उद्धार करना है। महाकवि कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर संस्कृत में दूत काव्यों के निर्माण की परम्परा आरम्भ हुई थी, उसी प्रकार संस्कृत कवियों ने जयदेव के ही राग, ताल और छन्द का अनुकरण कर विभिन्न गीतिकाव्य ग्रन्थों की रचना की, जो गीतिकाव्य अथवा रागकाव्य के नाम से सम्बोधित हैं। प्रभात शास्त्री ने संस्कृत में निबद्ध लुप्तप्राय रागकाव्यों का पाण्डित्यपूर्ण भूमिकाओं के साथ सम्पादन कर इस प्राचीन साहित्य को पुनर्जीवित किया है।

संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों का संरक्षण व उद्धार करना आपका दायित्व भी था और रुचि भी। संस्कृत साहित्य वैभव का जन सामान्य

के मध्य प्रचार-प्रसार की दृष्टि से 'संगमनी' पत्रिका का आमृत्यु सम्पादन और त्रैमासिक प्रकाशन आपकी क्षमता और योग्यता के परिचायक थे। संस्कृत भाषा के लालित्य-सौन्दर्य-शिल्प-संस्कारित भाव-रसविलास से सम्पन्न स्थिरधर्मी साहित्य की आधारशिला पर उन्होंने अपनी मौलिक सर्जना का प्रासाद खड़ा किया था। उनके द्वारा रचित-सम्पादित साहित्य की प्रस्तुत सूची इसका प्रमाण है—

सम्पादित रागकाव्य—1. गीतगिरीशम्, 2. रामगीतगोविन्दम्, 3. संगीतरघुनन्दनम्, 4. गीतपीतवसनम्, 5. कृष्णगीतम् 6. गीतगौरीपतिः, 7. पार्वतीगीतम्, 8. गीतगंगाधरम्, 9. अमरकाव्यम्, 10. संगीतमाधवम्, 11. रागकाव्यविमर्शः, **नाट्यसाहित्य**—12. चन्द्रकला-नाटिका, 13. छत्रपतिसाम्राज्यम्, 14. प्रतापविजयम्, 15. भाणद्वयम्, 16. समुद्रमन्थनम्, 17. भगवदज्जुकम्, **प्रणयकाव्य**—18. चिमनीचरितम् **खण्डकाव्य**—19. प्रतापविजयम् **काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ**—20. चमत्कारचन्द्रिका, 21. रसप्रदीप, **व्याकरणशास्त्रीय ग्रन्थ**—22. लिंगानुशासनम्, 23. लिंगविशेषविधिः, **दर्शनग्रन्थ**—24. रामगीता, **काव्यसंग्रह**—25. भारतशतकम्, 26. संस्कृतसाहित्यसरणिः 27. संस्कृतसुषमा, **धार्मिक ग्रन्थ**—28. अध्यात्मरामायण की व्यङ्ग्यप्रकाशिनी टीका का सम्पादन, **सामान्य विषय ग्रन्थ**—29. संस्कृत कवयित्रियों का संग्रह, 30. संस्कृत कवियों की प्रशंसा सूक्तियों का संग्रह।

(20) लक्ष्मीकान्त दीक्षित

प्रो० लक्ष्मीकान्त दीक्षित का जन्म 3 जुलाई सन् 1920 में कमलापुर, जिला सीतापुर में हुआ था। आपके पिता का नाम पण्डित गुरुप्रसाद दीक्षित तथा माताका नाम शिवरानी था। आपके बाबा का नाम पण्डित ठाकुर प्रसाद दीक्षित था। आपके अलावा परिवार में पाँच भाई व एक बहन थे। भाईयों में आप सबसे बड़े थे किन्तु बहन आपसे भी बड़ी थीं।

लक्ष्मी कान्त जी ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा कमलापुर के प्राइमरी स्कूल से आरम्भ की। यहाँ से आपने चौथी कक्षा तक की शिक्षा प्राप्त की, बाड़ी नामक स्थानसे मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे की पढ़ाई के लिये आप लखनऊ आ गये। यहाँ क्वीन्स एंग्लो संस्कृत स्कूल से हाईस्कूल की परीक्षा सन् 1938 में उत्तीर्ण की। हाईस्कूल में 73.64% नम्बर लेकर प्रथम स्थान पर रहे। आपने गणित व संस्कृत में विशेष योग्यता प्राप्त की। तत्पश्चात् कान्यकुब्ज इण्टरमीडिएट कालेज लखनऊ से इण्टरमीडिएट की परीक्षा सन् 1940 में माध्यमिक शिक्षा परिषद संयुक्त राज्य, इलाहाबाद से सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की। आपने 71.33% अंक प्राप्त कर संस्कृत, हिन्दी व गणित में विशेष

योग्यता प्राप्त की।

इण्टरमीडिएट करने के बाद कमलापुर के राजा बहादुर श्री सूर्य बख्श सिंह ने प्रो॰ लक्ष्मीकान्त को इलाहाबाद जाकर पढ़ने की प्रेरणा दी। श्री सूर्य बख्श सिंह जी उस समय ऑफिसर ऑफ ब्रिटिश इम्पायर थे। सन् 1942 में आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी॰ ए॰ किया। संस्कृत, अनिवार्य अंग्रेज़ी भाषा, दर्शनशास्त्र व अंग्रेज़ी साहित्य लेकर 62% अंक प्राप्त किये व सर्वोच्च स्थान पर रहे। 1943 में संस्कृत विषय लेकर एम॰ ए॰ प्रथम वर्ष में 67.6% तथा एम॰ ए॰ अन्तिम वर्ष में (सन् 1944) में 68.2% अंक लेकर पुनः एक बार सर्वोच्च स्थान पर रहे।

आपका विवाह सन् 1939 में वसंतपचंमी के दिन चौड़िया, जिला सीतापुर की श्री भगवानदीन अग्निहोत्री की पुत्री कृष्णा कुमारी से हुआ। आपकी छः पुत्रियाँ व एक पुत्र हैं। आपने अपने छोटे भाइयों, पुत्रियों व पुत्र को उच्च शिक्षा दिलवायी तथा शिक्षा के क्षेत्र में सभी को आगे बढ़ाया।

आपने लखीमपुर के युवराज इण्टर कालेज में लगभग तीन साल तथा डिग्री कालेज में चार साल प्रवक्ता के रूप में कार्य किया। सन् 1953 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हुये तथा 28 वर्ष तक अध्ययन व अध्यापन करते हुये रीडर, प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष होकर 30 जून, 81 को सेवा निवृत्त हुये।

प्रोफेसर लक्ष्मीकान्त दीक्षित का संस्कृत में रुझान अपने पिताजी के कारण हुआ। आपके पिता को वेदों, पुराणों व उपनिषदों का उत्तम कोटि का ज्ञान था। संस्कृत के साथ-साथ पण्डित लक्ष्मीकान्त को अंग्रेज़ी का भी अच्छा ज्ञान था। कमला संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य और आचार्यों के साथ आपका काफी समय व्यतीत होता था जहाँ संस्कृत ज्ञान सम्बन्धी समस्याओं को आप बड़ी तत्परता से सुलझाया करते थे।

आप व्याख्यान कक्ष में पढ़ाते समय संस्कृत के श्लोकों को रागात्मक शैली में सुनाया करते थे। उनके विद्यार्थियों के अनुसार आप स्नातक कक्षा में अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक पढ़ाया करते थे। वे "शाकुन्तल' के श्लोकों को छन्दानुसार मधुर कण्ठ से गाते थे तथा एक-एक शब्द का अर्थ हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं में बताते थे। आप उच्चारण पर बहुत ध्यान देते थे, कहाँ गुरु उच्चारण होगा, उसे अलग से बताते थे। अमर कोष तथा कामिल बुल्के की अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोष उन्हें पूरी तरह कण्ठस्थ था। 'शाकुन्तलम्' पढ़ाते समय उर्दू, संस्कृत तथा अंग्रेज़ी में शैली, कीट्स्, शेक्सपीयर तथा वर्ड्सवर्थ की समानान्तर पंक्तियाँ सुनाते थे। उनके अध्यापन की शैली इस प्रकार

थी कि वे कक्षा को संस्कृतमय बना दिया करते थे। आचार्य दीक्षित को हजारों श्लोक याद थे। उनकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि उन्हें शास्त्र हस्तामलकवत् थे। वे शास्त्रों के पारगामी थे। आपके योग्य निर्देशन में कई छात्रों ने पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की।

आपके द्वारा लिखित पुस्तक "छन्दोऽलङ्कार मञ्जूषा" अत्यन्त लोकप्रिय थी। आपने "चन्द्रापीड कथा" का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद भी किया था। माध्यमिक शिक्षा परिषद् की हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में प्रो० दीक्षित के द्वारा सम्पादित 'संस्कृतभारती' पुस्तक समाहित थी।

प्रोफेसर राजेन्द्र मिश्र "अभिराज" ने गुरुकल्प प्रोफेसर लक्ष्मीकान्त दीक्षित की प्रशंसा में एक श्लोक लिखा था जो इस प्रकार है—

वचोवल्ली मल्लीकुसुमसुकुमाराऽधररुचिः
शुचिस्मेरा स्वैराऽऽव्रजरुचिका भाषणकला।
स्फुरद्गीतिः कण्ठे ललितललितो लालनविधिः
गुरुर्लक्ष्मीकान्तः कलयति नितान्तं हृदि मुदम्।।

अर्थात् जिनकी वाणी रूपी लता मल्लीपुष्प के समान कोमल है, जिनकी अधरशोभा ऋजु-मुस्कान से युक्त है, जिनका वार्ताक्रम निर्बन्ध भाव से गतिमान् होने वाला है, जिनके कण्ठ में गीत की खनक है और जिनका वात्सल्य अत्यन्त रुचिकर है—ऐसे गुरुवर्य पं० लक्ष्मीकान्त दीक्षित जी हृदय में आमोद का निरन्तर संचार करते हैं।

(21) रामपाल त्रिपाठी

आचार्य रामपाल त्रिपाठी का जन्म सन् 1920 में लालापुर, बारा तहसील, इलाहाबाद जनपद में हुआ था। उनके पिता श्री भानुदेव त्रिपाठी संस्कृत के विद्वान् थे। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से आचार्य रामपाल त्रिपाठी ने व्याकरण तथा साहित्य विषय में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उनका विवाह श्रीमती चन्द्रकली त्रिपाठी से हुआ था। अध्ययन से निवृत होकर वे सन् 1964 में श्री धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत महाविद्यालय, मालवीय नगर में अध्यापक नियुक्त हुए। इसी पाठशाला में प्राचार्य पद को अनेक वर्षों तक अलंकृत करते हुए सन् 1982 में उन्होंने अवकाश ग्रहण किया। दिसम्बर मास सन् 1996 में वे दिवंगत हुए। उनके पुत्र श्री अशोक त्रिपाठी वर्तमान में प्रयाग में ही निवास करते हैं।

(22) राम प्रताप त्रिपाठी

डॉ० राम प्रताप त्रिपाठी का मूल निवास जौनपुर जनपद और जन्मवर्ष सन्

1920 था। प्रयाग में उनका निवास कीडगंज (थाने वाली रोड) था। उन्होंने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से साहित्य शास्त्री और साहित्य रत्न की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद में वे अनुवादक, सहायक मन्त्री एवं रजिस्ट्रार पदों पर क्रमशः प्रतिष्ठित हुए। सम्मेलन में कार्य करते हुए उन्होंने वायुपुराण, मत्स्यपुराण तथा शिशुपाल वध ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया। उनके कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुए थे। लोकभारती प्रकाशन संस्था ने उनकी अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की थीं, उनकी सूची निम्न है—

1. उपनिषदों की कहानियाँ, साहित्य भवन, प्रयाग, 1948
2. हिन्दी के पाँच नाटक, कृष्णकला पुस्तकमाला, प्रयाग, 1949
3. हमारे गौरव, प्रॉविंशियल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1950
4. वायुमहापुराण (अनुवाद), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1950
5. स्वतन्त्रता के स्तम्भ, इंडियन प्रेस, प्रयाग, 1951
6. हमारी कहानियाँ, अग्रवाल प्रेस, प्रयाग, 1951
7. पुराणों में गंगा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1952
8. सरल संस्कृत व्याकरण और रचना, राजप्रकाशन, इलाहाबाद, 1954, 1966
9. राष्ट्रभाषा के पुजारी, आगरा, 1955
10. पञ्चतन्त्र की कहानियाँ (अनुवाद) 1955
11. पुराणों की अमर कहानियाँ, साहित्य भवन, प्रयाग, 1957, 1959, 1961, 1962
12. हिन्दुओं के व्रत, पर्व और त्यौहार, लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग, 1957, 1966, 1971
13. प्राचीन भारत की झलक, कौशाम्बी प्रकाशन, प्रयाग, 1967
14. उपनिषदों की कहानियाँ (दो भाग) लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग, 1970
15. ऋषियों-मुनियों की कहानियाँ, कौशाम्बी प्रकाशन, प्रयाग, 1970
16. किरातार्जुनीयम्—महाकवि भारवि, हिन्दी अनुवाद लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग, 1970
17. निबन्धालोक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1973
18. कालिदास ग्रन्थावली, किताब महल, इलाहाबाद, 1975
19. शिशुपाल वध, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

20. मत्स्यपुराण (अनुवाद), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

(23) आद्याप्रसाद मिश्र

प्रो० आद्या प्रसाद मिश्र भारतवर्ष के विद्याव्यवसाय में दत्तचित्त अग्रगण्य मनीषियों में मूर्द्धन्य हैं। संस्कृत साहित्य एवं दर्शन के क्षेत्र में उनकी समता का दूसरा विद्वान् मिलना असम्भव तो नहीं, कठिन अवश्य है। अपने समकक्षी विद्वज्जनों, अगणित शिष्यों तथा संस्कृत प्रेमी सुधीजनों के लिए वे आज भी दुर्लभ उद्धरण स्वरूप हैं। एक मेधावी छात्र, सुयोग्य अध्यापक, गरिमामय गुरु, कुशल विभागाध्यक्ष, समर्पित प्रतिकुलपति एवं कुलपति का दायित्व निर्वहण कर वे स्वनिर्मित भवन 'सत्य सदन' में शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस शान्तिपूर्ण जीवन को शान्तिपूर्ण आनन्द में परिणत करता है उनकी रचनाधर्मिता का संसार। अध्ययन और लेखन सदा से उनके जीवन में अवश्यम्भावी रूप से सम्पृक्त थे और आज भी हैं—प्रमाण हैं वे अनेक राष्ट्रस्तरीय पुरस्कार और सम्मान जो उनकी ख्याति को स्थाई बनाए हैं।

प्रो० आद्याप्रसाद मिश्र का जन्म 21 मार्च 1921 को जौनपुर जनपद के स्यन्दिका (सई) नदी के तट स्थित द्रोणीपुर ग्राम में हुआ था। उनके पिता पण्डित रामानन्द मिश्र संस्कृत विद्वान् थे। बाल्यकाल से ही सदा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले आद्याप्रसाद का उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अंकों का अनुपात भी सर्वोच्च स्तर का रहा है। आपने सन् 1942 में बी० ए० परीक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में तथा शास्त्री परीक्षा गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज, बनारस (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) से उत्तीर्ण की। अनन्तर 'शाङ्कर वेदान्त' जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर आपको शोध कार्य करने का अवसर मिला, अत्यल्प समय में शोधकार्य समाप्त कर उच्चस्तरीय ग्रन्थ पर सन् 1950 में डॉक्टरेट ऑफ फिलॉसोफी की उपाधि प्राप्त कर ली। प्रो० मिश्र की पत्नी का नाम श्रीमती फूलमती देवी था।

आपकी प्रथम नियुक्ति सागर विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश तथा द्वितीय नियुक्ति इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग में प्रवक्ता के पद पर हुई। लगभग 20 वर्षों के अध्यापन के पश्चात् आप उसी विभाग में विभागाध्यक्ष के पद पर सन् 1967-1979 तक अधिष्ठित हुए, साथ ही प्रोफेसर पद की गरिमा का भी अनुरक्षण किया। सन् 1975-78 पर्यन्त आपने डीन, कला संकाय के पद को सुशोभित किया। सन् 1978-1979 के दो वर्षों के अन्तराल में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति कुलपति तथा कुलपति के सम्मान्य पद पर आपकी नियुक्ति हुई। इसी अवधि में प्रो० मिश्र ने सम्पूर्णानन्द संस्कृत

विश्वविद्यालय, वाराणसी में सम्मान्य कुलपति पद को भी अलंकृत किया। इस अन्तराल में प्रो॰ मिश्र के निर्देशन में पचास से अधिक शोधार्थियों ने डी॰ फिल्॰ तथा अनेकों ने डी॰ लिट्॰ की उपाधि अर्जित की। आज देश भर में उनके ये शिष्य-शिष्याएँ विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में सर्वोच्च पद पर आसीन तथा विलक्षण प्रतिभा के धनी प्रो॰ मिश्र ने देश के अनेक विश्वविद्यालयों तथा अन्य शैक्षणिक शासकीय/अशासकीय संस्थाओं द्वारा आयोजित संगोष्ठियों में अध्यक्ष पद से विद्वत्तापूर्ण अध्यक्षीय भाषण दिए हैं। सन् 1992 में ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स की शताब्दी आयोजन के अवसर पर आपको धर्म और दर्शन विभाग का अध्यक्ष पद सौंपा गया। सन् 1996 में आप ऑल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस, कलकत्ता के उपाध्यक्ष पद हेतु चयनित हुए। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान तथा एन॰ सी॰ ई॰ आर॰ टी॰ जैसी अनेक संस्थाओं द्वारा आयोजित कार्यशालाओं तथा विद्वद्गोष्ठियों में आपने व्याख्यान प्रस्तुत किये। देश की अनेक संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों में प्रो॰ मिश्र ने चयन समिति के सदस्य के रूप में तो नियुक्तियाँ की ही, त्रिभुवन विश्वविद्यालय काठमाण्डु तथा बाँग्लादेश विश्वविद्यालय, ढाका की चयन समिति के सदस्य के रूप में भी आपको आमन्त्रित किया गया। विश्वविद्यालय में एकेडेमिक काउन्सिल के सदस्य के रूप में अनेक बार आपकी नियुक्ति हुई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, वाल्मीकि रामायण प्रोजेक्ट, वाल्मीकि रामायण संस्थान, संस्कृत अंग्रेज़ी शब्दकोश प्रोजेक्ट, डेकन कॉलेज पूना तथा भोज सेमिनार प्रोजेक्ट, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन की कार्यप्रविधियों की जाँच हेतु आपको जाँच समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा हरियाणा विश्वविद्यालय की पंचवर्षीय निरीक्षण समिति के सदस्य का कार्यभार भी आपको सौंपा गया। संस्कृत पुरस्कार समिति, संस्कृत संस्थान, उत्तर प्रदेश के भी आप निरन्तर तीन वर्षों (सन् 1974-76) तक सदस्य रहे। उत्तर प्रदेश सरकार ने प्रो॰ मिश्र को पाठ्यक्रम राष्ट्रीयकरण समिति, माध्यमिक शिक्षा परिषद् के चेयरमैन पद का दायित्व सौंपा। सन् 1980 में केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा विदेशी वैज्ञानिक शोध कमीशन के चेयरमैन दायित्व निर्वहण का एवं भारत सरकार शिक्षा मन्त्रालय द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार के योग्य विद्वानों का चयन कर उन्हें राष्ट्रपति सम्मान प्रमाणपत्र के लिए नामित करना—यह कार्यभार भी आपने सन् 1996-1998 तक पूरी निष्ठा से निभाया।

प्रो॰ मिश्र संस्कृत के प्रति समर्पण और मनोयोग पूर्वक कार्य करने की शैली के कारण अनेक सम्मानों तथा पुरस्कारों से अनेकशः अभिनन्दित किये

गए। सन् 1982-1985 तक शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार द्वारा 'अलंकार चूडामणि' पुरस्कार; सन् 1985 में संस्कृत अकादमी लखनऊ, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'विशिष्ट विद्वान्' पुरस्कार; सन 1992 में राष्ट्रपति सम्मान; सन् 2002 में उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा 'वाल्मीकि पुरस्कार' आपकी चतुर्दिक प्रतिभा का निदर्शन करते हैं। सर्वाधिक उल्लेख्य है सन् 2007 में भारत सरकार द्वारा आपको 'पद्मश्री' सम्मान से विभूषित किया जाना—यह वस्तुतः इलाहाबाद विश्वविद्यालय के लिए ही नहीं सम्पूर्ण नगर के लिए गौरव का विषय है। सन् 2008 में आपको दिल्ली संस्कृत एकेडमी ने 'महर्षि वेदव्यास सम्मान' तथा सन् 2015 में उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ने 'विश्व भारती' सम्मान प्रदान किया।

आपकी रचनाओं में उल्लेख्य हैं—

1. The development and place of Bhakti in Shankara Vedanta.
2. सांख्य दर्शन की ऐतिहासिक परम्परा
3. सांख्य दर्शन पर्यालोचन
4. सांख्य तत्त्वकौमुदी प्रभा
5. संस्कृत निबन्ध-मन्दाकिनी
6. विष्णु सहस्रनामपर्यालोचनम्
7. भारतीय मनीषा
8. आद्याचतुश्शती
9. विष्णुसहस्रनाम
10. लौकिक शब्दों के संस्कृत पर्याय
11. लघुसिद्धान्तकौमुदी
12. सिद्धान्तकौमुदी (कारक प्रकरण)
13. तर्कसंग्रह
14. कठोपनिषद्
15. ईशावास्योपनिषद्

इनके अतिरिक्त आपके पाणिनीय व्याकरण पर दस महत्त्वपूर्ण मैन्यूअल तथा पचास से भी अधिक शोध निबन्ध राष्ट्रीय स्तर की शोध पत्रिकाओं, जर्नल, अभिनन्दन ग्रन्थों आदि में प्रकाशित हुए। 'विष्णुसहस्रनामपर्यालोचनम्' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ, 400 पृष्ठों का अंग्रेज़ी भाषा में लिखित बृहद् कार्य है जिसकी 110 पृष्ठों की भूमिका प्रो० मिश्र की अत्यन्त गहन विद्वता को प्रमाणित करती है।

प्रो॰ मिश्र केवल अध्यापक नहीं, शोधार्थी नहीं, एक सहृदयसम्पन्न कवि व्यक्तित्व के भी धनी हैं। उनका संस्कृत गीतों का संकलन 'कविता मन्दाकिनी' नाम से प्रकाशित है जिसमें कवि ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की सीमारेखा में अपने भावों को छन्दों में बाँधा हैं। यह नगर का ही नहीं, राष्ट्र का सौभाग्य है कि 'पद्मश्री' प्रो॰ आद्याप्रसाद मिश्र आज भी अपने वैदुष्य और मेधा से संस्कृत जगत् की सेवा कर रहे हैं।

(24) चण्डिकाप्रसाद शुक्ल

आचार्य डॉ॰ चण्डिका प्रसाद शुक्ल प्रयाग के विलक्षण प्रतिभासम्पन्न विद्वान् थे, यह निर्विवाद सत्य है। इनकी लेखनी और अलौकिक मेधा-शक्ति ने गूढ़ शास्त्रीय तत्त्वों के उद्‌घाटन एवं विवेचन में उल्लेखनीय प्रतिभा प्रदर्शित की है। नैषध समालोचना एवं ध्वन्यालोक की दीपशिखा टीका संस्कृत जगत् के लिए आपका विशिष्ट योगदान है।

चण्डिका प्रसाद शुक्ल का जन्म प्रयाग जनपद के गंगातट पर स्थित परवा ग्राम, पोस्ट मदरामुकुन्दपुर में कृष्णात्रेय गोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में 24 अगस्त, सन् 1921 को हुआ था। कालान्तर में आपका निवास प्रयागस्थ दरभंगा कालोनी में हो गया।

वंशपरम्परा में शुक्ल जी के पूर्वज संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् थे। आपके पितृव्य स्व॰ पंडित भानुप्रताप शुक्ल व्याकरणाचार्य थे। आपके पिता स्व॰ पंडित रामकिशोर शुक्ल धर्मशास्त्र, पुराण के ज्ञाता तथा ज्योतिष् एवं काव्य साहित्य के मर्मज्ञ थे। आपकी माता का नाम बच्ची देवी था।

शाक्त धर्मावलम्बी प्रो॰ शुक्ल के गुरु स्व॰ पंडित भानुप्रताप शुक्ल एवं रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री थे। आपने संस्कृत व्याकरण की शिक्षा अपने पितृव्य पंडित भानुप्रताप शुक्ल से प्राप्त की। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा सिरसा संस्कृत पाठशाला एवं लाला राम लाल अग्रवाल हाईस्कूल सिरसा, इलाहाबाद में सम्पन्न हुई। विद्वान् कुल में जन्म प्राप्त करने के कारण संस्कृत विद्या के संस्कार शुक्ल जी पर शैशवकाल से ही पड़ने लगे। फलतः संस्कृत अध्ययन की प्रवृत्ति और रुचि बढ़ना स्वाभाविक था। शुक्ल जी ने गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज, वाराणसी से व्याकरण में मध्यमा एवं साहित्य में आचार्य किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत एवं हिन्दी विषयों में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। संस्कृत के प्रति विशेष रुचि होने के कारण शोधकार्य संस्कृत विषय में किया। आपने 'नैषधचरित' पर डी॰ फिल॰ (सन् 1953) एवं श्रृंगार-रस के शास्त्रीय विकास पर डी॰ लिट्॰ (सन् 1971) की उपाधि इलाहाबाद

विश्वविद्यालय से प्राप्त की।

लोलार्क उपनामधारी प्रो॰ शुक्ल ने अध्यापन कार्य श्री लक्ष्मण विद्यालय देहरादून में प्राचार्य पद को अलंकृत करते हुए प्रारम्भ किया। सन् 1953 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रवक्ता के रूप में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया और सन् 1981 में संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रोफसर एवं विभागाध्यक्ष के पद से अवकाश ग्रहण किया। तदनन्तर राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान दिल्ली द्वारा चूड़ामणि प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति प्राप्त करके स्थानीय गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ में भी अध्यापन किया। उसी समय भारत सरकार द्वारा आकाशवाणी नई दिल्ली में संस्कृत कार्यक्रम की सलाहकार समिति के सम्मानित सदस्य नियुक्त किये गये। वे उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ की कार्यपरिषद् के सदस्य भी मनोनीत किए गए।

आचार्य शुक्ल लेखनी के धनी अतएव ग्रन्थ-रचना निष्णात आचार्य थे। अध्यापन कार्य के साथ-साथ आपका लेखन कार्य भी अबाध गति से चलता रहा फलतः आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। डॉ॰ शुक्ल में हिन्दी तथा संस्कृत दोनों ही भाषाओं में ग्रन्थ रचना एवं काव्य-निर्माण की अद्‌भुत क्षमता थी। विद्यार्थी जीवन में अन्तर्महाविद्यालीय संस्कृत वाद-विवाद, काव्यरचना, निबन्ध लेखन आदि प्रतियोगिताओं में आप सदैव स्वर्ण पदक विजेता रहते थे। आपकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'ध्वन्यालोक' पर प्रसिद्ध 'दीपशिखा' नामक संस्कृत टीका है, जिसने आचार्य शुक्ल की विद्वत्ता की ख्याति को सम्पूर्ण संस्कृत जगत् में सूर्य-रश्मि के समान विस्तारित किया है। "दीपशिखा" में आचार्य ने ध्वन्यालोक के प्रसिद्ध टीकाकार अभिनवगुप्त की लोचन टीका से सर्वथा पृथक् अपनी मान्यता स्थापित की, इस शोध ने संस्कृत साहित्य जगत् को ध्वनि के विषय में एक नूतन एवं यथार्थ दृष्टि दी है। साथ ही यह सिद्ध किया कि अभिनव गुप्त अनेक स्थलों पर आनन्दवर्धन सम्मत अभिप्राय के प्रकाशन में असमर्थ रहे हैं। इस टीका में विगत लगभग एक सहस्र वर्षों से ध्वनि-सिद्धान्त के विषय में चली आ रही ध्वनि सिद्धान्त-विषयक भ्रान्ति उन्मूलन कर सही दिशा दिखाई गई है। आचार्य शुक्ल इसे अपने जीवन की अविस्मरणीय घटना मानते हैं, जिस क्षण ध्वनि का यथार्थ स्वरूप उनकी बुद्धि में उद्‌भासित हुआ।

व्याख्यानों एवं शास्त्रार्थों में प्रो॰ शुक्ल की उपस्थिति संस्कृतानुरागियों के लिए ज्ञानवर्धक होती थी, यह कहना अतिशयोक्ति न होगी। आपके व्याख्यानों की एक सामान्य विशेषता होती थी—गहन एवं गूढ़ विषयों की भी रोचक भाषा में अनेकविध दृष्टान्तों के माध्यम से सरलतम रूप में प्रस्तुति। आपके व्याख्यान अत्यन्त सारगर्भित एवं गम्भीर होते थे। श्रोता सम्मोहित के समान एकाग्रचित्त

होकर ज्ञान ग्रहण करता और गूढ़ विषय स्वतः ही बुद्धि में उपस्थित हो जाता। यही आपकी अध्यापन शैली की भी विशिष्टता रही है। समालोचनात्मक शैली आपके ग्रन्थों के समान व्याख्यानों में भी स्पष्ट परिलक्षित होती है।

आपका व्यक्तित्व अत्यन्त सरल था। विद्वान् होने पर भी आपमें दम्भ का लेश भी दिखाई नहीं पड़ता था। भौतिकता से परे अत्यन्त सरल एवं सादा जीवन था। व्यस्तता होने पर भी विद्यार्थियों के लिए उनके पास समयाभाव कभी नहीं होता था। प्रो॰ शुक्ल के कुशल निर्देशन में 40 छात्र-छात्राओं ने डी॰ फिल्॰ तथा दो ने डी॰ लिट्॰ की उपाधि प्राप्त की जो आज विभिन्न सम्मानित संस्थाओं में उच्चपदासीन हैं। उनके मेधावी शिष्यों में प्रो॰ कमलेश दत्त त्रिपाठी, प्रो॰ भास्कराचार्य त्रिपाठी, प्रो॰ सुरेश चन्द्र पाण्डेय, प्रो॰ मृदुला त्रिपाठी, डॉ॰ आनन्द कुमार श्रीवास्तव, डॉ॰ गिरिजा शंकर शास्त्री, डॉ॰ राममुनि पाण्डेय, प्रो॰ मंजुला जायसवाल, स्वर्गीय डॉ॰ दीपा अग्रवाल डॉ॰ स्मिता अग्रवाल, आदि उल्लेख्य हैं।

महामहिम राष्ट्रपति ने सन् 1996 में प्रो॰ शुक्ल को विशिष्ट संस्कृत विद्वान् के रूप में सम्मानित किया था। उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ने सन् 1996-97 में विशिष्ट विद्वान् पुरस्कार से सम्मानित किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने संस्कृत महामहोपाध्याय तथा ज्योतिर्मठ बदरिकाश्रम ने विद्वन्मार्तण्ड उपाधियों से अलंकृत किया एवं सन् 2008 में उच्च शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश शासन ने सरस्वती सम्मान से आपको सम्मानित किया।

प्रो॰ शुक्ल के विचारों की मौलिकता, प्रतिपादन की अनूठी शैली, अध्यापन की विशिष्टता एवं विषय-ज्ञान के अतल गाम्भीर्य ने विद्यार्थियों को सदैव आकर्षित एवं मुग्ध किया है। विद्या के साथ विनय उनका विशिष्ट परिचय है। उनकी कृतियाँ संस्कृत वाङ्मय की अमूल्य निधि हैं।

प्रो॰ शुक्ल की लेखनी से निःसृत ग्रन्थ रत्न इस प्रकार है—

1. नैषधचरित महाकाव्य (सन् 1950) का हिन्दी अनुवाद। 2. नैषध परिशीलन। 3. शृंगारपरिशीलन (सन् 1983)। 4. माघ कवि (सन् 1983)। 5. हनुमच्चालीसा (संस्कृत पद्यानुवाद)। 6. मुक्ताफल। 7. सूक्ति गंगाधर। 8. वेदमञ्जरी (सम्पादित सन् 1953)। 9. ध्वन्यालोक (दीपशिखा टीका)। प्रो॰ शुक्ल के द्वारा संकलित दो ग्रन्थ-संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची (खण्ड 1, 2) तथा हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची (हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित) संस्कृत जगत् को महनीय एवं परिश्रम साध्य देन है।

आपके द्वारा लिखे गये अनेक शोध-पत्र यथा—"कोऽयं ध्वनिर्नाम

लोचनकारस्वैरिता'' इत्यादि जिज्ञासुओं एवं विद्वज्जगत् के लिए समानरूप से अत्यन्त ज्ञानवर्धक है। संस्कृत जगत का दुर्भाग्य कि प्रो॰ चण्डिका प्रसाद शुक्ल का निधन 94 वर्ष की अवस्था में दिनांक 23 सितम्बर सन् 2014 को हो गया।

(25) सन्त नारायण श्रीवास्तव

गुरुणां गुरुः डॉ॰ सन्त नारायण श्रीवास्तव मूलतः जिला कान्यकुब्ज (कन्नौज) चँदियापुर ग्राम के निवासी थे। आपके पिता श्री मन्नालाल तथा माता श्रीमती रत्नी देवी थीं। लगभग सन् 1923 में लब्धजन्म सन्त नारायण ग्राम में ही आरम्भिक शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् आपने हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट की परीक्षाएँ माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश से प्रदेश में प्रथम श्रेणी-प्रथम स्थान पाकर उत्तीर्ण कीं। उच्चशिक्षा के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर बी॰ ए॰ तथा एम॰ ए॰ की परीक्षा संस्कृत विषय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। पश्चात् 'शाङ्कर वेदान्त' विषयक दर्शन सम्बन्धी शोधकार्य में सम्पृक्त होकर सन् 1958 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हो गए। शांकर वेदान्त के अतिरिक्त डॉ॰ श्रीवास्तव ने गुरुदेव रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री जैसे उच्चस्तरीय विद्वान् से काव्य-दर्शन-व्याकरण, निरुक्त, मीमांसा तथा वेदान्त विषयक अन्यान्य विषयों का गहन ज्ञान प्राप्त किया था। अपने अन्य गुरुवर्य प्रो॰ आद्या प्रसाद मिश्र, अध्यक्ष संस्कृत विभाग के श्रेष्ठ शिष्य के रूप में न्याय-सांख्य-व्याकरण एवं शांकरवेदान्त का परिश्रम पूर्वक अध्ययन किया था। अपनी सतत् स्वाध्यायशील प्रवृत्ति से शांकर वेदान्त पर पूर्णतः अधिकार भी प्राप्त कर लिया था। संस्कृत विभाग की एम॰ ए॰ की कक्षाओं में वेदान्त अध्यापन का दायित्व आपका ही था। उन्होंने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से शास्त्री परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी।

डॉ॰ श्रीवास्तव अपनी योग्यता और प्रतिभा का समग्र श्रेय अपने प्रिय अग्रज श्री सन्तोष नारायण श्रीवास्तव को देते हैं जिनके अप्रतिम स्नेह और प्रोत्साहन के कारण विद्या के क्षेत्र में अपना योगदान कर सके। डॉ॰ सन्त नारायण श्रीवास्तव द्वारा सदानन्द यतीन्द्र कृत 'वेदान्तसार' ग्रन्थ की विद्वज्जगत् में महती प्रतिष्ठा है। उनके द्वारा इस ग्रन्थ पर की गई 'तत्त्वपारिजात' नामक व्याख्या की भूरि-भूरि प्रशंसा है। उनके अपने पुत्र श्री पीयूष श्रीवास्तव के नाम से संचालित प्रकाशन केन्द्र—पीयूष प्रकाशन ने इस पुस्तक को प्रकाशित कर इसे सर्वसुलभ कराया है। डॉ॰ श्रीवास्तव की पीयूष प्रकाशन से ही प्रकाशित 'सांख्यकारिका' की व्याख्या पुस्तक भी गम्भीर आलोचनात्मक शैली में रचित होने से विद्वानों के मध्य लोकप्रिय है।

(26) गोविन्द चन्द्र पाण्डेय

वैदुष्य की पराकाष्ठा का भी अतिक्रमण करने वाले प्रो॰ गोविन्द चन्द्र पाण्डेय[1] का जन्म 30 जुलाई, 1923 को प्रयाग नगर में हुआ था। उनके पिता श्री पीताम्बर दत्त कुमायूँ के प्रतिष्ठित परिवार से थे। कालान्तर में इस परिवार ने काशीपुर को अपना स्थाई आवासीय नगर बना लिया था। प्रो॰ पाण्डेय की माता का नाम श्रीमती भगवती देवी था। प्रो॰ पाण्डेय ने माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की परीक्षा प्रथम श्रेणी में योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण की। सन् 1942 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा तथा सन् 1944 में एम॰ ए॰ इतिहास परीक्षा प्रथम श्रेणी, प्रथम स्थान पाकर उत्तीर्ण की। सन् 1947 में डी॰ फिल्॰ की उपाधि तथा अनन्तर डी॰ लिट्॰ की उपाधि भी अर्जित कर ली।

प्रो॰ पाण्डेय का सौभाग्य था कि उनके शोध निर्देशक गुरु ख्यातिलब्ध प्रो॰ क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय थे। पूज्य गुरु के सान्निध्य में उन्होंने वेद, साहित्य, धर्म, दर्शन और इतिहास की शिक्षा नव्य पद्धति से प्राप्त की थी। प्रो॰ पाण्डेय ने आचार्य रघुवीर दत्त शास्त्री और पं॰ रामशंकर द्विवेदी से व्याकरण तथा साहित्य शास्त्र का अध्ययन प्राच्य पद्धति से किया था। विद्यार्थी जीवन में ही प्रो॰ पाण्डेय पालि, फ्रेंच, प्राकृत, जर्मन, बौद्ध, चीनी, संस्कृत भाषाओं के लेखन और व्यवहार में सिद्ध हो गए थे। ज्ञान की बहुल शाखाएँ—धर्म, दर्शन, विज्ञान, राजनीति, संस्कृति, सौन्दर्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, ज्योतिष्, वेदांग, भाषाविज्ञान, गणित आदि उनके लिए हस्तामलकवत् थीं। अध्ययन क्रम से वे इतिहासज्ञ किन्तु मेधा विशेष से मौलिक चिन्तक थे।

प्रो॰ पाण्डेय ने प्राचीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सन् 1947-1957 पर्यन्त व्याख्याता के पद पर कार्य किया। सन् 1957 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग में प्रोफेसर हो गए। सन् 1962 में राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा टैगोर चेयर पर जयपुर आमन्त्रित किए गए। सन् 1974-1977 पर्यन्त राजस्थान विश्वविद्यालय और सन् 1978-1984 पर्यन्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कुलपति पद पर प्रतिष्ठित रहकर सेवामुक्त हुए।

सन् 1958-1988 तक निरन्तर 30 वर्ष बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अतिरिक्त आचार्य के रूप में गायकवाड़ प्रोफेसर तथा 1985-1988 पर्यन्त आई॰ सी॰ एस॰ आर॰ के प्रथम राष्ट्रीय फेलो नियुक्त हुए। जीवन के अनेक वर्ष वे इलाहाबाद संग्रहालय के चेयरमैन के पद पर कार्य करते रहे। भारतीय

---

1. भारतीय ज्योतिष् में प्रयाग, डॉ॰ गिरजा शंकर शास्त्री, पृ॰ 246 से साभार।

दर्शन अनुसन्धान परिषद् की विज्ञान-दर्शन-संस्कृति इतिहास की सम्पादकत्व योजना के सम्पादक के रूप में दायित्व निर्वाह किया। प्रो॰ पाण्डेय भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला तथा केन्द्रीय उच्चतर तिब्बती अध्ययन संस्थान, सारनाथ के अध्यक्ष पदों का भी दायित्व संभाले रहे।

प्रो॰ गोविन्द चन्द्र पाण्डेय भारत सरकार द्वारा संचालित अनेक शिक्षण समितियों के अध्यक्षादि पदों पर रहकर कार्य करते रहे। देश-विदेश की अनेक विद्वद्गोष्ठियों और सेमिनारों में आपने अध्यक्षता की। प्रखर पाण्डित्य प्रतिभा के धनी प्रो॰ पाण्डेय को अनेक सम्मानों से अलंकृत किया गया। नव नालन्दा महाविहार संस्था द्वारा विद्यावारिधि (सन् 1981); हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा साहित्य वाचस्पति; हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा साहित्य सम्मान; के॰ के॰ बिरला फाउन्डेशन द्वारा शंकर पुरस्कार (सन् 1992); उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा एक लाख इक्यावन हजार रु॰ की धनराशि का सर्वश्रेष्ठ विश्वभारती पुरस्कार (सन् 2002); भारत सरकार द्वारा मीमांसा पुरस्कार, मनीषा सम्मान, मंगलाप्रसाद पुरस्कार, विज्ञान दर्शन पुरस्कार, नरेश मेहता सम्मान, मूर्तिदेवी पुरस्कार, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की महत्तर सदस्यता की मानद उपाधि, लाल बाहदुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय की महामहोपाध्याय उपाधि, साहित्य अकादमी का सर्वोच्च सम्मानादि उल्लेख्य हैं।

प्रो॰ पाण्डेय की विशिष्ट मेधा का आकलन उनके द्वारा रचित महनीय ग्रन्थों के अवलोकन से किया जा सकता है। लगभग 65 शोधपत्र तथा 25 स्तरीय पुस्तकों की विविध गहन विषयसामग्री उनकी विद्वत्ता का प्रमाण है—

दर्शन सम्बन्धित पुस्तकें—1. दर्शन विमर्श, (सन् 1996), वाराणसी; 2. सौन्दर्य दर्शन विमर्श (सन् 1996); 3. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति, (सन् 1997), वाराणसी; 4. न्यायबिन्दु, (सन् 1975), सारनाथ;

संस्कृति तथा धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ—5. बौद्ध धर्म का उद्भव और विकास; 6. आर॰ के॰ जैन स्मृति व्याख्यानमाला; 7. अपोहसिद्धि; 8. जैन राजनीतिक चिन्तन; 9. भारतीय परम्परा के मूलाधार; 10. भारतीय संस्कृति के आधार; 11. भारतीय संस्कृति-सभ्यता की झलक; 12. संस्कृति का अर्थ और विकास प्रक्रिया; 13. मूल्य व्याख्या; 14. इतिहास का स्वभाव और विकास स्वरूप 15. भक्तिदर्शन विमर्श; 16. शंकराचार्य; 17. अग्निबीज; 18. क्षण और लक्षण; 19. अस्ताचलीयम्; 20. महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज; 21. भागीरथी; 22. भारतीय समाज; 23. महिलाएँ; 24. कालिदास और उनका युग; 25. ऋग्वेद का पद्यानुवाद।

(27) चन्द्रभानु त्रिपाठी

डॉ॰ चन्द्रभानु त्रिपाठी का जन्म उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जनपद में कलुषहरा कालिन्दी के सुरम्य कूल पर अवस्थित 'एकडला' नामक ग्राम के एक सुप्रसिद्ध विद्वत् कुल में दिनांक 7 मई, सन् 1925 को हुआ था। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की सामवेदी शाखा के कश्यप गोत्र में उत्पन्न हुए थे। इनके वंश का लगभग सन् 1700 ई॰ से अद्यावधि अविच्छिन्न इतिहास प्राप्त है जिससे स्पष्ट प्रतीत है कि इनके पूर्वजों में एक से एक मूर्धन्य विद्वान्, कवि, वैयाकरण एवं भक्त शिरोमणि महानुभाव रहे हैं। इनमें से कम से कम तीन का उल्लेख यहाँ आवश्यक है—प्रथम आचार्य धरणीधर के शिष्य पं॰ त्रिविक्रम त्रिपाठी जिन्होंने 'रामकीर्तिकुमुदमाला' नामक एक अपूर्व वैदुष्यपूर्ण काव्यग्रन्थ का निर्माण किया। पण्डित जी ने अपने पारिवारिक पुस्तकालय से प्राप्त इस ग्रन्थ के एक हस्तलेख के आधार पर इस ग्रन्थ का सानुवाद सम्पादन सन् 1979 में करके प्रकाशित किया है। इन्हीं त्रिविक्रम त्रिपाठी के भांजे पण्डित बलभद्र त्रिपाठी व्याकरणशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् थे। उन्होंने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर जयादित्य-वामन द्वारा रचित वृत्ति 'काशिका' का सार ग्रहण करते हुए और उसे नवीन उदाहरणों से पल्लवित तथा समृद्ध करते हुए 'काशिकावृत्तिसार' नामक ग्रन्थ की रचना लगभग सन् 1725 के आस पास की जो पण्डित जी द्वारा सुधा टीका से सनाथित होकर प्रयाग के गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित है। पण्डित बलभद्र त्रिपाठी ने 'सारस्वत व्याकरण' का भी एक सरल एवं सुगम संस्करण बनाया था जो 'बलभद्रीय सारस्वत' के नाम से फतेहपुर जनपद में प्रसिद्ध है तथा जिसके आधार पर चिरकाल तक स्थानीय विद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन होता रहा। विद्वान् पूर्वजों की परम्परा में तृतीय महापुरुष थे श्री पण्डित दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी जो एक बड़े संस्कृत विद्यालय के कुलपति तथा अनेक दुर्लभ ग्रन्थों के लेखक एवं संग्राहक थे। इन्हीं के पुस्तकालय का एक छोटा अंश पण्डित जी को दायभाग के रूप में मिला था जिसमें 'रामकीर्तिकुमुदमाला' तथा 'काशिकावृत्तिसार' आदि ग्रन्थ थे। श्री दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी ने रामकीर्तिकुमुदमाला पर एक टिप्पणी भी लिखी थी जिसके कारण ही इस दुरूह ग्रन्थ का अर्थावबोध सुगम हुआ। इन्होंने ज्योतिषशास्त्र पर 'जातकशेखर' नामक ग्रन्थ का भी प्रणयन किया था जो पण्डित जी ने सम्पादित करके सानुवाद सन् 1983 ई॰ में प्रयाग से प्रकाशित किया।

पंडित दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी ने अपने ग्राम एकडला में माता दुर्गा के एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया था जो आज तक अवस्थित है। पंडित चन्द्रभानु त्रिपाठी ने सेवा से अपनी अवकाश-प्राप्ति के अनन्तर इस मन्दिर का बड़ा भव्य

जीर्णोद्धार कराकर पूर्वजों की कीर्ति को समुज्ज्वल किया। प्रत्येक नवरात्र में आप वहाँ जाकर दुर्गासप्तशती का अनवरत पारायण किया करते थे।

पण्डित जी ने प्राच्य एवं पाश्चात्त्य, पारम्परिक और आधुनिक, दोनों ही पद्धतियों से संस्कृत का अध्ययन किया था। आपके पिता थे वेदाचार्य पंडित बालकराम त्रिपाठी, पितामह श्री पंडित राजीवलोचन त्रिपाठी और प्रपितामह श्री पंडित गौरीदत्त त्रिपाठी। पंडित गौरीदत्त त्रिपाठी अनेक शास्त्रों, वेद, एवं साहित्य के विशिष्ट एवं उत्कृष्ट विद्वान् थे, उन्हें विद्या अपनी वंश परम्परा से प्राप्त थी। वे अपने पैतृक ग्राम के परम्परागत पारिवारिक संस्कृत विद्यालय में अध्यापन करते थे। उनके शिष्यों में पंडित गयाप्रसाद मिश्र विशेष विद्वान् और यशस्वी हुए। पंडित चन्द्रभानु त्रिपाठी अपने पितामह से तो अध्ययन नहीं कर पाए किन्तु उनके साक्षात् शिष्य पंडित गयाप्रसाद मिश्र गोवर्द्धन क्षेत्र में विद्यमान थे। उनसे वंशानुगत विद्या प्राप्त हो सकती थी अतः उन्होंने उन्हीं से विद्याध्ययन करने का निश्चय किया और चार वर्ष तक उनके सान्निध्य में विद्यार्जन किया। इन्हीं पंडित मिश्र के पुत्र भारत प्रसिद्ध, मानस एवं भागवत के परम मर्मज्ञ, कवि-शिरोमणि और भक्तप्रवर श्री पंडित सिद्धनाथ मिश्र 'मानस जी' हैं, जो पण्डित जी के साथ अध्ययन करते थे। अपने गुरु पंडित गयाप्रसाद मिश्र के जीवन एवं चरित पर डॉ० त्रिपाठी ने एक छोटा सा काव्य 'श्रीगुरुशतकम्' भी लिखा था—श्रीमद्भागवत-रस-पीयूष।

अस्तु पण्डित जी ने सर्वप्रथम साहित्य विषय लेकर लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् 1948 में आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् अगले ही वर्ष वाराणसेय विश्वविद्यालय से नव्य व्याकरण के आचार्य की पदवी प्राप्त की। साहित्य एवं व्याकरण दोनों ही आपके आजीवन प्रिय शास्त्र रहे और दोनों में समान रूप से उनकी अबाध गति रही। राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्य के प्रति भी अभिरुचि होने के कारण आपने न केवल हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से सन् 1951 में साहित्यरत्न की परीक्षा उत्तीर्ण की अपितु तदुपरान्त सन् 1954 में आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० की उपाधि भी प्राप्त की।

संस्कृत में आपके अप्रतिम वैदुष्य का परम प्रमाण आपकी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राप्त एम० ए० (संस्कृत) की उपाधि है जिसमें आपने सम्पूर्ण विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान उपलब्ध किया। शोधकार्य में अभिरुचि होने के कारण आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से 'व्याकरणदर्शन में स्फोटतत्त्व का स्वरूप' विषय लेकर शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किया जिस पर आपको सन् 1971 में डी० फिल्0 की उपाधि प्रदान की गई।

पण्डित जी ने इलाहाबाद जनपद में जसरा नामक उपनगर में अवस्थित

ईश्वरदीन छेदीलाल इण्टर कालेज से अपना अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया था जहाँ सन् 1947 से सन् 1972 तक आपने सेवा की। तत्पश्चात् आपकी नियुक्ति प्रयाग नगर के इलाहाबाद डिग्री कालेज (तत्कालीन 'अग्रवाल डिग्री कालेज') में हो गई। 13 वर्षों तक सफल एवं यशस्वी अध्यापन कार्य के उपरान्त सन् 1985 में आपने अवकाश ग्रहण किया। अवकाश के पश्चात् वे 'शास्त्रचूडामणि' प्रोफेसर के रूप में स्थानीय गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्रयाग से सम्बद्ध रहे जहाँ उन्होंने मुख्यतः विविध शोधकार्य करते हुए 'काशिकावृत्तिसार' का सम्पादन किया।

पण्डित जी एक योग्य एवं कुशल अध्यापक के रूप में सदैव विख्यात रहे। उनके द्वारा पढ़ाए गये अनेक शिष्य उत्तर प्रदेश सरकार तथा विभिन्न शैक्षिक संस्थानों में उच्च पदों को सुशोभित कर रहे हैं, और आज भी पण्डित जी के प्रति अटूट श्रद्धाभाव रखते हैं।

उनके जैसे देवोपम पुरुष का मिलना आज इस संसार में बहुत दुर्लभ है। क्या वैदुष्य, क्या शील, क्या सौम्य स्वभाव, क्या विनम्रता, क्या सौजन्य—सभी में वे अनुपम थे। एक प्रसन्न, तेजोमय, दीप्त मुखमण्डल जिस पर मुस्कान की छटा हर समय अपनी आभा बिखेरती रहती थी, मधुरवाणी और मृदु व्यवहार जो कठोर से कठोर व्यक्ति को भी पिघला कर उनका अनुरागी बना दे, पूर्णतः अजातशत्रु और विश्वमित्र। कभी किसी की निन्दा किसी ने उनके मुख से नहीं सुनी और न आज तक किसी व्यक्ति को उनके विषय में कोई छोटी बात कहते सुना। सभी विवादों से परे एक महनीय व्यक्तित्व था उनका। शान्त स्वभाव, सरल जीवन, उच्च विचार, समाजसेवा का व्रत, परोपकार में सदैव रुचि और विशेषतः भगवच्चरणों में दृढ़ आस्था, ये ही उनके जीवन के मूल मन्त्र रहे। अपने समय का सदुपयोग या तो उन्होंने सरस्वती की समाराधना में किया या जगन्नियन्ता परम प्रभु की सेवा में।

पण्डित जी सबके शुभेच्छु, सबके भले की कामना करने वाले तथा समाज के प्रत्येक वर्ग का उपकार करने वाले व्यक्ति थे। अनेक स्थलों पर जा-जा कर उन्होंने विवाहादि संस्कार सम्पन्न कराए किन्तु कभी दक्षिणा स्वीकार नहीं की। वे आजीवन संस्कारों के शुद्ध शास्त्रीय रूप के पक्षधर रहे किन्तु उदार विचारों वाले इतने थे कि संस्कार के रूढ़िवादी-परम्परागत, वर्तमान-विरोधी, लौकिक स्वरूप या लोकाचार को बदलने पर भी जोर देते रहे।

पंडित जी की दो पुत्रियाँ (श्रीमती शैल त्रिवेदी एवं श्रीमती सरोज द्विवेदी) एवं एक पुत्र (श्री उपेन्द्र त्रिपाठी) हैं। पुत्रियाँ विवाहित होकर क्रमशः मुम्बई एवं प्रयाग में सुखमय गृहस्थ जीवन यापन कर रही हैं और श्री उपेन्द्र त्रिपाठी शाकुन्तल ऑफसेट के स्वत्वाधिकारी हैं।

पण्डित जी को अपनी प्रायः प्रत्येक पुस्तक पर उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान अथवा मध्य प्रदेश से पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। ग्रन्थों पर सर्वोच्च 'पाणिनि पुरस्कार' उन्हें 'काशिकावृत्तिसार' के सम्पादन एवं उस पर 'सुधा' नामक टीका के प्रणयन पर मिला है। उनके जीवन का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोच्च सम्मान वह था जब भारत के महामहिम राष्ट्रपति महोदय डॉ॰ शंकरदयाल शर्मा ने उन्हें 15 अगस्त, 1994 को राष्ट्रपति भवन में आमन्त्रित कर एक उत्कृष्ट संस्कृत विद्वान् के रूप में सम्मान पत्र प्रदान कर वार्षिक 20,000 रुपये की आजीवन वृत्ति प्रदान की थी।

पण्डित जी का रचना-संसार बहुत विस्तृत है। 25 से अधिक ग्रन्थों की रचना उन्होंने की है, यद्यपि सामान्यतः हर समय स्वास्थ्य ने उनका साथ नहीं दिया। इन पुस्तकों में छात्रोपयोगी पुस्तकें भी हैं और शुद्ध गवेषणापूर्ण भी। वेदों का एक संकलन भी उनका स्नातक कक्षाओं में अध्ययन हेतु पाठ्यक्रम में दीर्घसमय तक निर्धारित रहा। उनकी मौलिक साहित्यिक रचनाओं में 1. गीताली, 2. सुजाता (संस्कृत नाटक), 3. उर्वशी, तथा 4. मङ्गल्या उल्लेखनीय हैं। ज्योतिष् के ग्रन्थों में 5. 'जातकशेखर' तथा व्याकरण के ग्रन्थों में 6. 'स्फोटमीमांसा' तथा 7. 'काशिकावृत्तिसार' को बहुत ख्याति मिली है। अन्तिम समय में उन्होंने यज्ञोपवीत, विवाह तथा श्राद्ध आदि धार्मिक कृत्यों से सम्बन्धित एक पुस्तक 8. 'संस्कारपद्धति' का भी प्रणयन किया था। 9. श्रीमद्भागवत-रस-पीयूष' नाम का ग्रन्थ उनकी अन्तिम रचना है। बड़े भक्ति भाव में डूब कर उन्होंने लगभग दो वर्षों में इसकी रचना की थी। लेकिन श्रीमद्भागवत और उस पर रची गई विभिन्न टीकाओं का पारायण तो वे जीवन भर करते रहे, इसलिये यह कृति उनके जीवन भर के मनन, चिन्तन एवं भक्तिभाव के उद्वेलन का नवनीत है—केवल दो वर्ष की अल्प अवधि में इसका प्रणयन नहीं हो सकता था। इसके प्रथम खण्ड का मुद्रण एवं प्रकाशन उनके जीवन काल में हो गया था। द्वितीय खण्ड का मुद्रण भी समाप्तप्राय था कि एक छोटी सी दुर्घटना के द्वारा काल के क्रूर हाथों ने उन्हें छीन लिया। सम्भवतः भगवान् वासुदेव को भी उन्हें अपने सायुज्य में लेने की बहुत शीघ्रता थी।

उनका यह ग्रन्थ श्रीमद्भागवत रूपी क्षीरसागर का पीयूष है। सहृदय पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि इसका सतत अवलोकन हृदय एवं आत्मा को अमृतोपम शीतलता और आह्लाद प्रदान करता है। अत्यन्त सरल, सरस एवं हृदयावर्जक ढंग से कथा आगे बढ़ती जाती है, न कहीं कथा का प्रवाह रुकता है न उसमें दुरूहता आती है, जब कि श्रीमद्भागवत एक दुरूह रचना है—बड़े-बड़े पण्डित भी कई श्लोकों का अर्थ समझने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इसीलिये प्राचीन उक्ति है—विद्यावतां भागवते परीक्षा, विद्वानों के वैदुष्य की परीक्षा श्रीमद्भागवत

में होती है। किन्तु इस स्वादिष्ट पीयूष का पान तो कोई अल्पज्ञ भी कर सकता है, यह उसके मन और प्राणों को तृप्ति देगा।

ग्रन्थ के प्रत्येक स्कन्ध के प्रारम्भ में जो चित्र दिये गये हैं उनका चुनाव पण्डित जी ने स्वतः किया था। उन चित्रों के नीचे जो संस्कृत श्लोक दिये गये हैं वे पण्डित जी द्वारा स्वतः रचित हैं। पण्डित जी एक सिद्धहस्त एवं सिद्धकण्ठ संस्कृत कवि भी थे, अनेक प्रादेशिक और अखिलभारतीय संस्कृत कवि सम्मेलन उनकी उपस्थिति से गरिमामण्डित होते थे। उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद् के हाईस्कूल के संस्कृत पाठ्यक्रम 'पद्यपीयूष' में भी उनकी एक रचना सम्मिलित है। वे श्रीमद्भागवत के मात्र सरस संक्षिप्त रूपान्तर से कैसे सन्तुष्ट रह सकते थे, अपनी रचनात्मक क्षमता और अपनी कारयित्री प्रतिभा की छाप भी उन्होंने इस ग्रन्थ पर छोड़ी है।

मुजफ्फरपुर में एक यज्ञ समारोह में भाग ले कर लौटते हुए टेम्पो पलट जाने से आपको गर्दन पर बहुत चोट आई जो दिनांक 5 जून, 1999 को उनके गोलोकवास का भी अन्ततः कारण बनी। पण्डित जी अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक सचेत, प्रसन्नचित्त एवं भगवच्चिन्तन में लीन रहे।

(28) महावीर प्रसाद लखेड़ा

पर्वतीय अंचल के जनपद टेहरी (केदारखण्ड) ग्राम जखण्ड में डॉ॰ महावीर प्रसाद लखेड़ा[1] का जन्म 24 मई, सन् 1926 को वैदिक वातावरणमय परिवार में हुआ था। डॉ॰ लखेड़ा के पिता श्री सत्येश्वर प्रसाद लखेड़ा महाराजा गढ़वाल के राजवैद्य थे तथा माता श्रीमती भुवनेश्वरी देवी लखेड़ा थीं। यथासमय श्री लखेड़ा का विवाह श्रीमती मंगला देवी लखेड़ा से हुआ। आपको तीन पुत्रियों 1. श्रीमती उमा देवी शुक्ला 2. श्रीमती संगीता नौटियाल 3. श्रीमती सविता जेटली के पितृत्व का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पर्वतीय नगरों में आरम्भिक विद्यालयीय शिक्षा समाप्त कर उच्च अध्ययन के लिए आपने इलाहाबाद और कलकत्ता विश्वविद्यालयों में प्रवेश लिया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रो॰ क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में डॉ॰ सुनीति कुमार चटर्जी के वैदुष्यपूर्ण संरक्षण में उनकी संस्कृत प्रतिभा निखरी। कलकत्ता विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान में उन्होंने सर्वाधिक अंक अर्जित किए। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने वैदिक मीमांसा पर आपका विशेष सम्मान किया था।

सन् 1962 में आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय में व्याख्याता नियुक्त किए

1. भारतीय ज्योतिष में प्रयाग, डॉ॰ गिरजा शंकर शास्त्री, पृ॰ 259 से साभार।

गए। अध्यापन कार्य के साथ अध्ययन करते हुए आपने संस्कृत विषय की बहुविध शाखाओं-वेद, उपनिषद्, पुराण, साहित्य, व्याकरण, दर्शन, संस्कृति, इतिहास और प्राच्य भाषाओं यथा पहलवी, ईरानी और पालि-प्राकृत, उर्दू में विशेषता अर्जित की। गढ़वाली भाषाविज्ञान के एकमात्र वैज्ञानिक अध्येता आप ही थे। ज्योतिष् में आपकी विशेष रुचि थी, आपका बताया फलादेश प्रायः सत्य घटित होता था।

डॉ॰ लखेड़ा ने 1. अथर्ववेद और गोपथ ब्राह्मण की भूमिका, 2. हिन्दी साहित्य कोश की 20-25 टिप्पणियाँ, 3. वेदों की मीमांसा, 4. मेरी अध्यापिका एनसिया, 5. सिलवाँ लेवी, 6. हेलन किलर 7. मारिस ब्लूम फील्ड के ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद आदि रचनाएँ की है। रिसर्च जर्नल्स में आपके 12 शोध निबन्ध प्रकाशित हैं।

डॉ॰ लखेड़ा विनोदी स्वभाव और मानवीयगुणसमृद्ध पुरुष थे। वे निःस्पृह और निष्कलुष मनोवृतिसम्पन्न थे। अध्ययन की दृष्टि से जो उनके निकट गया, उसे उन्होंने कभी निराश नहीं किया। वे सर्वदा अध्ययन रत रहते और केवल साहित्य चर्चा ही करते थे।

29 नवम्बर, 1982 की प्रभात बेला में हृदयगति रुक जाने से अकस्मात् उनका निधन हो गया। अपनी कतिपय कृतियाँ अधूरी छोड़ कर वे महाप्रयाण के लिए प्रस्थान कर गए।

(29) त्रिविक्रम पति

शिक्षा के जीवित तत्त्व स्वरूप प्रो॰ त्रिविक्रम पति[1] का जन्म उड़ीसा की प्राचीन राजधानी कटक शहर में 23 अक्टूबर सन् 1929 में एक अतिप्रसिद्ध रॉवेनशॉ कालेज में दर्शन शास्त्र के प्रख्यात विद्वान् प्रो॰ रत्नाकरपति के पुत्ररूप में हुआ था। प्रो॰ त्रिविक्रम पति के पितामह (नाना) पण्डित गोपबन्धु दाश उड़ीसा के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और विख्यात रसायन शास्त्री प्रफुल्लचन्द्र रे द्वारा 'उत्कलमणि' की उपाधि से विभूषित थे। पिता प्रो॰ रत्नाकरपति की राँची कॉलेज में चार वर्ष अध्यापक पद पर नियुक्ति की अवधि में राँची के प्राकृतिक सौन्दर्य ने बालक को विशेष आकृष्ट किया। पारिवारिक वातावरण ने उनके ओड़िया और संस्कृत भाषा ज्ञान को मुखर किया और त्रिविक्रम पति पाँच वर्ष की आयु से ही संस्कृत श्लोकों का पाठ तथा चित्रकला में गहन रुचि लेने लगे। पिता के रॉवेनशॉ कालेज, कटक लौटने पर उनकी विधिवत् शिक्षा राणीहाट कटक के

1. अमृत कलश, प्रो॰ टी॰ पति फेलिसिटेशन वाल्यूम, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 2004 से साभार।

स्कूल में आरम्भ हुई। पिता को प्रथम गुरु का सम्मान देने वाले प्रो॰ पति ने मिडिल कक्षा से एम॰ ए॰ तक प्रत्येक कक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता का क्रम बनाए रखा। सन् 1948 में बी॰ ए॰ परीक्षा में उत्कल विश्वविद्यालय में कीर्तिमान बनाने के उपलक्ष्य में प्रो॰ पति ने मयूरभंज स्वर्णपदक, बुडबोर्न पुरस्कार तथा जानकी नाथ बोस पुरस्कार प्राप्त किये। सन् 1950 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम॰ ए॰ गणित की परीक्षा में कला संकाय में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने के उपलक्ष्य में महारानी विक्टोरिया जुबली पदक तथा सर्वश्रेष्ठ अंग्रेज़ी निबन्ध लेखन के लिए पी॰ शेषाद्रि स्वर्ण पदक विजित किया। वाद-विवाद आदि प्रतियोगिताओं में उन्होंने अनेक बार शील्ड तथा प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर विश्वविद्यालय का मान बढ़ाया। श्रीमती क्षमा प्रो॰ पति की जीवनसंगिनी थीं।

एम॰ ए॰ के पश्चात् प्रो॰ पति ने गणित विषय में शोध कार्य प्रो॰ प्यारे लाल श्रीवास्तव (डी॰ फिल्॰, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी) के निर्देशन में किया। भविष्य में कॉम्प्लेक्स वेरिएबल, रियल एण्ड कॉम्प्लेक्स एनालिसिज़ तथा फेरियर एनालिसिज़ विषयों को अपने अध्ययन का क्षेत्र बनाया। सन् 1953 में डी॰ फिल्॰ तथा सन् 1956 में प्रो॰ पति डी॰ एस-सी॰ की श्रेष्ठ उपाधियों से सम्पन्न हो गए। प्रो॰ पति के डी॰ एस-सी॰ के शोधनिबन्ध के परीक्षकद्वय-प्रो॰ ए॰ डेनजॉय तथा फादर सी॰ रैने उनकी मेधा से हतप्रभ थे। उन्हें यह स्वीकार करने में संकोच नहीं था कि इस पाण्डित्यपूर्ण शोधनिबन्ध का एक अध्याय ही किसी भी यूरोपदेशीय यूनिवर्सिटी की डी॰ एस-सी॰ डिग्री दिलाने को पर्याप्त है। प्रो॰ पति को भारत सरकार, उड़ीसा सरकार तथा राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान ने छात्रवृत्तियों से सम्मानित किया।

प्रो॰ पति की प्रथम नियुक्ति गणित विभाग, राज्य इंजीनियरिंग कालेज, उत्कल में हुई। सन् 1958 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के गणित विभाग में प्रोफेसर पद पर नियुक्ति पाकर उन्होंने आकर्षक पद-आकर्षक वेतन का लोभ त्याग कर अपने प्रिय विश्वविद्यालय आना स्वीकार किया। इस नियुक्ति हेतु साक्षात्कार में परीक्षकद्वय प्रो॰ वी॰ वी॰ नरलीकर, अध्यक्ष, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय तथा प्रो॰ एन॰ आर॰ सेन, अध्यक्ष, कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्रो॰ पति के उत्तरों से नितान्त सन्तुष्ट होकर उनके लिए अधिकतम वेतन अनुमन्य किया। प्रो॰ पति भी पूरी निष्ठा और ईमानदारी से छात्र हड़ताल के दिनों में भी कक्षाएँ लेते और छात्रों को कर्त्तव्यरक्षण की शिक्षा देते थे।

सन् 1963 में प्रो॰ टी॰ पति को गणित विभाग की स्थापना के लिए जबलपुर विश्वविद्यालय निमन्त्रित किया गया। उन्होंने मनोयोग से कार्य करते हुए वहाँ स्नातकोत्तर तथा शोधाध्ययन गणित विभाग की स्थापना की। इस केन्द्र ने

उनके निर्देशन में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को प्राप्त किया तथा अनेक विश्वप्रसिद्ध गणितज्ञों का निर्माण किया। जबलपुर में लगभग 9 वर्षों तक दायित्व सम्भालने के पश्चात् वे गणित विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपने पद पर लौट आए। प्रो॰ पति विभाग में शैक्षिक वातावरण बनाने के लिए सहाध्यापकों तथा छात्रों में प्रिय आदर्श थे। प्रो॰ पति शिष्यों के लिए पारस पत्थर थे, वे उन्हें खरा सोना बना देते थे। उनके अनेक योग्यतम छात्रों में कुछ उल्लेख्य हैं—

1. प्रो॰ एच॰ पी॰ दीक्षित, कुलपति, इन्दिरागाँधी मुक्त विश्वविद्यालय।

2. प्रो॰जेड॰यू॰ अहमद, प्रो॰ व अध्यक्ष, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय।

3. प्रो॰ जी॰ दास॰, कुलपति, उत्कल युनिवर्सिटी।

4. प्रो॰ राम नारायन मोहपात्रा, प्रो॰ व अध्यक्ष, बेरुत यूनिवर्सिटी; सेन्ट्रल फ्लोरिडा यूनिवर्सिटी, अमेरिका।

5. प्रो॰ दीप्ति रथ, प्रो॰ व अध्यक्ष, बेरहामपुर विश्वविद्यालय।

6. प्रो॰ इन्दुलता शुक्ला, प्रो॰ व अध्यक्ष, सम्भलपुर विश्वविद्यालय।

7. प्रो॰ प्रेमचन्द्र, प्रो॰ व अध्यक्ष, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन।

8. प्रो॰ वी॰ पी॰ श्रीवास्तव, प्रो॰ व अध्यक्ष, देहली विश्वविद्यालय।

9. प्रो॰ वी॰एस॰ साईं, डीन, फैकेल्टी ऑव बायोसाइन्सेज़, रीवां विश्वविद्यालय।

10. डॉ॰ सुषमा वर्मा—स्वामी गीतानन्द (संन्यास नाम), शिष्या स्वामी चिन्मयानन्द, नागपुर।

प्रो॰ पति के निर्देशन में प्रो॰ पति के चार शिष्य—डी॰ फिल् डिग्री प्राप्त कर भारतीय प्रशसनिक सेवा में उच्चाधिकारी हुए। लगभग 30 शोधकार्य इनके अतिरिक्त किए गए।

प्रो॰ पति ने स्वयं लगभग 125 उच्चस्तरीय शोधपत्रों का लेखन किया जिन्हें विश्वस्तरीय जर्नल्स ने अपने संस्करणों में प्रकाशित किया। प्रो॰ पति प्रति उपकुलपति, कुलपति इलाहाबाद विश्वविद्यालय (सन् 1991) तथा कुलपति श्री जगन्नाथपुरी संस्कृत विश्वविद्यालय, उड़ीसा (सन् 1993-1996) पद पर प्रतिष्ठित हुए। अध्यक्ष, उड़ीसा विज्ञान अकादमी; अध्यक्ष, उड़ीसा गणित संस्थान; संस्थापक, प्रमुख व्यावहारिक गणित संस्थान; भुवनेश्वर पदों को उन्होंने अपनी योग्यता से सुशोभित किया। सम्मानित सदस्य, अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान; अध्यक्ष, गणित सत्र, इण्डियन साइंस कांग्रेस (सन् 1972) आदि में उनके विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान उनकी योग्यता का परिचय देते थे। अपने शताधिक व्याख्यानों में वे गणित, संस्कृत, हिन्दी, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, विज्ञान, दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, संस्कृति आदि विषयों पर सारगर्भित वक्तव्य प्रस्तुत करते

थे। विषय कितना भी नीरस हो, अपने विनोदप्रिय स्वभाव से वे दुरूहतम विषय को सरस बना कर श्रोता को हृदयग्राह्य करवा देते थे।

राजीव गाँधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार, सरला पुरस्कार, देश-रत्न पुरस्कार, मधु स्वाभिमान पुरस्कार उनके सम्मान के परिचायक हैं। इण्डियन जर्नल ऑव मैथेमेटिक्स के संस्थापक सम्पादक; इलाहाबाद गणित संस्थान के सम्मानित सदस्य, उत्तरप्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय के कार्यकारी सदस्य; विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली की अनेक योजनाओं के परामर्शदाता; इलाहाबाद विश्वविद्यालय शैक्षिक प्रबन्ध समिति के सदस्य के पदों पर उन्हें मनोनीत किया गया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के त्रिवर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम की योजना और रूपरेखा उन्हीं ने सफलतापूर्वक सम्पन्न की। विज़िटिंग प्रोफेसर के रूप में विश्व की अनेक यूनिवर्सिटीज़—जीसेन, मारबर्ग, रोम, लन्दन, न्यूयार्क, मैक्मास्टर, अलबेरटा, मनितोबा, पश्चिमी ओनटेरियो तथा कैलगेरी ने उन्हें व्याख्यानों के लिए आमन्त्रित किया। गणित के क्षेत्र में उनके योगदान के उपलक्ष्य में विश्वविद्यालय के कुलाधिपति ने प्रो॰ पति को उनके प्रोफेसर्स कालोनी स्थित आवास में आजीवन रहने की विशेष अनुमति दी थी।

प्रो॰ पति इलाहाबाद प्रवास में सर गंगा नाथ झा छात्रावास में रह कर अध्ययन करते थे। उन दिनों छात्रावास मात्र अध्ययन का केन्द्र होते थे। इन्हीं छात्रावासों से अमरनाथ झा, आर॰ डी॰ रानाडे, मेघनाद साहा, स्वामी सत्यप्रकाश, ए॰ सी॰ बनर्जी, क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय सदृश सुयोग्य, मेधावी छात्र निखर कर निकले थे। प्रो॰ त्रिविक्रम पति भी उन्हीं बुद्धिमान् शिष्यों की पंक्ति में गणित हैं। एक उदाहरण इस विषय में पर्याप्त है—एक बार कुलपति, उत्कल विश्वविद्यालय इलाहाबाद आए तथा प्रो॰ पति से मिलने सर गंगानाथ झा छात्रावास के उनके कक्ष में गए। वे आश्चर्यचकित हो गए यह देख कर कि उनके कमरे की दीवारें गणित के फार्मूलों से भरी थीं। वे मेधावी छात्रों को प्रशासनिक सेवाओं में जाने के लिए हतोत्साहित करते तथा शोध और अध्यापन हेतु प्रेरित करते थे। मूलतः वे राममनोहर लोहिया से प्रभावित थे तथा उन्हें अपना गुरु मानते थे।

प्रो॰ त्रिविक्रम पति स्वयं को त्रि विक्रम—तीन शैक्षिक शक्तियों-गणित, संस्कृत, चित्रकला का अध्येता मानते थे। ओड़िया की अपेक्षाकृत अधिक प्रिय संस्कृत में श्लोक रचना उनको सिद्ध थी। उमरख्य्याम की रुबाइयों का संस्कृत पद्यानुवाद उनकी ही क्षमता थी। चित्रकला में वे प्रवीण थे तथा प्राकृतिक दृश्यों का अंकन सुन्दरता से करते थे। नगर में रिक्शा या पदाति भ्रमण उन्हें विशेष प्रिय था। डाक टिकट संग्रह उनका व्यसन था, इस उद्देश्य से वे नगर की किसी

पुरानी गली में भी डाक टिकट खोजते दिख जाते थे। नगर, विश्वविद्यालय और उत्कल समाज की अनेक सांस्कृतिक संस्थाओं के पदेन वे अध्यक्ष थे तथा मनोरञ्जक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करते थे।

प्रो॰ पति की एकमात्र पुत्र-सन्तान प्रो॰ विश्वम्भर पति, प्रो॰ व अध्यक्ष, गणित विभाग, इण्डियन साइंस इन्स्टीट्यूट, बेंगलौर तथा पुत्री कुमुदिनी पति, डी॰ फिल्॰—स्टेटिसटिक्स, महिलाओं के हित के लिए समर्पित हैं। उनकी दो कनिष्ठ पुत्रियाँ मनस्विनी एवं सरोजिनी भी डी॰ फिल्॰ गणित की योग्यता से सम्पन्न हैं। ऐसी अश्रुत विद्वत्ता सम्पन्न विभूति प्रो॰ त्रिविक्रम पति आज हमारे मध्य नहीं है। सन् 2009 में यह नश्वर शरीर छोड़कर दिवगंत हुए। उनके द्वारा रचित काव्यग्रन्थ—1. भारतगीतिका। 2. पशुपतिस्तुतिः। 3. शृङ्गारलीलावती। 4. गोपबन्धु प्रशस्ति। 5. मधुशतकम्। 6. सरस्वती महिम्नस्तुतिः। 7. रुबाइयत उमर खय्याम। 8. टूरे तारे। 9. प्रश्नपिपासा।

(30) जयशंकर त्रिपाठी

डॉ॰ जयशंकर त्रिपाठी का जन्म इलाहाबाद जनपद के पूर्व दक्षिण कोण में पहाड़ी नदी करुणावती के तट पर माण्डा तहसील के बेदौली ग्राम में प्रसिद्ध त्रिपाठी कुल में 31 दिसम्बर, 1929 को हुआ था। डॉ॰ त्रिपाठी के पिता पण्डित छविनाथ त्रिपाठी संस्कृत पाठशाला में अध्यापक और व्याकरण के विद्वान् थे। डॉ॰ त्रिपाठी के पितामह पं॰ रमापति त्रिपाठी एवं प्रपितामह पं॰ भैरव प्रसाद त्रिपाठी ज्योतिष् और तन्त्रवेत्ता थे। डॉ॰ त्रिपाठी को संस्कृत, तन्त्र, ज्योतिष्, व्याकरण, पौरोहित्य का ज्ञान परम्परा से विरासत में मिला था। डॉ॰ त्रिपाठी की माता जी श्रीमती जगवन्ती देवी कुलीन परिवार से थीं।

डॉ॰ त्रिपाठी के पिता की सन् 1942 में आकस्मिक मृत्यु हो गई थी, जीवन कठिन हो गया था, परिवार का दायित्व भी कन्धों पर था तथापि परिस्थितियों से जूझते हुए आगे बढकर सन् 1943 में वर्नाक्यूलर मिडिल परीक्षा पास की। प्राच्य परम्परा से अध्ययन करते हुए राजकीय संस्कृत महाविद्यालय से शास्त्री, आचार्य (सन् 1954) की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। नव्य पद्धति से अध्ययन की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए एम॰ ए॰ संस्कृत, आगरा विश्वविद्यालय से तथा एम॰ ए॰ हिन्दी, भागलपुर विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण करके सन् 1966 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रो॰ सुरेश चन्द्र पाण्डेय के निर्देशन में 'आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास दर्शन' विषय पर शोध सम्पन्न करके डी॰ फिल्॰ की उपाधि प्राप्त की। अपने साथ-साथ अनुज डॉ॰ शिवशंकर त्रिपाठी की शिक्षा भी निर्बाध सम्पन्न कराई।

डॉ॰ त्रिपाठी सन् 1952 में मंगला प्रसाद हायर सेकेण्डरी स्कूल, बामपुर में शिक्षक नियुक्त हुए। सन् 1955 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद में रु॰ 135.00 मासिक वेतन पर नौकरी करने लगे। सन् 1958 में मिर्जापुर के स्वामी ब्रह्माश्रम के कहने पर एक वर्ष के लिए उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बिहसड़ा, मिर्जापुर में अध्यापन कार्य किया। इस अवधि में स्वामी जी के सान्निध्य में रहकर साधना एवं तन्त्र के क्षेत्र में नैपुण्य प्राप्त किया। पुनः हिन्दी साहित्य सम्मेलन लौट कर सन् 1970 तक सेवारत रहे। सन् 1970 में ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद (सहयुक्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय) में व्याख्याता पद पर नियुक्ति पाकर अध्यापन करते हुए 30 जून, सन् 1990 को ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज से ही रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग के पद से सेवानिवृत्त हुए।

अध्येता और मौलिक चिन्तक डॉ॰ त्रिपाठी का दृष्टिकोण आरम्भ से ही अनुसन्धानात्मक था। पुराण, इतिहास, दर्शन, व्याकरण का अध्ययन आपने पूर्ण श्रम एवं मनोयोग से किया था अतएव लेखनी निर्बाध गति से चलती हुई नवीन तथ्यों का प्रकटीकरण करती थी। स्वभाव से वे 'क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टः' थे। तन्त्र साधना और ज्योतिष् के साहाय्य से वे प्रत्येक आगत का संकट हरण करने की चेष्टा करते थे। डॉ॰ त्रिपाठी की भगवान् शिव में अनन्य श्रद्धा थी। डॉ॰ त्रिपाठी हिन्दी भाषा और साहित्य के भी विशेषज्ञ थे। पुरातत्त्व के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि थी। अपनी बहुज्ञता के लिए विख्यात डॉ॰ त्रिपाठी इलाहाबाद संग्रहालय के फेलो रहे और पुरातत्त्व तथा भारतीय संस्कृति की दृष्टि से अनुशीलनात्मक लेखन कार्य करते रहे। डॉ॰ त्रिपाठी छानबे विद्यापीठ ब्रह्माश्रम मिर्जापुर तथा सहज योग संस्थान, अलोपीबाग के आजीवन सदस्य रहे।

डॉ॰ त्रिपाठी की लेखन-सम्पादन-समीक्षा विधा में रचनाधर्मिता उन्हें उच्च कोटि का लेखक और विद्वान् सिद्ध करती है। वे कवि, नाटककार, आलोचक, निबन्धकार, दार्शनिक तथा साहित्यिक रचनाओं के सूक्ष्म विश्लेषक थे। साहित्य जगत् को उन्होंने अमूल्य निम्न रचनाएँ दीं—

प्राचीन कवियों के कृतित्व विषयक रचनाएँ—1. संस्कृत के कतिपय कवियों का जीवनदर्शन, 2. घटखर्पर का जीवन।

निबन्ध—3. पर्वत से झाँकता वक्र नयन, 4. आठवाँ अमृत, 5. विस्मय के विकल्प 6. पुराणों की लोकभारती, 7. माता भूमि।

नाटक—8. कुरुक्षेत्र का सबेरा (महाभारत से उद्धृत कथा), 9. गाता हुआ पहाड़ (मिर्जापुर की प्रसिद्ध लोककथा पर आधारित), 10. दूध में नहाता जंगल (बालनाटक), 11. गणतन्त्र के अवशेष (यादव गणतन्त्र के पतन की कहानी),

12. अकेले अमृत नहीं पिऊँगा (एकांकी) 13. चरवाहे की वंशी, 14. दूध की नदियाँ।

समीक्षा और काव्यशास्त्र—15. साहित्य का भूगोल, 16. साहित्य में क्ष त्र ज्ञ, 17. साहित्यशास्त्र के नए प्रश्न, 18. कवि का रचना व्यापार और साहित्यशास्त्र, 19. दण्डी। 20. आचार्य दण्डी के काव्यादर्श का विश्लेषणात्मक अध्ययन एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास।

समीक्षात्मक—21. संस्कृत कवियों का रचना संसार।

काव्य रचनाएँ—22. अस्मिता, 23. आंजनेय, 24. मिट्टी के मानव, 25. घाटी के परिसंवाद, 26. धरती के गीत, 27. मातृभूमि के लिए।

राष्ट्र दर्शन—28. प्यारा स्वदेश, 29. गैर चिरागी गाँव, 30. भारतमाता कहाँ रहती है?

व्याख्यात्मक संस्कृत लेखन—31. चन्द्रकला नाटिका, 32. मेघदूत की हिन्दी व्याख्या एवं भूमिका।

चर्चित निबन्ध—33. पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्रः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 34. हिन्दी प्रचार का इतिहास।

सम्पादन—35. मानक हिन्दी कोष, प्रथम खण्ड, 36. वत्सराज कृत हास्यचूडामणि, 37. प्रहसन का सम्पादन और भूमिका लेखन, 38. मध्यधारा (हिन्दी त्रैमासिक। प्रयाग से प्रकाशित तथा पाठकों के मध्य लोकप्रिय शोधस्तरीय संस्कृत पत्रिका), 39. संगमनी का सन् 1965-1970 तक छः वर्षों तक सम्पादन आपकी सम्पादन पटुता का प्रतिफल है। पच्चीस वर्षों के गहन अध्ययन के फलस्वरूप लिखी गई डॉ॰ त्रिपाठी की अन्तिम रचना, 40. संस्कृत साहित्य रचना का इतिहास उन्हें विद्वत्ता के शिखरपुरुष के रूप में स्थापित करती है।

(31) विद्याधर धर्माधिकारी

डॉ॰ विद्याधर धर्माधिकारी का जन्म 16 मार्च, सन् 1931 को दारागंज, प्रयाग में हुआ था। डॉ॰ धर्माधिकारी के पिता का नाम श्री जयकृष्ण पन्त धर्माधिकारी और माता का नाम श्रीमती शची धर्माधिकारी था। डॉ॰ धर्माधिकारी के पिता कर्मकांडी एवं ज्योतिषी थे। डॉ॰ धर्माधिकारी की पत्नी श्रीमती सुनन्दा धर्माधिकारी अनेक वर्षों तक आकाशवाणी के गृहलक्ष्मी कार्यक्रम में वार्ताकार रहीं। डॉ॰ धर्माधिकारी की प्रारम्भिक शिक्षा दारागंज, इलाहाबाद में नारायणदास मन्दिर के सामने 'बाल शाण्डा' नामक मराठी स्कूल में हुई। पश्चात् विद्यागुरु पंडित रामबदन शुक्ल के संरक्षण में त्रिवेणी संस्कृत विद्यालय, दारागंज में संस्कृत अध्ययन आरम्भ हुआ। पाठशालीय संस्कृत शिक्षण की प्रथमा कक्षा से नव्य

व्याकरणाचार्य पर्यन्त सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। इसी के साथ वे हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट की परीक्षाएँ भी प्राइवेट रूप से उत्तीर्ण कर विद्यालयीय शिक्षा में भी पारंगत हो गए।

उच्च शिक्षा के लिए सन् 1959 में बी॰ ए॰ की परीक्षा आगरा विश्वविद्यालय से तथा सन् 1961 में एम॰ ए॰ संस्कृत की परीक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। संस्कृत विभाग में पंडित सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी के निर्देशन में डी॰ फिल्॰ की उपाधि प्राप्त की।

डॉ॰ धर्माधिकारी ने अनेक वर्षों तक श्री निर्वाण वेद महाविद्यालय में अध्यापन का कार्य किया। तत्पश्चात् इलाहाबाद डिग्री कॉलेज में संस्कृत प्रवक्ता व अध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुए सन् 1992 में अवकाश ग्रहण किया। अवकाश ग्रहण करने के अनन्तर भारतीय भाषा केन्द्र, कीडगंज में मराठी भाषा के अध्यापन का कार्य किया।

डॉ॰ धर्माधिकारी ज्योतिष् के प्रकाण्ड विद्वान् थे। फलित ज्योतिष् में आपकी वाणी अक्षरशः सत्य होती थी। पिता से विरासत में हस्तान्तरित इस विद्या का उपयोग वे आजन्म संकटग्रस्त लोगों की सेवा में करते रहे। डॉ॰ धर्माधिकारी पश्चिम भारतीय कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे अतः प्रयाग में बसने वाली महाराष्ट्रीय जनता संस्कारों व धार्मिक कार्यों के अनुष्ठान में उन्हीं को पुरोहित रूप में अमान्त्रित करती थी।

डॉ॰ धर्माधिकारी को उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री जी॰डी॰ तपासे ने वेदपण्डित पुरस्कार तथा उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, .लखनऊ ने 'संस्कृतव्याकरणशास्त्रे नागेशस्य सिद्धान्त;' कृति पर पाणिनि पुरस्कार से सम्मानित किया था।

डॉ॰ धर्माधिकारी आकाशवाणी से अमृतवाणी और वार्ताएँ प्रस्तुत करते थे। उनके द्वारा उच्चारित दुर्गासप्तशती का शुद्ध और मधुर पाठ श्रोता को भावविभोर कर देता था। श्री धर्माधिकारी महाराष्ट्रीय शैली में कर्मकाण्ड कराने में सिद्धहस्त थे। महाराष्ट्र से आने वाले तीर्थयात्री श्री धर्माधिकारी से ही धार्मिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम, विवाह संस्कार, यज्ञोपवीत आदि संस्कार, पूजादि सम्पन्न करवा कर सन्तुष्ट होते थे।

डॉ॰ धर्माधिकारी के अनेक सुयोग्य शिष्य आई॰ ए॰ एस॰ और पी॰ सी॰ एस॰ की सिविल सर्विसेज़ में सफलता प्राप्त कर राष्ट्र को अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। डॉ॰ धर्माधिकारी की पुत्री अपर्णा धर्माधिकारी भी संस्कृत विषय में दक्ष, आई॰ ए॰ एस॰ परीक्षा में सफल होकर भारतीय रेल लेखा सेवा में उच्चाधिकारी हैं। अपर्णा के पति श्री ज्ञानेन्द्र देव त्रिपाठी आई॰ ए॰ एस॰ अधिकारी हैं।

(32) माणिक चन्द्र मिश्र

पण्डित माणिक चन्द्र मिश्र[1] का जन्म 15 जुलाई, सन् 1931 को प्रयाग जनपद के सिकन्दरा पत्रालय के पास सारंगपुर नामक ग्राम में प्रतिष्ठित मिश्र परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री वेणीमाधव मिश्र था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा मातामह श्री रामनिरञ्जन पाण्डेय के संरक्षण में जमुनीपुर में हुई। उन्हीं की प्रेरणा से संस्कृत शिक्षा में रुचि जागृत हुई।

पण्डित माणिक चन्द्र ने प्रथमा की परीक्षा संकीर्तन ब्रह्मचर्याश्रम झूँसी, इलाहाबाद से, मध्यमा परीक्षा सन् 1951 में निर्वाण वेद विद्यालय दारागंज, प्रयाग से, शास्त्री परीक्षा सन् 1958 में निर्वाण वेदविद्यालय से उत्तीर्ण की, सभी परीक्षाओं में वे प्रथम स्थान पर रहे। अन्त में, आगरा विश्वविद्यालय से एम॰ ए॰ संस्कृत साहित्याचार्य की परीक्षा सन् 1961 में उत्तीर्ण की।

अध्ययन काल में पंडित श्री रघुवीर प्रसाद शुक्ल (लम्हुआ, सुल्तानपुर) से फलित ज्योतिष् एवं मुहूर्त ज्ञान की शिक्षा व्यक्तिगत रूप से प्राप्त की। अक्टूबर सन् 1965 में महानिर्वाण वेदविद्यालय दारागंज में प्राचार्य पद पर नियुक्ति पाकर सन् 1994 में सेवामुक्त हुए। वर्तमान में उनका स्थाई आवास ग्राम-बेलवार, पोस्ट-दुबावल, जनपद-इलाहाबाद है। मिश्र जी पुराणों के सम्यक् ज्ञाता हैं, वे श्रीमद्भागवत, शिवपुराण, हरिवंश पुराण व देवी भागवत पुराण के अच्छे व्याख्याकार भी हैं।

पण्डित माणिक चन्द्र मिश्र की विद्वत्ता का सम्मान करते हुए उन्हें समाज एवं शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार ने शिक्षक पुरस्कार (1977-78); हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने संस्कृत महामहोपाध्याय की मानद उपाधि तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने संस्कृत वर्ष (सन् 2000) में संस्कृत विद्वान् के रूप में सम्मानित किया।

पण्डित माणिक चन्द्र मिश्र ने लगभग 15 वर्ष तक महानिर्वाण वेद विद्यालय दारागंज में संस्कृत अकादमी लखनऊ, उत्तर प्रदेश के सौजन्य से संस्कृत सम्मेलनों का आयोजन, संस्कृत नाटकों का मंचन तथा संस्कृत सम्भाषण शिविरों का संचालन किया है। मिश्र जी प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी विनम्र, सत्यवादी, धीर तथा सरलहृदय हैं। आपके व्याख्यान हृदयग्राह्य होते हैं। पण्डित मिश्र के पठन-लेखन कार्यों में उल्लेख्य है—पंडित माखनलाल चतुर्वेदी रचित 'कृष्णार्जुन युद्ध' का संस्कृत अनुवाद। इसका प्रकाशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन की संगमनी पत्रिका में हुआ था।

---

1. भारतीय ज्योतिष् में प्रयाग, डॉ॰ गिरजा शंकर शास्त्री, पृ॰ 287 से साभार।

पञ्चम अध्याय

प्रयाग के समकालीन संस्कृत पण्डित

(1) राजकुमार शुक्ल

प्रयाग के मेधाप्रगत विद्वद्वरेण्य गुरुजनों की परम्परा में पण्डित राजकुमार शुक्ल निस्सन्देह उल्लेख्य हैं। उनका जन्म 15 जनवरी, सन् 1932 को ग्राम-अखयवर (अक्षयवट)पुर, जिला प्रतापगढ़ में हुआ था। उनके पिता पण्डित गयादीन शुक्ल अधिक शिक्षित नहीं थे परन्तु उनके जीवन का अधिकांश भाग आजीविका के लिए सेवाकार्य करते हुए मुम्बई नगरी में बीता। माता श्रीमती रासदुलारी देवी सामान्य ग्राम्य महिला थीं। उनका विवाह बाल्यकाल में श्रीमती प्रभा देवी से हुआ था।

पण्डित राजकुमार शुक्ल की आरम्भिक शिक्षा ग्रामस्थ पाठशाला लाल गोपालगंज से आरम्भ हुई। ग्राम में ही मिडिल क्लास की परीक्षा पास कर अग्रिम अध्ययन हेतु वे इलाहाबाद आ गए। यहाँ केसरवानी विद्यालय से हाई स्कूल परीक्षा तथा गवर्नमेन्ट इण्टर कॉलेज से इण्टर मीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर बी० ए० तथा एम० ए० संस्कृत की परीक्षाएँ निर्बाध पास कर ली। शोध के क्षेत्र में उनके विशेष अध्ययन का क्षेत्र था—आचार्य शंकर रचित बृहदारण्यकोपनिषद् का भाष्य। यहाँ वे अनेक स्वनामधन्य गुरुजनों के सम्पर्क में आए किन्तु उनकी निष्ठा सर्वाधिक श्रेष्ठ गुरुवर्य प्रो० बाबू राम सक्सेना (कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के प्रति रही।

अध्ययन समाप्त कर वे लगभग 6 वर्ष एकाउन्टेन्ट जनरल कार्यालय, इलाहाबाद में सेवाकार्य करते रहे। पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर स्थाई नियुक्ति हो गई। यही से उपाचार्य पद (रीडर) पर रह कर वे सेवा निवृत्त हुए। उनकी शिष्य परम्परा में डॉ० सुधाकराचार्य तथा अन्य अनेक वर्तमान संस्कृत अध्यापक देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों को गौरवान्वित कर रहे हैं। एक मेधावी प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थी के रूप में तो वे संस्कृत विभाग में

प्रसिद्ध थे ही; सहज ग्राह्य अध्यापन शैली के लिए भी छात्रों में ख्याति प्राप्त थे। उनका सुदृढ़ विचार था—कक्षा में अध्यापन से पूर्व स्वयं अध्ययन करना—अपने इस सिद्धान्त का पालन उन्होंने अपने सेवाकाल में नियमित रूप से किया। वे एक और विचारधारा के समर्थक थे—'शतं वद मा लिख' तथापि कठोपनिषद् की छात्रोपयोगी व्याख्या में वे डॉ० वीरेन्द्र सिंह (संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के सहलेखक थे।

(2) सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव

संस्कृत जगत् में दर्शनशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव अपनी अध्यापन शैली एवं सुस्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए विख्यात हैं। संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेज़ी भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार है। प्रवक्ता से लेकर विश्वविद्यालय के उच्चतम पद तक की उनकी यात्रा उनकी मौलिक क्षमता एवं योग्यता की परिचायक है।

डॉ० श्रीवास्तव का जन्म 2 नवम्बर, 1932 को रकसराई गाँव, कौशाम्बी जनपद, उत्तर प्रदेश में हुआ था। प्रो० सुरेशचन्द्र के पिता श्री एस० पी० श्रीवास्तव ग्राम विद्यालय में शिक्षक एवं कृषक तथा माता श्रीमती रमापति देवी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। किशोर वय में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण उनमें व्यावहारिक समझ शीघ्र आ गई थी। जून सन् 1954 में उनका विवाह श्रीमती दयावती देवी के साथ हुआ। पूज्या गुरुमाता एक कुशल गृहिणी होने के साथ-साथ कुशल गायिका भी हैं। प्रो० श्रीवास्तव की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा ग्रामीण विद्यालयों में सम्पन्न हुई। सन् 1950 में माध्यमिक शिक्षा परिषद्, इलाहाबाद से हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी तथा प्रदेश में आठवाँ स्थान पाकर तथा इण्टरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी तथा प्रदेश में द्वितीय स्थान पाकर उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा हेतु उन्होंने इलाहाबाद पदार्पण किया। सन् 1954 में बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी तथा कलासंकाय में तृतीय स्थान पाकर तथा 1956 में एम० ए० संस्कृत की परीक्षा प्रथम् श्रेणी तथा योग्यता क्रम में द्वितीय स्थान अधिगत कर उत्तीर्ण की। सन् 1959 में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से आचार्य की परीक्षा में प्रथम श्रेणी—प्रथम स्थान—स्वर्णपदक अर्जित किया। सन् 1965 में आचार्य विज्ञानभिक्षु के दार्शनिक विचारों पर आलोचनात्मक शोधकार्य महामहोपाध्याय पण्डित उमेश मिश्र के निर्देशन में सम्पन्न करके इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी० फिल्० की उपाधि अर्जित की।

अध्ययन के अनन्तर आप सन् 1956 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में

संस्कृत विभाग में प्रवक्ता नियुक्त हुए। सन् 1973 में आप उपाचार्य (रीडर) बने तथा सन् 1984 में आपका चयन आचार्य (प्रोफेसर) पद के लिए हुआ। आपने सन् 1992 से 1995 तक विभागाध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। इस अवधि में वे दो वर्ष विश्वविद्यालय की परीक्षा इकाई के नियन्त्रक भी रहे। प्रो॰ श्रीवास्तव की सारस्वत यात्रा यहाँ पहुँचकर भी रुकी नहीं और अवकाश-प्राप्ति के अनन्तर वे सन् 1994 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सम्मान्य कुलपति मनोनीत हुए, जहाँ से उन्होंने सन् 1997 में अवकाश ग्रहण किया।

प्रो॰ श्रीवास्तव का वैदुष्य निर्विवाद है। वे केवल एक दार्शनिक ही नहीं, वैयाकरण, ज्योतिर्विद्, समालोचक, दार्शनिक एवं अपूर्व चिन्तक हैं। वे उस परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं जहाँ लेखन की अपेक्षा स्वाध्याय एवं चिन्तन-मनन अधिक श्रेयस्कर समझा जाता है। पाठनीय अंश का अवलोकन करने के पश्चात् कक्षा में जाना उनकी नियति थी। यही कारण है कि उनकी कक्षायें ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ रोचक भी हुआ करती थीं। उनके शिष्यों की एक सुदीर्घ परम्परा है।

प्रो॰ श्रीवास्तव ने अनेक महनीय ग्रन्थों की रचना की, जिनमें प्रमुख हैं—1. आचार्य विज्ञानभिक्षु और भारतीय दर्शन में उनका स्थान 2. योगवार्तिक (अंग्रेज़ी भाषा में) 3. योगसूत्रभाष्यसिद्धि (हिन्दी-संस्कृत व्याख्या) उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा विशिष्ट पुरस्कार (सन् 1975) 4. उडुदायप्रदीपः (ज्योतिष्मती व्याख्या) 5. पञ्चदशी (प्रथम खण्ड) 6. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास 7. वैदिक मन्त्रमञ्जूषा—सह लेखक। इसके अतिरिक्त प्रो॰ श्रीवास्तव के अनेक अनुसन्धानात्मक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं रिसर्च जरनल में प्रकाशित होते रहे हैं।

(3) सुरेश चन्द्र पाण्डेय

प्रो॰ सुरेश चन्द्र पाण्डेय ने 7 अगस्त सन् 1934 को उत्तराखण्ड के अलमोड़ा अंचल में जन्म ग्रहण किया। उन्होंने नैनीताल के राजकीय इण्टर कालेज में प्रवेश लेकर सन् 1950 में हाईस्कूल तथा सन् 1952 में इण्टरमीडिएट की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। उच्च शिक्षा के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर संस्कृत, दर्शन और अंग्रेज़ी विषयों से स्नातक परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त की। परास्नातक अध्ययन हेतु एम॰ ए॰ संस्कृत में प्रवेश लेकर सर्वोच्च अंक प्राप्त कर प्रथम श्रेणी तथा स्वर्णपदक विजेता का गौरव हस्तगत किया। सन् 1965 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से

प्रो॰ चण्डिका प्रसाद शुक्ल के निर्देशन में 'ध्वनि सम्प्रदाय एवं उसकी आलोचनाएँ' विषय पर उत्कृष्ट शोधकार्य सम्पन्न कर डी॰ फिल्॰ की उपाधि प्राप्त की। उनका विवाह श्रीमती आशा पाण्डेय से हुआ था।

प्रो॰ पाण्डेय एम॰ ए॰ कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही सन् 1965 में संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर नियुक्त हो गए थे। सन् 1973 में पदोन्नति पाकर रीडर तथा सन् 1984 में प्रोफेसर पद पर अधिष्ठित हुए। सन् 1992 से सन् 1995 तक आपने अध्यक्ष के रूप में विभाग का कार्यभार भी सफलतापूर्वक वहन किया। सन् 1995 में विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण कर पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी के प्राकृत भाषा साहित्य विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष रहकर श्रमपूर्वक अध्ययनादि कार्य सम्पन्न किये। आपकी अध्ययन निष्ठा और दायित्व के प्रति समर्पण से प्रभावित होकर भारत उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला ने सन् 1997 में आपको विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में नियुक्त कर लिया। सन् 2000 में इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद ने उच्चस्तरीय परामर्श हेतु फेलो के रूप में आपकी सेवाएँ प्राप्त कीं। सन् 2002 में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में ही आप नेशनल फेलो के रूप में दायित्व निर्वाह करते हुए सन् 2005 में अवकाश लेकर इलाहाबाद लौट आए। अपने निजी आवास में रहकर वे इस परिपक्व आयु में स्वयं तो अध्ययनरत रहते ही हैं, छात्रों एवं शोधार्थियों को भी मार्गनिर्देशन करते रहते हैं। उनके विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में लगभग 40 शोधार्थियों ने डी॰ फिल्॰ की उपाधि प्राप्त कर उच्चस्तरीय विद्वत्ता हस्तगत की है।

प्रो॰ पाण्डेय की अध्ययननिष्ठा सर्वविदित है। संस्कृत की अनेक विधाओं पर विभिन्न जर्नल्स में उनके शोध लेख प्रकाशित हुए हैं। उनके परिश्रम की प्रमाण है वे पुस्तकें जो उन्होंने संस्कृत साहित्य जगत् को प्रदान की हैं—1. कादम्बरीसौरभम् (सन् 1956)। 2. ध्वनिसिद्धान्त (सन् 1973, उत्तर प्रदेश शासन ने इसे पुरस्कृत किया था)। 3. कवि और काव्यशास्त्र (राका प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1984)। 4. नलविलास (नाटक, सन् 2002 पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी) प्राकृत ग्रन्थ 5. अलंकारदप्पण (प्राकृत ग्रन्थ का सम्पादन और अनुवाद सन् 2001) 6. Concept of Rasa (सन् 2004) 7. अलंकारशास्त्रकोश।

प्रो॰ पाण्डेय ने अनेक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, विद्वत्संगोष्ठियों, सेमिनारों में मुख्यातिथि, अध्यक्ष, मुख्यवक्ता आदि प्रतिष्ठित पदों पर सहभागिता की है। इस सम्बन्ध में बैंकाक की शिल्पाकार्न युनिवर्सिटी में भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में प्रो॰ पाण्डेय की सहभागिता साहित्य जगत् के लिए गौरव

का विषय है। प्रो॰ पाण्डेय को राष्ट्र की अनेक शैक्षिक संस्थाओं की सदस्यता और अध्यक्षता के भी अवसर प्राप्त हुए हैं। वे भारत सरकार के सेण्ट्रल संस्कृत बोर्ड के सदस्य रहे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की संस्कृत विभाग की बोर्ड ऑव स्टडीज के सदस्य व अध्यक्ष हुए। अन्य अनेक विश्वविद्यालयों की बोर्ड ऑव स्टडीज की सभाओं में वे अनेक बार विशेष आमन्त्रित अतिथि के रूप में बुलाए गए। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली की बोर्ड ऑफ मैनेजमेंट के सदस्य के रूप में तथा सदस्य, वित्तीय समिति के रूप में भी उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण शैक्षिक कार्य सम्पन्न किए।

स्वाभाविक था कि गुरुवर्य की विद्वत्ता के लिए संस्कृत संस्थाएँ उन्हें सम्मानित व पुरस्कृत करतीं। यही हुआ भी—संस्कृत क्षेत्र का सर्वोच्च सम्मान—'राष्ट्रपति सम्मान' उन्हें (2001) प्रदान किया गया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद ने उन्हें 'सस्कृत महामहोपाध्याय' के सम्मान से विभूषित किया। अखिल भारतीय ज्योतिष परिषद् ने उन्हें 'ज्योतिष रत्न' का सम्मान दिया। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान दिल्ली ने 'सर्टिफिकेट ऑव ऑनर' (2000) प्रदान किया। इसी प्रकार सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने भी उन्हें 'सर्टिफिकेट ऑव ऑनर' (1999) दिया है। मीरा स्मृति सम्मान, इलाहाबाद द्वारा वे संस्कृत जगत् को अपनी विशिष्ट शैक्षिक सेवाएँ देने के लिए सम्मानित किए जा चुके हैं। उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ने आपको वैदुष्य के लिए विशिष्ट सम्मान प्रदान किया है। उनके शिष्यों ने उनके प्रति श्रद्धा से भर कर उनके व्यक्तित्व-कर्त्तृत्व को रूपायित करने हेतु उन्हें एक अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया है, जिसका नाम है—'साहित्य शेवधि'।

नितान्त धार्मिक मनोवृत्ति सम्पन्न प्रो॰ पाण्डेय का व्यक्तित्व सरल, निश्छल एवं मृदुल है। असमय में गुरु माँ से वियुक्त होने पर उन्होंने अध्ययन और अध्यवसाय को अपना जीवन लक्ष्य बनाकर एकाकी समय व्यतीत किया है। संस्कृत जगत् को उनका योगदान अविस्मरणीय है जिससे अग्रिम पीढ़ी का अनृण हो सकना असम्भव है।

(4) जगन्नाथ पाठक

कौशिल्यगोत्रीय शाकद्वीपीय ब्राह्मण परिवार में पंडित विश्वनाथ पाठक एवं सुरता देवी के घर 4 अक्टूबर सन् 1934 को जन्मे डॉ॰ जगन्नाथ पाठक सम्प्रति प्रयाग में झूँसी क्षेत्र में निवास कर रहे हैं। मूल रूप में आप बिहार के रोहतास जिले के रहने वाले हैं। आपका जन्म सासाराम (बिहार) के कोठा टोली मोहल्ले में हुआ था। आप वैष्णव धर्म को मानने वाले हैं।

आपकी शिक्षा-दीक्षा गृहनगर की संस्कृत पाठशाला से प्रारम्भ हुई। ब्रह्मदीन स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती (पूर्वाश्रम के पंडित महादेव शास्त्री) आपके गुरु रहे। आपने सन् 1957 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में साहित्य में आचार्य किया। वहीं से सन् 1965 में प्रथम श्रेणी में संस्कृत में एम॰ ए॰ और सन् 1964 में हिन्दी में एम॰ ए॰ किया। संस्कृत एवं हिन्दी के अनेक विद्वानों से आपने अध्ययन किया जिनमें आचार्य बलदेव उपाध्याय, वासुदेव शरण अग्रवाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, सिद्धेश्वर भट्टाचार्य आदि प्रमुख हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ही आपने सन् 1968 में 'धनपालकृत तिलक मञ्जरी का आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर पी-एच॰ डी॰ उपाधि प्राप्त की। संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत, अपभ्रंश, अंग्रेज़ी, बंगला, मैथिली, उर्दू तथा आरम्भिक पर्शियन भाषा के आप ज्ञाता हैं। अलंकार शास्त्र, संस्कृत साहित्य, हिन्दी साहित्य, उर्दू साहित्य आपके विशेष अध्ययन क्षेत्र हैं। डॉ॰ जगन्नाथ पाठक ने अविवाहित रह कर पूर्ण मनोयोग से केवल अध्ययन-अध्यापन किया है।

साहित्य के व्याख्याता के रूप में श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली तथा गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद में आपने प्रवाचक के पद पर कार्य किया। श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू एवं गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद के आप प्राचार्य भी रहे। डॉ॰ जगन्नाथ पाठक ने राष्ट्रीय संग्रहालय, इलाहाबाद में फेलो के रूप में भी कार्य किया।

संस्कृत विद्वत् समाज को उर्दू-फारसी की ग़ज़ल शैली पर आधारित 'द्राक्षारसमयी नूतनमुक्तिक-काव्यरचना' तथा 'नूतनमधुपरिपाक' की रागात्मकता से आनन्द का सञ्चार करने वाले कवि जगन्नाथ पाठक ने अपनी साहित्य साधना से पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त की है। रचनाशैली की दृष्टि से उनके काव्य गीतधारा एवं भावधारा का प्रवर्तन करने के कारण समीक्षकों की दृष्टि में गीतिकाव्य की कोटि में मान्य हैं।

आपके द्वारा संस्कृत एवं हिन्दी में लिखित मौलिक, अनूदित, सम्पादित कार्यों, आलेखों व ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके लगभग 25 शोध पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। आपने अखिल भारतीय स्तर की अनेक संस्कृत संगोष्ठियों में भाग लिया। आपके सफल मार्ग निर्देशन में अनेक शोधार्थियों ने अपने शोधकार्य पूर्ण किये। आपके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर भी अनेक विश्वविद्यालयों में शोधकार्य हो रहे हैं।

हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा प्रकाशित 1. भोजपुरी कोष, एवं उत्तर प्रदेश

संस्कृत संस्थान लखनऊ की ओर से संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास योजना के अन्तर्गत 2. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास के सम्पादक के रूप में आपका योगदान निश्चय ही संस्कृत जगत् के लिए सराहनीय है। 3. दृक् पत्रिका का सम्पादन कर आप अद्यावधि संस्कृत जगत् को आधुनिक संस्कृत रचनाओं से परिचित कराने का महनीय कार्य कर रहे हैं।

आपकी रचना 4. कापिशायनी (सन् 1980) साहित्य अकादमी (नई दिल्ली) पुरस्कार एवं उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी के विशिष्ट पुरस्कार से पुरस्कृत; 5. मृद्वीका पर उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी का विशिष्ट पुरस्कार एवं के॰ के॰ बिरला फाउण्डेशन का प्रथम वाचस्पति पुरस्कार; 6. विच्छित्तिवातायनी (सन् 1991) उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी विशिष्ट पुरस्कार एवं राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा अखिल भारतीय काव्य पुरस्कार से सम्मानित; 7. आर्या सहस्राराम उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी के कालिदास पुरस्कार से पुरस्कृत; 8. पत्रलेखा के पत्र। 9. उमरख़्य्याम की रुबाइयों का संस्कृतानुवाद। 10. पिपासा, 11. ग़ालिबकाव्यम्, 12. ध्वन्यालोक टीका। इसके अतिरिक्त अखिल भारतीय स्तर के संस्कृत कवि सम्मेलनों में काव्य पाठ एवं इलाहाबाद तथा जम्मू आकाशवाणी केन्द्रों से संस्कृत काव्यपाठ, वार्ताओं व नाटकों का प्रसारण प्रायः होता रहता है।

प्रसादगुणमयी शैली के रचनाकार जगन्नाथ पाठक संस्कृत कविता रचना एवं आलोचना में सिद्धहस्त हैं। देश के विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थानों का भ्रमण और अनेक संस्थाओं में आपने व्याख्यान भी दिये हैं। ऐसे उच्च कोटि के विद्वान् श्री जगन्नाथ पाठक को भारत सर्वकार ने राष्ट्रपति सम्मान का गौरव प्रदान किया है।

(5) शिव शंकर त्रिपाठी

डॉ॰ शिव शंकर त्रिपाठी का जन्म पवित्र गंगा नदी व भारत के प्रसिद्ध पर्वत विन्ध्याचल की भूमि में संवत् 1993 विक्रमी के कार्तिक महीने (20 फरवरी, सन् 1936) में हुआ। इसी विन्ध्य पर्वत से लगी हुई तलहटी में गहरवार वंश की माण्डा नाम्नी राजधानी है। माण्डा के समीप की पहाड़ी से करुणावती नाम की नदी उद्गमित होती है जो विन्ध्याचल के निकट गंगा नदी से संगम करती है। इस नदी को आजकल ''करमहा'' कहते हैं। (''करमहा'' नाम मुस्लिम काल में पड़ा होगा। यह करुणावती का अनुवाद है–''करम''= करुणा, 'ह' (प्रत्यय) = वाली।) इसी करुणा नदी के तट पर माण्डा से दो किलोमीटर पश्चिम दिशा में 'बेदौली' नामक ग्राम अवस्थित है। यही दो-ढाई

सौ वर्ष प्राचीन गाँव डॉ॰ शिवशंकर त्रिपाठी जी की जन्मभूमि है। कोई भी राजस्व यहाँ से राज्य को नहीं प्राप्त होता रहा होगा। इसीलिये इस गाँव का नाम बेदौल या बेदौली पड़ा। बेदौली उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जनपद की मेजा तहसील के अन्तर्गत स्थित है।

डॉ॰ त्रिपाठी के पितामह का नाम पण्डित रमापति त्रिपाठी तथा पिता का नाम पण्डित छविनाथ त्रिपाठी था, वे 'झुड़िया' ब्राह्मण थे। आपके पिताश्री संस्कृत एवं ज्योतिष् के प्रकाण्ड विद्वान् एवं व्याकरणशास्त्र के निष्णात पण्डित थे। एक प्रतिष्ठित अध्यापक के रूप में उन्होंने आठ वर्षों तक अध्यापन-कार्य किया था। उनकी माता का नाम जगवन्ती देवी था। आपकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती कमला है। भगवत्कृपा से डॉ॰ शिवशंकर त्रिपाठी को तीन पुत्रों ज्ञानविक्रम, धीरविक्रम और यशविक्रम तथा एकमात्र पुत्री मृणालिनी की प्राप्ति हुई।

ऋषि कल्प व्यक्तित्व श्री शिवशंकर त्रिपाठी बहुमुखी प्रतिभा-प्रसन्न साहित्यकार हैं। इन्होंने अपनी सृजन-क्षमता, मौलिक चिन्तन, अध्यवसाय तथा सौन्दर्य चेतन भाव-भूमि से साहित्य की विविध विधाओं को समृद्ध करने के साथ ही संस्कृत के अनेक काव्य तथा नाटक-ग्रन्थों का साधिकार अनुवाद तथा संपादन किया है।

आपके व्यक्तित्व में अक्खड़ता, अनगढ़ता, फक्कड़ता, उदारता, आस्तिकता, कर्मठता, सरसता, सरलता, समग्रता, स्व–सिद्धान्तवादिता, विचित्रता, नैतिकता, मानवता, निश्छलता, व्यावहारिक मृदुता, सन्तोष, त्याग-वृत्ति तथा मानवीय उत्कर्ष की मंगलकामना सन्निहित है। साहित्य की एकलव्यीय साधना में रत डॉ॰ त्रिपाठी सन्दर्भ तथा सम्बन्ध से परे केवल अपने लक्ष्य-भेदन के प्रति सतत् सचेष्ट हैं। उनका सारस्वत प्रदेय अनुपम है, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण साहित्य सेवा के लिए समर्पित है। साहित्य जगत् में अपने वास्तविक नाम के अतिरिक्त अन्य नामों से भी वे साहित्य रचना करते हैं। टी॰ शास्त्री तथा टी॰ एस॰ शंकर नाम से आप अंग्रेज़ी-लेख लिखते हैं। वर्षों से दारागंजवासी आपको 'दाढ़ी बाबा' कहते हैं।

डॉ॰ शिवशंकर त्रिपाठी का परिवार संस्कारित एवं सुशिक्षित था। शिक्षित कुल में उत्पन्न होने के कारण पिता की छत्र-छाया सदा के लिए हट जाने के बावजूद इनके अग्रज ने शिक्षार्जन की व्यवस्था की। बड़े भाई की पारिवारिक पालन-पोषण की क्षमता तथा भ्रातृ-हित-चिन्तना से त्रिपाठी जी की शिक्षा निर्बाध रूप से चलती रही।

डॉ॰ त्रिपाठी ने प्राइमरी कक्षाओं का अध्ययन अपर प्राइमरी स्कूल माण्डा से, व वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल भारतगंज (इलाहाबाद) से किया। सन् 1949

में मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1952 में डॉ॰ त्रिपाठी ने हाईस्कूल परीक्षा ए॰ बी॰ इण्टर कालेज (अब मंगला प्रसाद इण्टरमीडिएट कालेज) बामपुर, पोस्ट-नहवाई जिला-इलाहाबाद से उत्तीर्ण की। पुनः आप गंगा-यमुना के संगम के समीप अवस्थित तीर्थराज प्रयाग के दारागंज में आ गये। सन् 1954 में राधारमण इण्टर कालेज, दारागंज से आपने इण्टर-परीक्षा उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी॰ ए॰ प्रथम वर्ष के विद्यार्थी के रूप में प्रवेश लिया, लेकिन संस्कृत-परीक्षाओं की व्यस्तता में बी॰ ए॰ प्रथम वर्ष अपूर्ण रह गया।

आपने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से सन् 1958 में व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में सम्मिलित होकर बी॰ ए॰ की परीक्षा उत्तीर्ण की। विश्वविद्यालय के किसी प्रावधानान्तर्गत उन्होंने बी॰ ए॰ प्रथम वर्ष एवं बी॰ ए॰ द्वितीय वर्ष परीक्षा के दोनों वर्षों के प्रश्नपत्र एक साथ दिए।

सत्र 1958-1959 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राचीन इतिहास विषय लेकर आवेदन किया, लेकिन उस परीक्षा के सभी प्रश्नपत्रों में सम्मिलित नहीं हुए। अतः प्राचीन इतिहास से एम॰ ए॰ कर पाने में असमर्थ रहे। वे एक बार पुनः सत्र 1959-1960 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी-साहित्य में एम॰ ए॰ करने के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत कर परीक्षा में सम्मिलित हुए और एम॰ ए॰ प्रथम वर्ष के सभी प्रश्नपत्रों की परीक्षा देकर प्रथम वर्ष पूरा तो कर लिया, लेकिन परिस्थितजन्य स्वभाव एवं इच्छा के अनुरूप एम॰ ए॰, द्वितीय वर्ष (अंग्रेज़ी-साहित्य) की परीक्षा नहीं दी।

अपने अग्रज स्व॰ डॉ॰जय शंकर त्रिपाठी (प्राध्यापक, ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद) की इच्छा एवं परामर्शानुसार शिवशंकर त्रिपाठी ने सावित्री संस्कृत पाठशाला बक्शीखुर्द, दारागंज में अध्यापक के रूप में कार्यरत रहकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में पालि भाषा एवं साहित्य लेकर सन् 1969 में एम॰ ए॰ पूर्ण किया। पालि से एम॰ ए॰ करने वालों की योग्यता सूची में आप द्वितीय स्थान पर विराजित हुए। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से आपने साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त की।

डॉ॰ महावीर प्रसाद लखेड़ा के कुशल निर्देशन में डॉ॰ त्रिपाठी ने शोध-कार्य का शुभारम्भ किया। अपनी परिश्रमशीलता, विद्वत्ता, संकल्प एवं तीक्ष्ण शोध-दृष्टि के बल पर डॉ॰ त्रिपाठी ने सन् 1975 में 'खुद्दक निकाय का साहित्यिक अध्ययन' नामक विषय पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करके इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी॰ फिल्॰ की उपाधि अर्जित की। डॉ॰ शिवशंकर त्रिपाठी के इस अनुसन्धान के फलस्वरूप प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को पालि भाषा-साहित्य के

काव्यशास्त्रीय पक्ष पर लिखित प्रथम और अब तक का अन्तिम शोध-प्रबन्ध होने का गौरव प्राप्त है।

आपने सन् 1964 से 1980 तक उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहायक मन्त्री के पद पर आसीन होकर सम्मेलन को गौरवान्वित किया। इसके अतिरिक्त आप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से किसी-न-किसी रूप में जुड़े रहे और लगन के साथ उसके क्रिया-कलापों में रुचि लेते रहे। हिन्दी भाषा–साहित्य की प्रकृति की सूक्ष्म एवं अच्छी पकड़ होने के कारण सन् 1976 में रेल मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा डी॰ एल॰ डब्ल्यू॰, वाराणसी की राजभाषा कार्यान्वयन समिति में मनोनीत सदस्य के रूप में आप अपने कर्त्तव्य का सम्पादन करते रहे।

सन् 1976 में उत्तर प्रदेश माध्यमिक विद्यालयों में नियुक्ति हेतु आपको अध्यापक चयन समिति का विशिष्ट सदस्य बनाकर नियुक्ति-कार्य सम्पन्न किया गया। डॉ॰ त्रिपाठी 'संकेत' साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था, प्रयाग के संरक्षक रहे हैं। "सुल्तानपुर का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहास" : संग्रथन-योजना में आपने सलाहकार के रूप में नियुक्त रहकर सामाजिक सेवा को निरन्तरता दी है। एक बार आप उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहायक सचिव भी हुए थे। उस समय यह प्रदेशीय सम्मेलन परीक्षाएँ संचालित करता था। उन परीक्षाओं के संचालन में तथा हिन्दी के प्रचार-प्रसारार्थ डॉ॰ त्रिपाठी ने अथक कार्य किया। सम्प्रति, आप भारतीय मनीषा सूत्रम्, दारागंज, इलाहाबाद के सूत्र संवाहक है। इसके साथ ही आप इस समय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में मानदेय संपादक के पद पर कार्य कर रहे हैं।

डॉ॰ त्रिपाठी ने स्वयं को किसी परिधि या वाद के दायरे में नहीं बाँधा। डॉ॰ त्रिपाठी की रचना दृष्टि व्यवहारिक है। बात-चीत में भी डॉ॰ त्रिपाठी कहते हैं—'वही रचना देश और काल को प्रभावित कर सकती है जो मानवीय सरोकारों को अपने में समेटे हो'। साहित्य की विविध विधाओं में डॉ॰ त्रिपाठी की रचना-धर्मिता देखने को मिलती है।

डॉ॰ त्रिपाठी की विविध विषयों से सम्बद्ध तीस से अधिक कृतियां साहित्य-जगत की निधि बन चुकी हैं—

1. कवियों की लोक-दृष्टि। 2. केसर की महक। 3. अतीत की रेखाएँ। 4. रक्त के अक्षर। 4. जयघोष (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत)। 6. तुलसी महान् (पुरस्कृत)। 7. सत्य की विजय। 8. शृंगार विलासिनी। (संस्कृत साहित्य अकादमी उत्तर प्रदेश से पुरस्कृत)। 9. भट्टवंशकाव्यम् (संस्कृत साहित्य अकादमी उत्तर प्रदेश से पुरस्कृत)। 'गीतशङ्कर' संस्कृत गीत काव्य का हिन्दी

अनुवाद (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ द्वारा-पुरस्कृत) 10. संगीत-माधवम् 11. शृङ्गारमाला संपादन, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी अनुवाद। (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ द्वारा पुरस्कृत)। 12. थेरी गाथा समग्ग उत्तर प्रदेश संस्कृत-संस्थान द्वारा पुरस्कृत 13. चीन रामायणम् 14. रामकर्णामृतम् (सम्पादन)। 15. काव्यशास्त्र एवं पालि साहित्य 16. अथ-अनुक्रम 17. राष्ट्र-चिन्तन : सांस्कृतिक-इतिहास-दृष्टि 18. कथासरित्सागर 19. जातक-अङ्कथा 20. पालि-हिन्दी-संस्कृत-कोश (पाँच खण्डों का सम्पादन) 21. आचार्य विश्वनाथकृत चन्द्रकला नाटिका देवभाषा प्रकाशन, दारागंज, इलाहाबाद-6, 1964 22. मूलशङ्कर याज्ञिक कृत छत्रपतिसाम्राज्यम् 1966 23. ईशदत्त पाण्डेय 'श्रीश' कृत प्रतापविजयम् 1962 24. वरुरुचि कोश : (सम्पादन) भारतीय मनीषा-सूत्रम्, दारागंज, इलाहाबाद-6, 2009 25. उन्मत्तकवित्कशप्रहसनम् : (सम्पादन) GUELF University, Ontarlo, Canada के प्रो॰ ओ॰ पी॰ द्विवेदी द्वारा सम्पादित पुस्तक WORLD RELIGIONS AND THE ENVIRONMENT में BUDDHISM AND THE ECOLOGICAL CRISIS शीर्षक शोध-लेख समायोजित। डॉ॰ राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद में शिवशङ्कर त्रिपाठी : व्यक्ति एवं कृतित्व विषय पर शोध सम्पन्न।

सम्प्रति डॉ॰ त्रिपाठी 'कालिदास' पर आधारित उपन्यास, पराक्रमांक सम्राट् समुद्रगुप्त पर काव्य तथा **प्रयाग की आत्मकथा** शीर्षक से प्रयाग का सांस्कृतिक इतिहास लिखने में लगे हैं।

डॉ॰ त्रिपाठी स्व संसाधनों में **संगमनी** (संस्कृत त्रैमासिकी) का सम्पादन प्रकाशन कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान से वे पाँच बार एवं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'जयशंङ्कर प्रसाद अनुशंसा पुरस्कार' एवं 'साहित्य भूषण-सम्मान' प्राप्त हैं। संस्कृत-पत्रकारिता के लिए वे महर्षि नारद सम्मान से भी सम्मानित भी हो चुके हैं।

(6) ज्ञान देवी श्रीवास्तव

अपने धीर-गम्भीर स्वभाव के लिए विख्यात डॉ॰ ज्ञान देवी वास्तव में अन्वर्थनामा हैं। 'यथा नाम तथा गुण' उक्ति उनमें पूर्णतया चरितार्थ होती है। उनका जन्म 5 जुलाई, 1939 ई॰ को हुआ था। प्रो॰ ज्ञान देवी ने सन् 1953 में माध्यमिक शिक्षा परिषद्, इलाहाबाद से हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी, प्रदेश में तृतीय स्थान तथा महिलाओं में प्रथम स्थान पाकर तथा सन् 1955 में इण्टरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी तथा प्रदेश में ग्यारहवाँ स्थान अर्जित कर

उत्तीर्ण की। उन्होंने सन् 1965 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में स्नातकोत्तर की उपाधि प्रथम श्रेणी एवं प्रथम स्थान में अर्जित की। इसी के साथ उन्होंने सम्पूर्ण कला संकाय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। तदनन्तर वे प्रख्यात विद्वान् प्रो॰ आद्या प्रसाद मिश्र के निर्देशन में 'संस्कृत काव्यशास्त्र तथा महिम भट्ट' जैसे दुरूह विषय पर शोधकार्य में संलग्न हो गयीं। उनके शोध प्रबन्ध की विज्ञ परीक्षकों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी। एक परीक्षक ने तो शोध प्रबन्ध के विषय में लिखा कि 'जिस गहन ग्रन्थ के विषय में शास्त्रीय चर्चा का प्रसंग उठने पर काशी की पण्डितमण्डली में कँपकँपी छूटती थी, उस पर ज्ञान देवी श्रीवास्तव ने बड़े अधिकारपूर्ण ढंग से अत्यन्त उत्कृष्ट एवं सूक्ष्म समीक्षात्मक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है।'

डॉ॰ ज्ञानदेवी की नियुक्ति सन् 1967 में संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। आपने कालान्तर में रीडर एवं विभागाध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। आपके निर्देशन में विविध काव्यशास्त्रीय एवं नाट्यशास्त्रीय विषयों पर इक्कीस छात्र-छात्राओं ने गवेषणापूर्ण कार्य किये। आपके द्वारा प्रणीत दो ग्रन्थ मानक हैं—

1. संस्कृत काव्यशास्त्र तथा महिम भट्ट 2. नाट्यशास्त्रीय परम्परा तथा दशरूपक। इनके अतिरिक्त शास्त्रीय विषयों से सम्बद्ध आपके अनेक लेख प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

(7) कमलेश दत्त त्रिपाठी

प्रो॰ कमलेश दत्त त्रिपाठी का जन्म 8 जुलाई 1938 को इलाहाबाद नगर में हुआ था। आज वे संस्कृत की प्रत्येक विधा के प्रतिष्ठित आचार्य हैं। उन्होंने स्नातक तथा स्नातकोत्तर परीक्षा (संस्कृत विषय) इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी, प्रथम स्थान से उत्तीर्ण की। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही डी॰ फिल्॰ की उपाधि अर्जित करने के उपरान्त व्याकरण और धर्मशास्त्र की आचार्य परीक्षा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। सम्प्रति वे बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के धर्म आगम विभाग में इमेरिटस संस्कृत प्रोफेसर पद को अलंकृत कर रहे हैं।

परीक्षाओं में योग्यतापूर्वक परिणाम प्रदर्शन करने के उपलक्ष्य में प्रो॰ त्रिपाठी को इलाहाबाद डिग्री कॉलेज में संस्कृत व्याख्याता की अध्यापकी सहज सुलभ हो गई थी। 11 वर्ष तक इलाहाबाद डिग्री कॉलेज के छात्र-छात्राओं को संस्कृत भाषा एवं साहित्य का अध्यापन कराने के पश्चात् वे सन् 1970 में बनारस विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर नियुक्त हुए। कला संकाय में

धर्म-दर्शन विभाग में अध्यापन के साथ-साथ प्रो॰ त्रिपाठी ने संस्कृत व्याकरण और काव्यशास्त्र की कक्षाएँ भी संस्कृत विभाग में निरन्तर लीं। वे दो बार अधिष्ठाता कला संकाय के पद पर चयनित हुए तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी समिति के सदस्य भी रहे।

प्रो॰ कमलेश दत्त त्रिपाठी का सौभाग्य है कि उन्हें प्रो॰ क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे महान् गुरु से व्याकरण और प्रो॰ भूपेन्द्रपति त्रिपाठी सदृश विद्वान् गुरु से वाक्यपदीयम् पढ़ने का अवसर मिला। महामहोपाध्याय पण्डित रामेश्वर झा के चरणों में बैठ कर प्रो॰ त्रिपाठी ने कश्मीर शैवदर्शन का विधिवत् अध्ययन किया। संस्कृत विभाग में उन्होंने सन् 1977 में आगम तन्त्र पर कक्षाएँ तथा शोधकार्य आरम्भ करवाए।

सन् 1981 में प्रो॰ कमलेश दत्त त्रिपाठी को मध्य प्रदेश सरकार ने कालिदास अकादमी, उज्जैन के निदेशक पद पर नियुक्त किया। उन्होंने पूर्ण मनोयोग से कार्य करते हुए अकादमी को अन्तर्राष्ट्रीय मानचित्र पर प्रदर्शित किया। अकादमी में उनके कार्यकाल में शैक्षिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधियाँ निरन्तर सम्पन्न होती रहीं। नाटक निर्देशन के क्षेत्र में आधुनिक रंगमंच को प्राचीनतम संस्कृत नाट्यविधाओं से जोड़कर की गई नाट्यप्रस्तुतियाँ प्रो॰ त्रिपाठी के कुशलतम नाट्यनिर्देशन का सच सामने लाती थीं। सेवानिवृत्त होने के बाद एक बार पुनः सन् 2003-2006 पर्यन्त उन्होंने उसी कुशलता से अकादमी निदेशक का दायित्व वहन किया।

प्रो॰ कमलेश दत्त त्रिपाठी ने अनेक पुस्तकें और शोधपत्र लिखे तथा प्रकाशित करवाए। प्रो॰ त्रिपाठी ने जापान, आस्ट्रिया, पोलैण्ड, फ्रान्स, थाइलैण्ड, फिनलैण्ड, स्पेन, स्वीडन आदि देशों तथा भारत देश में अनेक सेमिनारों, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं आदि में शोधपत्र प्रस्तुत किए हैं। आपने अनगिनत उद्घाटन-समापन समारोहों आदि में विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानों से श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध किया है।

प्रो॰ त्रिपाठी सोरेबोन यूनिवर्सिटी, पेरिस में सन् 1996 में विजिटिंग प्रोफेसर तथा कोपेनहेगेन यूनिवर्सिटी, डेनमार्क में सन् 1999 में विजिटिंग प्रोफेसर के पद पर आमान्त्रित किए गए। सन् 2003 में पेरिस स्थित सोरेबोन यूनिवर्सिटी ने उन्हें पुनः विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में आहूत किया। सन् 2004 में बार्सेलोना, स्पेन में वे विजिटिंग प्रोफेसर, सन् 2005 में चीन में विजिटिंग प्रोफेसर, सन् 2006 में यूनाइटेड किंगडम में विजिटिंग प्रोफेसर के कार्यभारों का वहन करते हुए भारतीय संस्कृति का प्रचार करते रहे।

प्रो॰ त्रिपाठी राष्ट्र के अनेक विश्वविद्यालयों और शैक्षिक संस्थाओं से

सदस्य अथवा पदाधिकारी के रूप में जुड़े रहे हैं। सन् 2003-2009 तक संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली; सन् 1998-2003 तक राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली; सन् 2003-2010 तक महर्षि सान्दीपनि वेद विद्यालय प्रतिष्ठान, उज्जैन; सन् 2003-2006 तक संस्कृत केन्द्र, जवाहर लाल नेहरू यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली आदि संस्थाओं को उनके नेतृत्व में अपनी पूर्ण क्षमता प्रदर्शन के अवसर मिले हैं।

प्रो॰ कमलेश दत्त त्रिपाठी को सन् 1999 में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, सन् 2000 में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, सन् 2005 में साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सन् 2007 में उन्हें राष्ट्रपति सम्मान से पुरस्कृत किया गया। उन्होंने श्रीमठ, वाराणसी द्वारा प्रदत्त स्वामी रामानन्दाचार्य स्मृति सम्मान तथा जुलाई सन् 2009 में स्वामी करपात्री स्मृति सम्मान एवं मीरा स्मृति सम्मान (इलाहाबाद) प्राप्त किया।

वर्तमान समय में प्रो॰ कमलेश दत्त त्रिपाठी कालिदास अकादमी, उज्जैन द्वारा संचालित परियोजना के अन्तर्गत नाट्य प्रयोग की दृष्टि से नाट्य शास्त्र के आलोचनात्मक संस्करण का सम्पादन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे अभिनवभारती, परमार्थसार का अनुवाद, योगराज भाष्य तथा महामहोपाध्याय रामेश्वर झा रचित वाक्यपदीयम् का सम्पादन कर रहे हैं। इसके साथ ही इन्दिरा गाँधी राष्ट्रिय कला केन्द्र, नई दिल्ली की वाराणसी शाखा के परामर्शदाता के रूप में भारतीय कला और सौन्दर्यशास्त्र को उनकी अमूल्य सेवाएँ मिल रही हैं।

(8) गयाचरण त्रिपाठी

वेद तथा व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ॰ गयाचरण त्रिपाठी प्रौढ पाण्डित्य तथा वैदिक अध्यवसाय के कारण नितान्त लब्धकीर्ति विद्वान् हैं। संस्कृत साहित्य मर्मज्ञ होने के साथ आप कर्मठ पण्डित एवं ओजस्वी व्यक्तित्व के स्वामी हैं। वाणी में ओज एवं अभिव्यक्ति का सुन्दर सम्मिश्रण एवं लेखनी और विचारों में शक्ति एवं सरस्वती का समन्वय आपकी अलौकिक प्रतिभा का परिचायक है।

डॉ॰ त्रिपाठी मूलतः यमुना तटवर्ती मरका ग्राम, जिला बाँदा के कश्यपगोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण, दयालबाग आगरा निवासी परिवार की सन्तान हैं। उनका जन्म अक्टूबर 1940 में हुआ था। कुल परम्परा में प्रायः सभी पूर्वज संस्कृत विशेषतः व्याकरण, ज्योतिष् एवं धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। डॉ॰ गयाचरण त्रिपाठी जी के ज्येष्ठ पितृव्य पं॰ मुक्तादत्त त्रिपाठी 'विद्याभूषण' व्याकरण एवं वेदान्त के महापण्डित थे। वे राजीव लोचन संस्कृत महाविद्यालय,

रायपुर (मध्य प्रदेश) में 30 वर्षों तक प्राचार्य रहे। आपके पिता डॉ॰ राम शरण त्रिपाठी हिन्दी एवं संस्कृत में एम॰ ए॰ तथा पी-एच॰ डी॰, शास्त्री (लाहौर) थे। काव्यतीर्थ श्री रामशरण के॰ जी॰ के॰ कालेज मुरादाबाद में संस्कृत के वरिष्ठ प्राध्यापक थे। आपकी माँ का नाम श्रीमती रामदासी देवी था। वे सन् 1946 में मात्र 26 वर्ष की अल्पायु में अपनी तीन सन्तानों-पुत्रद्वय—श्री गयाचरण एवं श्री रमाचरण तथा पुत्री श्रीमती अपर्णा शुक्ला को अपने स्नेहमय संरक्षण से विलग कर गोलोकवासिनी हुईं। वे ज्येष्ठ पुत्र को चिकित्सक बनाना चाहती थीं परन्तु ज्येष्ठ पुत्र श्री गयाचरण साहित्य जगत में प्रतिष्ठित हुए। आपकी पत्नी का नाम श्रीमती सुमन त्रिपाठी है। प्रो॰ गयाचरण के पुत्र अभिलाष त्रिपाठी मैनेजमेंट-इंजीनियर तथा पुत्रीद्वय समीक्षा व अन्वीक्षा हैं। गयाचरण त्रिपाठी सर्वदेवोपासक तथा आधुनिक युग से समायोजन कर चलने वाले पुरुष हैं।

डॉ॰ गयाचरण त्रिपाठी ने प्रारम्भ में मुख्यतः पिता से संस्कृत का ज्ञान एवं आधारभूत शिक्षा प्राप्त की। तदनन्तर जर्मनी में प्रो॰ उलरिष श्नाइडर से विविध विषयों का गम्भीर प्रशिक्षण एवं ज्ञान प्राप्त किया। आपकी आरम्भिक शिक्षा आगरा के आई॰ ई॰ आई॰ इण्टर कालेज में सम्पन्न हुई तत्पश्चात् के॰ जी॰ के॰ कालेज मुरादाबाद एवं बलवन्त राजपूत कालेज, आगरा विश्वविद्यालय से सन् 1959 में एम॰ ए॰ की परीक्षा में प्रथम श्रेणी, प्रथम स्थान व स्वर्णपदक प्राप्त किया। सन् 1962 में आगरा विश्वविद्यालय से ही (Origin & Subsequent Development of Vedie Pantheon विषय पर) पी-एच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की। उसी वर्ष जर्मन शासन की एक छात्रवृत्ति पाकर आप उच्चतर अध्ययन हेतु पश्चिम जर्मनी चले गए। तत्पश्चात् फ्राईबुर्ग जर्मनी से नवम्बर 1969 में डॉक्टर ऑफ फिलॉसोफी (डी॰ आर॰ फिल् सन् 1966) की उपाधि प्राप्त की। साथ ही हिस्ट्री ऑफ रिलिजन्स आर्ट व इण्डो-यूरोपीयन फिलॉसोफी का भी अध्ययन किया। सन् 1986 में आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से जगन्नाथ मन्दिर, पुरी पर सराहनीय कार्य कर डाक्टर ऑफ लिट्रेचर की उपाधि प्राप्त की। हिन्दी एवं संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, जर्मन, लैटिन, फ्रेंच, ग्रीक, इटैलियन, डच एवं उड़िया, बंगला, मैथिली, संस्कृत भाषा के आप ज्ञाता हैं। वैदिक साहित्य, पुराण साहित्य, तन्त्र आगम, वास्तु, ज्योतिष्, दर्शन, व्याकरण तथा पांचरात्र साहित्य, उड़ीसा की धार्मिक परम्पराओं एवं पाण्डुलिपि विज्ञान के आप विशेषज्ञ हैं। गुरुवर्य डॉ॰ श्री नरेन्द्र शास्त्री, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, बलवन्त राजपूत कालेज, आगरा के निर्देशन में प्रो॰ गयाचरण ने संस्कृत का सम्यक् लेखन किया।

सर्वप्रथम एक शिक्षक के रूप में फ्राइबुर्ग विश्वविद्यालय जर्मनी में आपने प्रवक्ता के पद पर रहते हुए सन् 1964 से 1967 तक कार्य किया। उसके

बाद अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में सन् 1967-68 तक रहे। सन् 1968-1970 में उदयपुर विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर दो वर्ष नियुक्त हुए। उड़ीसा रिसर्च प्रोजेक्ट में सन् 1970-1972 तक, हाइदुलबर्ग विश्वविद्यालय में सन् 1970-73 तक और फ्राईबुर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी में सन् 1973-1977 पर्यन्त, पश्चात् गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद में सन् 1977-2001 तक प्राचार्य पद पर आसीन रहे। प्राचार्य पद पर रहते हुए समय-समय पर विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में आपने अनेक देश एवं विदेशों के विश्वविद्यालय में कार्य किया। इस काल में पश्चिम जर्मनी तथा प्रायः सम्पूर्ण यूरोप, अमेरिका, बर्लिन, ट्यूविंगेन, ब्रिटिश तथा वैंकूवर, कनाडा की शैक्षिक यात्रायें एवं भ्रमण किया। तदनन्तर सेवाकाल के अन्तिम वर्षों में इन्दिरा गाँधी कला केन्द्र, दिल्ली में निदेशक के महत्त्वपूर्ण पद की गरिमा का वहन किया।

प्रो० गयाचरण द्वारा रचित ग्रन्थों की उत्कृष्टता के प्रमाण हैं—उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा प्राप्त बाणभट्ट पुरस्कार (1988); दिल्ली संस्कृत अकादमी का गद्यलेखन पुरस्कार; बिहार राजभाषा समिति पुरस्कार; भारत सरकार का चन्द्रावती जोशी संस्कृत विद्वान् पुरस्कार (1999); वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन का विशिष्ट वैदिक विद्वान् पुरस्कार (2003); हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद का संस्कृत साहित्य महामहोपाध्याय पुरस्कार (2004); भारत सरकार का प्रतिष्ठित-राष्ट्रपति पुरस्कार (2005)। जर्मन रिसर्च काउन्सिल, बॉन की उड़ीसा शोध परियोजना में प्रमुख इंडोलॉजिस्ट एवं शोध निदेशक (1970-75) पद आपकी गरिमा का सूचक है। दक्षिण एशिया के क्षेत्रीय शोध कार्यक्रम समिति की सदस्यता का गौरव आपको प्राप्त है। सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डल में सदस्य के रूप में ग्रीक यात्रा (1984) आपकी विशेष उपलब्धि है। उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी के चेयरमैन पद की शोभा आपने 1991-93 तक बढ़ाई है।

शान्त-सौम्य एवं ज्ञानगर्वित वाणी के धनी श्री गयाचरण त्रिपाठी के व्याख्यान सम्मोहित करने वाले होते हैं। आपके द्वारा वर्णित विदेशों के अनुभव सजीव हुआ करते हैं, वे मानस पटल पर एक चित्र सा खींचते हैं। आपके व्यक्तित्व की विशिष्टता है कि आप विद्यार्थियों के साथ मित्रवत् व्यवहार करते हैं। आपने विद्यापीठ में अध्ययन के साथ अन्य गतिविधियों तथा नाट्याभिनय, कवि सम्मेलन, संगोष्ठी व व्याख्यान मालाओं को प्रोत्साहन दिया है। इन समस्त कार्यक्रमों में आपने स्वयं भी प्रतिभागिता की है। विद्यापीठ में लगभग 3700 नूतन संस्कृत पाण्डुलिपियों का संग्रह तथा अनेक का सम्पादन आपका विशिष्ट योगदान है। आपने पचास से अधिक साहित्यिक संगोष्ठियों, कार्यशालाओं में

प्रतिभागिता कर अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया है। आपके सुयोग्य निर्देशन में बारह शोध छात्रों ने डाक्टरेट उपाधि हस्तगत की है।

आपके विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्त्य शोध-पत्रिकाओं में जर्मन, अंग्रेज़ी, हिन्दी तथा संस्कृत भाषाओं में लगभग 110 शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी लेखनी से निःसृत आलोचनात्मक एवं सम्पादित तथा मौलिक ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—

सम्पादित पाण्डुलिपियाँ—

1. गंगावतरण चम्पू, शंकर दीक्षित रचित (1996)
2. गीतगौरीवरम्, (रागकाव्य) तिरुमलभट्ट रचित (2002)
3. अनङ्गसञ्जीवनम् (भाण) (2001, बर्लिन विश्वविद्यालय)
4. शब्दचित्रावली, कवि योगेन्द्र रचित (चित्रकाव्य, 1998)
5. चण्डीपुराणम्, (उपपुराण) इटली से प्राप्त (1986)
6. कटकराजवंशावली, (इण्डिया ऑफिस, लन्दन से प्राप्त, 1987)
7. राज्याभिषेकविधिः, (1998)
8. जगन्नाथशतकम्, रघुराजसिंह रचित (1997)
9. जटापाठ, कवि दयाशंकर रचित भाष्य सहित (2000)
10. सभ्यालंकरणम्, गोविन्द भट्ट रचित (सुभाषित संग्रह, 1993)
11. बालबोधिनी, डॉ॰ राम शरण त्रिपाठी रचित (न्यायसिद्धान्तमुक्तावली पर भाष्य, 1993)
12. सुन्दरकथा, कवि नारायण रचित (चौरपञ्चाशिका पर आधारित कथा)
13. राममहिमानः स्तवनम्, (1991)
14. श्रीकान्तकविताकलापः, (एक कवि का सन् 1902-1949 तक का काव्यसंकलन, 1989)
15. वेदान्ततत्त्वप्रकाशिका, पण्डित क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय रचित (अवेस्ता आधारित विद्यार्थी संस्करण, 1997)
16. अमृताहरणम्, (इन्द्रदेव के भवन से गरुड द्वारा सोमाहरण की कथा, 2005)
17. स्वरूप प्रकाश, कश्मीरिका सदानन्द रचित (अद्वैतवेदान्ताधारित)
18. सुपर्णाध्याय, (यजुर्वेदाधारित त्रिष्टुभ्छन्दनिबद्ध ग्रन्थ)
19. काव्यप्रकाश, (कश्मीरी कवि राजानक आनन्द के भाष्य सहित)
20. हयशिरसा पञ्चरात्र (मन्दिर वास्तु, प्रतिष्ठा, पूजापद्धति)

21. शब्दभेदप्रकाश, पुरुषोत्तम देव रचित (द्व्यर्थक संस्कृत शब्दकोश)

22. कुमारनवसार (शाक्ततन्त्र)

मौलिक लेखन—

1. व्याकृतवत्सराजम् (उदयन-वासवदत्ता की कथा पर आधारित उपन्यास, 1992)

अन्य ग्रन्थ—

1. कम्यूनिकेशन विद गॉड, (2004)
2. रेलिजन एण्ड कल्चर ऑफ ईस्टर्न इण्डिया, (1993)
3. फाउण्डेशन ऑफ ए ब्राह्मण विलेज, (1981)
4. वैदिक देवता : उद्भव और विकास (दो भाग, 1982)
5. कल्ट ऑफ जगन्नाथ एण्ड द रीजनल ट्रेडिशन ऑफ उड़ीसा (1978)
6. प्राचीन भारत की कला (1971)
7. वामनावतार कथा (धार्मिक-ऐतिहासिक अध्ययन, जर्मन भाषाबद्ध 1968)

(9) हरिशंकर त्रिपाठी

प्रो॰ हरिशंकर त्रिपाठी का जन्म 1 जनवरी सन् 1941 को ग्राम हिन्दुपुर में हुआ था। आपके पूज्यपितृश्री पंडित महादेव प्रसाद त्रिपाठी संस्कृत विद्वान् तथा माता श्रीमती उमारानी सामान्य गृहिणी थीं। आपका विवाह श्रीमती गीता देवी से हुआ था। आपको सन्तानों में पाँच पुत्रियाँ हैं। जिला प्रतापगढ़ में आरम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने उच्च शिक्षा के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया तथा संस्कृत विषय में वेद एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन कर एम॰ ए॰ की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। अनन्तर प्राचीन फारसी एवं पहलवी भाषा में रुचि रखते हुए पी॰ जी॰ डिप्लोमा परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। डी॰ लिट्॰ डिग्री के लिए उनका विषय था—'शतपथब्राह्मण तथा ऐतरेयब्राह्मण की कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन'।

डी॰ फिल्॰ उपाधि प्राप्त होते ही प्रो॰ त्रिपाठी की नियुक्ति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रवक्ता पद पर हुई। अध्ययन और अध्यापन के लिए समर्पित प्रो॰ त्रिपाठी ने अध्यापन काल में दक्षतापूर्वक विविध विषयों की कक्षाएँ लेकर छात्रों को अपने ज्ञान से सम्मोहित किया। उन्होंने विशेषरूप से वैदिक भाषा तथा साहित्य के अन्तर्गत वैदिक कर्मकाण्ड, मीमांसा, पुराकथाशास्त्र, तुलनात्मक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत ध्वनिग्राम, ध्वनि विज्ञान,

रूपग्राम, शब्दकोष शास्त्र, व्याकरण, तुलनात्मक व्याकरण, निर्वचनशास्त्र, अवेस्ता, प्राचीन फारसी तथा आधुनिक फारसी, अवेस्तीय पुराकथा शास्त्र, वैदिक तथा अवेस्तीय साहित्य का इतिहास इत्यादि विषयों में पटुत्व हस्तगत कर छात्रों को भी ज्ञानसमृद्ध किया।

विश्वविद्यालय के कार्यकाल में विभिन्न दायित्वों का निर्वहण वे अति कुशलतापूर्वक करते थे। इस अवधि में उन्होंने निर्वाचन अधिकारी (सन् 1975, 1976, 1982, 1997), अध्यक्ष न्यासी मण्डल, इलाहाबाद (सन् 1982), अध्यक्ष, डेलीगेसी (सन् 1982-83), सहायक अनुशासनाधिकारी, अध्यक्ष स्नातक प्रवेश समिति (सन् 1990-91), अधिष्ठाता, गंगानाथ झा छात्रावास (सन् 1986-87) आदि पदों का सफल निर्वहण किया।

प्रो॰ हरिशंकर त्रिपाठी की लेखन में गहरी रुचि थी। वे आरात्रि जागरण करते हुए लेखन करते, आदिवस व्याकरणिक विषयों पर चर्चा करते हुए बुद्धिकौशल का अभ्यास और प्रदर्शन करते। व्यवहार में वे सबके प्रति सहज-सरल थे, ज्येष्ठों का सम्मान और कनिष्ठजनों के प्रति स्नेह उनके स्वभाव में था परन्तु अन्याय या अतार्किक वार्ता उन्हें सह्य न थी। अपने प्रति असह्य अपमान की कटुता वे गोपन न कर मुक्तभाव से व्यक्त करते थे। उनके सान्निध्य में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनके इस स्वभाव से परिचित था और उनकी स्पष्ट व्यंग्योक्तियों को भी निश्छल स्वभाव का प्रतीक मान कर सहज भाव से ग्रहण कर लेता था।

डॉ॰ हरिशंकर त्रिपाठी भारत के उन बिरले विद्वानों में थे जिनके अध्ययन क्षेत्र में वेद, अवेस्ता, फारसी भाषा और भाषाशास्त्र तीनों ही विद्या-विभाग सम्मिलित थे। वे अपनी प्राञ्जलशैली, विद्वत्ता और जिज्ञासु प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध थे। यह तो सर्वविदित है कि वैदिक पदों के रूपग्रामिक एवं वैज्ञानिक अर्थ विश्लेषण के लिए अवेस्ता भाषा का ज्ञान आवश्यक है, वैदिक और अवेस्ता भाषा में उपकार्य-उपकारक सम्बन्ध है। डॉ॰ हरिशंकर त्रिपाठी ने अपने ग्रन्थों में केवल भाषावैज्ञानिक ही नहीं, भौगोलिक-ऐतिहासिक सामग्री का सुचयन कर उनकी एक तर्क शुद्ध पुनः प्रस्तुति की है। तुलनात्मक प्रागैतिहासिक एवं तुलनात्मक सांस्कृतिक अध्ययन की नवीन परिपाटी डॉ॰ त्रिपाठी ने प्रारम्भ की थी। फारसी और वैदिक संस्कृत के तुलनात्मक अध्ययन के साथ-साथ शिलालेखों का नागरी लिपि में उट्टंकण और विवरण की सामर्थ्य रखने वाले डॉ॰ त्रिपाठी की प्रतिभा स्तुत्य थी। सर्वथा मौलिक साहित्य से वैदिक संस्कृत को प्रतिष्ठित करने का श्लाघ्य प्रयास करने वाले डॉ॰ त्रिपाठी अचानक हृदयगति रुक जाने से दिनांक 28 जनवरी, 2003 को दिवंगत हुए।

प्रकाशित ग्रन्थ

1. संस्कृत ध्वनिविज्ञान
2. संस्कृत ध्वनिग्राम
3. संस्कृत रूपग्राम
4. भाषा वैज्ञानिक निबन्धसंग्रह
5. दर्शपूर्णमास याग
6. संस्कृत ध्वनिपरिवर्तन
7. सूक्तवाक्
8. ऋग्भाष्य संग्रह
9. चाण्डालकन्या का वंशदण्ड
10. रसा से सदानीरा तक
11. समुद्रमन्थन
12. अवेस्ता हओमयस्त
13. अवेस्ताकालीन ईरान
14. निरुक्त व्याकरण और भाषाविज्ञान
15. प्राचीन फारसी शिलालेख
16. शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता (प्रथम, द्वितीय अध्याय)

प्रकाश्य ग्रन्थ

1. तुलनात्मक संस्कृत निर्वचन कोश
2. तुलनात्मक संस्कृत धातु कोश
3. हिन्दी धातुकोश
4. संस्कृत और अवेस्ता भाषा

यू॰ जी॰ सी॰ मेजर प्रोजेक्ट

1. अवेस्ता संस्कृत कोश

(10) भास्कर त्रिपाठी

प्रयाग-चित्रकूट के पथ पर अवस्थित सुरम्य ग्राम पाँडर (जसरा, इलाहाबाद) में अनन्त चतुर्दशी संवत् 1999 (तद्नुसार 23 सितम्बर, 1942 ई॰) को स्वनामधन्य कवि डॉ॰ भास्कराचार्य त्रिपाठी[1] का जन्म हुआ।

उनके पिता श्री रामप्यारे त्रिपाठी ज्योतिष-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे इस

1. दृक् अंक 21, दृग् भारती इलाहाबाद, पृ॰ 115-120 से साभार।

प्रकार शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति उनकी पैतृक विरासत के रूप में मिली।

बी॰ए॰ तथा एम॰ए॰ (संस्कृत-साहित्य) की परीक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से आपने प्रथम स्थान पाकर उत्तीर्ण कीं। बी॰ ए॰ की परीक्षा में आपने संस्कृत में स्वर्ण-पदक जीतकर अपना गौरव बनाया। सन् 1965 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 'राजशेखर-प्रणीत बालरामायण का आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक मूल्याङ्कन' पर आपको डी॰ फिल॰ की उपाधि मिली।

आपका आरम्भिक जीवन बड़े संघर्ष में व्यतीत हुआ। जब आपके पिताजी का असमय देहान्त हुआ तब आपकी उम्र मात्र 12 वर्ष की थी। इतनी छोटा आयु में दो छोटे भाइयों और बहनों के लालन-पालन का दायित्व आपके ऊपर आ गया। आप इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। स्वावलम्ब रूपी धन तथा माँ के सहयोग से आपने इन दायित्वों का निर्वहन किया। अपनी पढ़ाई के साथ-साथ दोनों छोटे भाइयों की पढ़ाई-लिखाई पर पूरा ध्यान दिया तथा पितातुल्य स्नेह-आशीष से उनका पालन-पोषण किया। आपकी ही तपस्या का परिणाम हे कि आपके दोनों अनुज भी सारस्वत-सेवा में संलग्न हैं।

शासकीय सेवा के अन्तर्गत छतरपुर, अम्बिकापुर, रीवाँ और भोपाल में आपने लगभग 4 दशक तक तथा मध्य प्रदेश-संस्कृत-अकादमी के संस्थापक सचिव के रूप में आठ वर्ष (1985-93) तक अपनी विशेष उल्लेखनीय सेवाएँ दी हैं। एतदतिरिक्त इन्दिराकला संगीत विश्व विद्यालय खैरागढ़ में दो बार तथा हिमालयन इन्स्टीट्यूट हॉडसेल, U.S.A में आप विजिटिंग फेलों के रूप में कार्य कर चुके हैं।

नवाचार के क्षेत्र में संस्कृत-शास्त्रों के काव्यानुवाद की प्रभावोत्पादकता पर आपने बल दिया। आपकी अनेक महत्त्वपूर्ण मौलिक रचनाएँ हैं जिससे आधुनिक संस्कृत-साहित्य की प्रचुर समृद्धि हुई है।

आपके द्वारा प्रणीत 'मृत्कूटम्' नामक खण्डकाव्य 1992 में गङ्गानाथ झा-केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्रयाग से प्रकाशित है। इस चर्चित काव्य का वैकल्पिक नाम 'मानवशतकम्' भी है। उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ द्वारा सन् 1992 में यह रचना पुरस्कृत है।

आपका दूसरा महत्वपूर्ण काव्य संकलन निर्झरिणी है। इस काव्य के लिए आपको उत्तर प्रदेश संस्कृत-संस्थान, लखनऊ द्वारा 1997 में बाल-साहित्य-पुरस्कार तथा दिल्ली-संस्कृत-अकादमी द्वारा अखिल भारतीय पण्डितराज जगन्नाथ संस्कृत-पद्यरचना पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। राष्ट्रीय एकता का सन्देश देने वाली इस रचना के लिए साहित्य अकादमी, नई

दिल्ली द्वारा सन् 2003 में आपको राष्ट्रीय पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है।

आपने सन् 2002 में प्रकाशित अपनी रचना 'लघु-रघु' के माध्यम से विश्व-साहित्य के इतिहास में एक कीर्तिमान स्थापित किया है। इस अत्यन्त सरल, उदात्त एवं रस-स्निग्ध काव्यग्रन्थ में दस हजार से अधिक अक्षरों में कहीं भी दीर्घ मात्रा का प्रयोग हुआ ही नहीं। इस रचना के लिए सन् 2002 में आपको उत्तर-प्रदेश संस्कृत-संस्थान, लखनऊ द्वारा विशेष पुरस्कार प्रदान किया गया है।

'अजाशती' आपके द्वारा प्रणीत एक बालकथा-काव्य है। जो बाल-साहित्य परिधि में आने वाली लोककथा का एक प्रभेद जन्तु-कथा (Fable) के अन्तर्गत आता है।

इसके अतिरिक्त आपने 'स्नेहसौवीरस्' नामक संस्कृत-नाटक लिखा है जो नाग पब्लिशर्स, दिल्ली से प्रकाशित है। 'स्नेहसौवीरम्' के लिए आपको दिल्ली संस्कृत अकादमी ने अखिल भारतीय डॉ॰ आदित्यनाथ झा संस्कृत-नाट्य-रचना पुरस्कार प्रदान किया गया है।

तौर्यात्रिकम् (तीन ध्वनिरूपक — उत्तररामचरितम्, रामराज्यावतरणम्, सुतनुकालास्यम्) तथा ललित गद्यात्मक 32 आलेख वाला 'संस्कृतजीवनम्' आप की अन्य कृतियाँ हैं। 'संस्कृतजीवनम्' के लिए आप 'दिल्ली संस्कृत-अकादमी' द्वारा अखिलभारतीय पं॰ चारुदेव शास्त्री संस्कृत-गद्यरचना पुरस्कार से सम्मानित हैं।

'साकेतसौरभम्' महाकाव्य उत्तर प्रदेश संस्कृत-संस्थानम्, लखनऊ से वर्ष 2003 में पुरस्कृत हो चुका है। इसी महाकाव्य के लिए आपको उसी वर्ष दिल्ली संस्कृत-अकादमी द्वारा अखिल भारतीय पण्डितराज-जगन्नाथ-पद्यरचना पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

शोधलेख, छन्दोविमर्श, लक्ष्मी-लाञ्छनम्, रूपक, यात्रा-वृतान्त आदि की ललित संस्कृत गद्यात्मक प्रस्तुति 'अक्षरा' सन् 2008 में प्रकाशित हुई है।

उपर्युक्त पुरस्कारों व सम्मानों के अतिरिक्त आपका सन् 1997 में सुरभारती-सेवा, मैनपुरी, उत्तर प्रदेश द्वारा समग्र अवदान हेतु 'विद्वत्सम्मान' तथा सन् 2001 में दिल्ली संस्कृत-अकादमी द्वारा संस्कृत की सेवा के लिए अखिल भारतीय दीनानाथ शास्त्री समालोचनात्मक साहित्य-रचना पुरस्कार प्राप्त हुआ है। 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने संस्कृत-साहित्य में अवदान हेतु 'संस्कृत महामहोपाध्याय' की उपाधि से विभूषित किया है। इस प्रकार आपके प्राप्त पुरस्कारों की एक सुदीर्घ शृंखला है।

आपने अब तक लगभग 65 शोध-संगोष्ठियों में सहभागिता की है। केवल भारत ही नहीं अपितु अनेक देशों में भी आपने अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज कराकर विश्व-समुदाय को लाभान्वित कराया है। यथा सन् 1984 में फिलाडेल्फिआ, यू॰ एस॰ ए॰ और सन् 2006 में एडिनबरा, यू॰ के॰ के विश्व संस्कृत सम्मेलन।

आपने मौलिक रचनाओं के प्रणयन तथा शोध-पत्रों के प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त सम्पादन तथा पाण्डुलिपियों को सूचीबद्ध करने के क्षेत्र में पर्याप्त योगदान किया है। महत्त्वपूर्ण संस्कृत महानाटक 'बालरामायणम्'के पण्डित जीवानन्द और लक्ष्मणसूरि संस्करणों की दुर्लभ मूल-प्रतियों से पाठ-निर्धारण एवं हिन्दी-अनुवाद भी किया है। आपने महाकवि भवभूति-रचित 'उत्तररामचरितम्' का सम्पूर्ण हिन्दी ध्वनिरूपकान्तरण तथा उत्तरामचरितम्, मालतीमाधव, और महावीरचरितम् का आंशिक नाट्य-रूपान्तरण एवं समीक्षा की है।

आदिवासी अंचल के लिए एक विशेष उपलब्धि कहीं जाने वाली 'मानस मधु' पत्रिका का तथा संस्कृत की बहुप्रशंसित पत्रिका 'दूर्वा' के 24 अङ्कों का सफलतापूर्वक सम्पादन आपने किया है तथा राजा भोज के चिरविस्मृत अवदान को प्रकाश में लाने के लिए 'भोज-भारती' संस्कृत-हिन्दी पत्रिका का सम्पादन भी किया है।

आप राष्ट्रीय-संस्कृत-संस्थान, भोपाल परिसर में शास्त्रचूडामणि, संस्कृत-डिक्शनरी-प्रोजेक्ट डेक्कन कालेज एण्ड रिसर्व इन्स्टीट्यूट पूना में मानवसंसाधन-विकास-मंत्रालय द्वारा नामित सदस्य तथा 'पाण्डिच्चेरी केन्द्रीय विश्वविद्यालय' में 'विजिटर्स नामिनी' नियुक्त थे। कुछ ही समय पूर्व आपको राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

कवि डॉ॰ भास्कराचार्य त्रिपाठी जी के देहावसान से संस्कृत-जगत् में एक भारी कमी आई है।

(11) अभिराज राजेन्द्र मिश्र

प्रो॰ अभिराज राजेन्द्र मिश्र स्वर्गीय पं॰ दुर्गा प्रसाद मिश्र एवं महीयसी अभिराजी देवी के मध्यम सुयोग्य पुत्र हैं। उनका जन्म 2 जनवरी, 1943 ई॰ को उत्तर प्रदेश के पूर्वाञ्चलीय जौनपुर जनपद में सई नदी (वाल्मीकि रामायण में स्यन्दिका) के बाएँ तट पर स्थित ग्राम द्रोणीपुर में हुआ था। आपकी प्राथमिक शिक्षा-दीक्षा ग्राम में राजकीय प्राइमरी पाठशाला, द्रोणीपुर एवं जयहिन्द इण्टर कालेज तेजी बाजार, जौनपुर में सम्पन्न हुई। सन् 1960 में बारहवीं कक्षा पास करने के पश्चात् आपने जौनपुर जनपद छोड़ कर इलाहाबाद नगर के लिए

प्रस्थान किया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी, संस्कृत, दर्शनशास्त्र विषय लेकर बी॰ ए॰ कक्षा (सन् 1962) उत्तीर्ण की। पारिवारिक पृष्ठभूमि संस्कृत की सुवास से सुवासित होने के कारण संस्कृत अध्ययन में उनकी बाल्यकाल से ही रुचि थी। सन् 1964 में एम॰ ए॰ कक्षाओं में संस्कृत विषय में सर्वोच्च अंक प्राप्त कर, सर्वप्रथम श्रेणी अर्जित की। सम्पूर्ण कला संकाय में भी आपका प्रथम स्थान था। तदुपरान्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में गुरुदेव प्रो॰ आद्या प्रसाद मिश्र के निर्देशन में 'संस्कृत भाषा में अन्योक्ति का उद्भव और विकास : एक आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर शोधकार्य प्रारम्भ किया। शोध समाप्ति के पूर्व ही 10 दिसम्बर सन् 1966 को आपकी नियुक्ति, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर हुई। तबसे निरन्तर प्रगति के प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र ने कभी पीछे मुड़ कर नहीं देखा। सन् 1984, 11 सितम्बर को आप उसी विभाग में रीडर (उपाचार्य) पद पर प्रोन्नत हुए।

सन् 1987 वर्ष आपके लिए विशेष सौभाग्य का वर्ष था, इस वर्ष आपको विक्रमशिला विद्यापीठ, बिहार ने विद्यासागर (डी॰ लिट्॰) की मानद उपाधि से अलंकृत किया। उसी वर्ष मई 1987 में भारत सरकार ने आपको दो वर्ष के लिए उदयन विश्वविद्यालय, डेनपसार, बाली, इण्डोनेशिया में विजिटिंग प्रोफेसर के पद पर भेजा। सन् 1989 में बाली द्वीप में संस्कृत-संस्कृति का प्रचार तथा उच्चस्तरीय अन्तर्राष्ट्रीय शोध कार्य कर आप पुनः इलाहाबाद विश्वविद्यालय लौट आए। 22 जनवरी, सन् 1991 में आप हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला में प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए। इसी पद से आप सन् 2003 में सेवानिवृत्त हुए। हिमाचल प्रदेश युनिवर्सिटी में आप कार्य समिति के सदस्य तथा भाषा संकाय के डीन पद पर भी प्रतिष्ठित रहे। शिमला में रहते हुए आपने शोधकार्य सम्पन्न करके डी॰ लिट्॰ की उपाधि अर्जित की।

सेवानिवृत्ति के पश्चात् आपकी विश्वख्यात प्रतिभा के उपयोग हेतु 24 अप्रैल, सन् 2002 से 2005 तक त्रिवर्षीय कार्यकाल के लिए आपको सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति पद पर प्रतिष्ठित किया गया। अपना कार्यकाल समाप्त कर आप शिमला में स्वनिर्मित गृह के शान्त वातावरण में अध्ययन-अध्यापन में व्यस्त हैं। आपने एक लोकप्रिय प्राध्यापक, विद्वान्, अध्यवसायी अध्येता, गहन शोधकर्ता, परम सहृदय कवि के रूप में शिक्षाजगत् में प्रतिष्ठा अर्जित की है। वैदुष्य एवं विद्याव्यसन की विरासत प्रो॰ राजेन्द्र प्रसाद मिश्र को स्ववंशीय पूर्वज विद्वानों पण्डित काशीराम मिश्र, पण्डित

रामकुमार मिश्र (प्रपितामहद्वय), पण्डित रामानन्द मिश्र (पितामह) तथा प्रो॰ आद्या प्रसाद मिश्र (पितृव्य) से उत्तराधिकार में मिली है। तुलसीपीठाधीश्वर स्वामी रामभद्राचार्य जी, प्रमोदवन, चित्रकूट का दीक्षागुरु के रूप में सदा अदृश्य प्रेरणा और आशीर्वाद उनके साहस और सम्बल को बढ़ाता है। भगवती पराम्बा की असामान्य शक्ति में सुदृढ़ विश्वास तथा पञ्चदेवों की उपासना का पुण्य फल भी उनके यश विस्तार में सहयोग करते हैं। अल्पवय में ही दिवंगत पिता पण्डित दुर्गा प्रसाद मिश्र के अभाव ने उनमें असीम आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास भरा है तो स्नेहमयी माँ (सम्प्रति दिवंगता) श्रीमती अभिराजी देवी के वात्सल्य ने उनके हृदय में कवित्व के कोमल कोंपल पल्लिवत किये हैं। हिन्दी, संस्कृत, भोजपुरी, अंग्रेज़ी तथा जावाभाषा में काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षा के अप्रतिम सर्जक, सहृदय कवि एवं प्रखर चिन्तक प्रो॰ राजेन्द्र मिश्र से आज विश्व का साहित्य जगत् परिचित है। उनका व्यक्तित्व हिमालय के उत्तुंग शिखर सा धीर-गम्भीर है, उनका अन्तस् माधुर्य रस से पूरित है, उनका ज्ञान बहुआयामी है, उनकी वाणी सम्मोहन सामर्थ्य से ओत-प्रोत है, उनकी कल्पनाएँ मौलिक हैं, उनकी रचनाएँ सहज बोधगम्य हैं। उन्होंने अपनी प्रखर मेधा से प्रायः डेढ़ सौ ग्रन्थों का प्रणयन, सम्पादन एवं आलोचन किया है। देश-विदेश की अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों में उनके शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं। स्तरीय मौलिक ग्रन्थों की रचना उनकी चातुरी कहने को पर्याप्त है। भारतवर्ष के अधिकांश विश्वविद्यालयों में उन्होंने अनेक पदों का कार्यभार संभाला है, अनेक समितियों, समारोहों, संगोष्ठियों, सम्मेलनों आदि में अध्यक्ष के रूप में उनकी सहभागिता रही है। हिन्दी, संस्कृत, भोजपुरी भाषाओं के कवि सम्मेलन उनकी उपस्थिति के बिना अधूरे से लगते हैं। संस्कृत कवि सम्मेलनों में उनकी सरस वाणी का माधुर्य श्रोताओं को रससिक्त कर देता है।

भारत तथा प्रदेश सरकारों एवं अन्य अगणित साहित्य सेवी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त पुरस्कार एवं सम्मान के अधिकारी वस्तुतः बारम्बार वे ही सिद्ध होते हैं। उत्तर प्रदेश (ग्यारह बार), दिल्ली (तीन बार), मध्य प्रदेश (दो बार), राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, सरकारों द्वारा प्रदत्त साहित्य सेवा सम्मान, साहित्य अकादमी (सन् 1998), वाचस्पति (सन् 1993), कल्पवल्ली (सन् 1996), कालिदास (सन् 1988, 1998), सम्मानों ने उनका गौरव बढ़ाया है। उनके विभिन्न विषयक व्याख्यान विद्वत्तापूर्ण होते हैं। लगभग 52 छात्रों ने उनके निर्देशन में शोध कार्य किए हैं। उल्लेख्य यह कि लगभग 35 शोधकर्ताओं ने उनके कर्तृत्व को ही अपने शोध का विषय बनाया है। जावादेशीय ककविन् रामायण का देवनागरी अनुवाद एवं समीक्षा उनके ही वश का विशाल कार्य है।

सन् 2004 का स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती, वाराणसी ने तथा सन् 2006 का महामहोपाध्याय पुरस्कार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने प्रो० मिश्र को ही प्रदान किया है। इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण साहित्य सेवाओं के लिए प्रो० मिश्र को भारत सरकार ने राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया है। इन समग्र उपाधियों, पारितोषिकों, अभिनन्दनों आदि से प्रो० मिश्र का सम्मान बढ़ा है अथवा गुरुवर्य को पाकर ये सम्मान ही सम्मानित हुए हैं, यह निश्चय कर पाना मेरे लिए भी दुविधापूर्ण है।

प्रशंसनीय यह कि विश्वविश्रुत ख्याति और अनेक दुर्लभ सम्मानों ने प्रो० मिश्र के अहंकार को विगलित ही किया है। उनका सान्निध्य गर्व, गुरुता, अहंकार की मात्रा घटाकर वातावरण को मानों स्नेह की मिठास से व्याप्त कर देता है। 'भरी गगरिया जल उतराय' की उक्ति उनके विनम्र और मधुर व्यवहार में ही मानों चरितार्थ होती है। 'विद्या ददाति विनयम्' की सूक्ति उन्होंने केवल कण्ठस्थ ही नहीं की अपितु पंक्ति 'एकला चलो रे' की लय पर वे अपना रास्ता स्वयं खोजते निरन्तर बढ़ते रहे हैं। जीवन सीधी रेखा नहीं है। उनका जीवन तो वास्तव में अनेक वक्रताओं से बाधित हुआ, पारिवारिक झंझावातों ने उन्हें झकझोरा, समाज की विसंगतियों ने उन्हें तोड़ा। इसके विपरीत आघात के प्रत्येक कटु-तिक्त अनुभव को सहज-सरल भाव से विस्मृत कर, द्विगुणित साहस सञ्चित कर वे पुनः साहित्य सर्जना में संसृक्त हुए। अर्द्धांगिनी डॉ० श्रीमती राजेश मिश्र का शील संकोची स्वभाव, स्नेहिल व्यवहार और मधुर वाणी भारत के कोने-कोने से आए बन्धुओं, मित्रों, शिष्यों और अधीनस्थों की थकान मिटाने को पर्याप्त हैं। पुत्र हिमांशु अभी अल्पवय (मात्र पन्द्रह वर्षीय) है किन्तु पिता-माता के संस्कार उसे हस्तान्तरित होंगे, ऐसा विश्वास है। एक और बात कहना चाहती हूँ, वह यह कि प्रो० राजेन्द्र मिश्र मेरे पति डॉ० आनन्द कुमार श्रीवास्तव (रीडर व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, सम्प्रति प्राचार्य सी० एम० पी० डिग्री कालेज, इलाहाबाद) के पूज्य गुरुदेव तथा शोध निर्देशक रहे हैं। मैंने आरम्भ से ही डॉ० आनन्द कुमार के माध्यम से गुरुदेव का स्नेहसिक्त सान्निध्य प्राप्त किया है। मुझ अनुजवधू के साथ उनका अन्तरंग स्नेह मुझे सदा भिगोतां है, आन्तरिक गरिमा से विभोर करता है। केवल मैं ही नहीं, उनके सम्पर्क में कुछ काल के लिए आने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनके गम्भीर आचरण और सदाशयी व्यवहार से उनका प्रशंसक हो जाता है। लेख के अगले पृष्ठों में उनकी साहित्यिक गतिविधियों को क्रम से प्रस्तुत करती हूँ—

महाकाव्य—1. जानकीजीवनम् (1988) 2. वामनावतरणम् (1994)। **खण्डकाव्य**—3. आर्यान्योक्तिशतकम् (1975), 4. नवाष्टकमालिका

(1976) 5. पराम्बाशतकम् (1981) 6. शताब्दीकाव्यम् (1987) 7. अभिराजसप्तशती (1987) 8. धर्मानन्दचरितम् (1992) 9. पञ्चकुल्या (1993) 10. करशूलनाथमाहात्म्यम् (1996), 11. कस्मै देवाय हविषा विधेम, 12. अरिण्यरनी, 13. संस्कृत शतकम्, 14. अभिराज सहस्रकम., 15. मृगाङ्कदूतम्, 16. चर्चरी (2004)। **नवगीतसंग्रह**—17. वाग्वधूटी (1978) 18. मृद्वीका (1985) 19. श्रुतिम्भरा (1989) 20. मधुपर्णी (2000) 21. मत्तवारणी (2001), 22. शालभञ्जिका (2006), 23. कौमारम् (2006)। **एकांकी संग्रह**—24. नाट्यपञ्चगव्यम् (1971) 25. अकिञ्चनकाञ्चनम् (1974) 26. नाट्यपञ्चामृतम् (1977) 27. चतुष्पथीयम् (1983) 28. रूपरुद्रीयम् (1986) 29. नाट्यसप्तपदम् (1996) 30. नाट्यनवग्रहम् (2006) 31. नाट्यनवरत्नम् (2006), **सम्पूर्णनाटिका**—32. प्रमद्वरा (2008) 33. विद्योत्तमा (1992) 34. लीलाभोजराजम् (2006), 35. प्रशान्तराघवम् (2006) 36. रूपविंशतिका (2008)। **कथासंग्रह**—37. इक्षुगन्धा (1986) 38. रांगदा (1992) 39. चित्रपर्णी (2000) 40. पुनर्नवा (2006) 41. अभिनवपञ्चतन्त्रम् (2008) 42. कान्तारकथा (2009)। **समीक्षा साहित्य**—43. शास्त्रालोचनम् (1994), 44. समीक्षा सौरभम् (2003), 45. बालीद्वीपे भारतीया संस्कृतिः (2006), **हिन्दी साहित्य**—46. संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति (1985), 47. मणिकाञ्चन (1991), 48. सुवर्णद्वीपीय रामकथा (1996), 49. भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीक : बालीद्वीप (1998), 50. सदृधारा (2004) **अंगेजी**—51. सेजुराह कसुशास्त्राम संसकिर्त (1988), 52. पोएट्री एण्ड पोएटिक्स (2006), **पाठ्यग्रन्थ**—53. किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग) (1970), 54. कादम्बरीकथामुखम् (1973), 55. छन्दोऽलङ्कार सौरभम् (1980), 56. रसनिरूपणम् (1986), 57. संस्कृतगद्यामृतम् (1996), 58. साहित्यदर्पण (3 परिच्छेद, 2000) 59. संस्कृतकाव्यत्रिपथगा (2000), 60. संस्कृतामृतचन्द्रिका (2000), 61. शोध प्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञान (2000) **अनुवाद एवं लिप्यन्तरण**—62. रामायण ककविन (1995), 63. प्रो॰ राघवन् प्रणीत रसों की संख्या, 64. अर्वाचीन संस्कृत काव्यशास्त्र (2007) **विशिष्ट कृतियाँ**—65. विंशशताब्दी संस्कृत काव्यामृतम् (2000), 66. विंशशताब्दी संस्कृत ग्रन्थसूचीपत्रम् (2002), 67. अभिराजयशोभूषणम् (2006)। **सम्पादित ग्रन्थ**—68. देववाणीसुवासः (दो भाग) 69. प्रतानिनी (काव्यसंग्रहः) 70. ब्रह्माविद्यारसायनम्। 71. संस्कृत वाङ्मय में हिमाचल (2006) **अप्रकशितम्**—72. अभिराजदण्डकम् 73. अभिराजचम्पूः 74. पृथुवंशम् (महाकाव्य), 75. मङ्गलाचरण काव्यम्, 76. गीतभारतम् (रागकाव्यम्), 77.

छन्दोऽभिराजीयम्, 78. बालीविलासम्, 79. सोनिया प्रशस्ति काव्यम्, 80. मृगमृगेन्द्रान्योक्तिशतकम्, 81. अभिराजशतकम् (खण्डकाव्यम्), 82. चौरशतकम् (प्रणयकाव्यम्), 83. गृभ्णामित्वां सौभागत्वाय (आत्मवृत्तम्), 84. मरुवणमाकन्दः (आत्मवृत्तम्), 85. काव्यपञ्चवटी, 86. काव्यतरंगिणी, **प्रो० अभिराज राजेन्द्र मिश्र पर किए गए शोधकार्य**—87. अभिराज राजेन्द्र—व्यक्तित्व एवं कर्त्तत्व (2005), डॉ० राजेश कुमारी, 88. प्रो० राजेन्द्र मिश्र एवं उनकी कृतियाँ (2006), डॉ० एस० रंगनाथ (बेंगलोर)। **चम्पूसंग्रह**—89. पत्रसन्देशचम्पूः 90. तीर्थराजचम्पूः 91. चन्द्रशेखरचम्पूः 92. देवेन्द्रचम्पूः। **हिन्दी काव्यसंग्रह**—1. दो पात नीबू-तीन पात अमोला 2. मुक्तधारा 3. सपनो में डूब गया मन 4. पलकों के बन्द द्वार 5. तटस्था। **खण्डकाव्य**—6. वेदना, 7. पनघट 8. मुक्तिदूत 9. पूर्णकाम 10. गृहत्याग **बालसाहित्य**—11. बच्चों के पाहुन 12. पढ़ो और गुनो 13. वन के गीत-मन के मीत 14. नया विहान 15. तितली के पंख 16. महाभारत की किशोरकथाएँ 17. रक्ताभिषेक **भोजपुरी काव्यसंग्रह**—18. फागुनीबयार **गद्यवाङ्मय**—19. विधवा (आञ्चलिक उपन्यास) 20. देवरा हजारी (कथासंग्रह) 21 रक्तवैतरणी 22. बदरा भइल मोर दूत. 23. बिरहा के रैन. 24. सकुन्तला 25. गन्धमादन 26. सुपर्ण 27. पाषाणी 28. त्रिणाचिकेत, 29. अदृश्यन्ती, 30. दुर्योधनवध 31. रोदसी 32. टिटनेस वार्ड की पाँच रातें 33. हिमाचल के आँगन में, 34. मेरी प्रथम दक्षिणभारतयात्रा 35. सुवर्णद्वीप में भारतीय वर्चस्व 36. महाकाल की नगरी में 37. अस्थिकलश (खण्डकाव्य), 38. नाच्यौ बहुत गोपाल (आत्मकथा), 39. आत्मख्यात कालिदास, 40. पुण्यश्लोको नलोराजा (संस्मरण)।

(12) सुषमा कुलश्रेष्ठ

प्रो० सुषमा कुलश्रेष्ठ ने संस्कृत जगत् को जो ग्रन्थरत्न प्रदान किए हैं, उनकी क्षमता मापना असम्भव है। संस्कृत के प्रति उनकी निष्ठा सर्वविदित है। अपनी विद्वत्ता के बल पर उन्नति और प्रगति के सर्वोच्च सोपान पर पहुँच कर उन्होंने स्त्रीजाति का मानवर्धन किया है। प्रो० सुषमा कुलश्रेष्ठ ने झाँसी में संगीत शिक्षक श्री जगदीश सहाय कुलश्रेष्ठ के घर में 13 मार्च सन् 1945 को खुर्जा, बुलन्दशहर में जन्म लिया था। उनके पिता महाराजा सिन्धिया कॉलेज, ग्वालियर, मध्य प्रदेश में संगीत के प्रसिद्ध अध्यापक तथा माँ श्रीमती कमलेश कुमारी स्थानीय विद्यालय में गृहविज्ञान विषय की अध्यापिका थीं। शैशवकाल से विशेष मेधा सम्पन्न तथा दो अनुजा-अरुणा व आभा की अग्रजा सुषमा कुलश्रेष्ठ की

शिक्षा प्रारम्भिक तो झाँसी से हुई किन्तु पिताश्री शीघ्र ही इलाहाबाद आ गए अतः स्थानीय एनी बेसेन्ट स्कूल से आरम्भिक शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् डी॰ पी॰ गर्ल्स कालेज से माध्यमिक शिक्षा हाईस्कूल (1958) तथा इण्टरमीडिएट (1960) परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तमोत्तम अंक अर्जित कर उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षार्जन के लिए बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर सन् 1962 में बी॰ ए॰ प्रथम श्रेणी में कुलपति पदक प्राप्त कर तथा एम॰ ए॰ परीक्षा संस्कृत विषय से सन् 1964 में विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जयिनी, मध्य प्रदेश से प्रथम श्रेणी—प्रथम स्थान पाकर उत्तीर्ण की। शोधकार्य के लिए डॉ॰ सुषमा कुलश्रेष्ठ ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से श्रद्धेय गुरुवर्य प्रो॰ आद्या मिश्र के निष्णात निर्देशन में 'कथावस्तु, नायक और रस' के विशेष सन्दर्भ में बृहत्त्रयी का अध्ययन प्रारम्भ किया। इसी अवधि में सन् 1966 में प्रो॰ सुषमा कुलश्रेष्ठ दौलतराम कॉलेज (देहली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध) द्वारा आयोजित संस्कृत विषयाध्यापन हेतु आयोजित साक्षात्कार में सफल होकर प्रवक्ता पद पर आसीन हुईं। सन् 1969 में उन्हें डी॰ फिल्॰ की उपाधि प्राप्त हुई। सन् 1972 में उन्होंने पालि भाषा और साहित्य में डिप्लोमा परीक्षा प्रथम श्रेणी और विशेष योग्यता के साथ देहली विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। सन् 1981 में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से पुराणेतिहासाचार्य की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में सफलता प्राप्त की। सन् 1989 में राँची विश्वविद्यालय से 'कालिदास साहित्य में सांगीतिक तत्त्व' विषय पर डी॰ लिट्॰ की उपाधि अर्जित की। संगीत में दक्षता के लिए प्रयाग संगीत समिति की अनेक परीक्षाएँ गायन, वादन, नृत्य में उत्तीर्ण कीं। श्लोक रचना उन्हें सिद्धहस्त थी।

प्रो॰ सुषमा कुलश्रेष्ठ के सुयोग्य निर्देशन में अनेक छात्राओं ने एम॰ फिल्॰ तथा शोधकार्य पूर्ण किये हैं। वे 1989 में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन की फेलो मनोनीत की गईं। वे अनेक शैक्षिक संस्थानों की सदस्य तथा अध्यक्षादि पदों पर नियुक्त की गई। सन् 1976-86, 1990-96 पर्यन्त वे ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स की सदस्य निर्वाचित हुईं। इसी अवधि में तैंतीसवें टेक्नीकल साइंस और फाइन आर्टस सेक्शन के अध्यक्ष पद का भी निर्वाह किया। उपर्युक्त अधिवेशन के अड़तीसवें सत्र की ज्वाइंट सेक्रेटरी पद पर आसीन रहकर उन्होंने अधिवेशन को सफल बनाया। प्रो॰ सुषमा कुलश्रेष्ठ दौलतराम कॉलेज में वरिष्ठता क्रम में सर्वोपरि रहकर कार्यवाहक प्राचार्य पद का निर्वाह दो वर्षों तक (सन् 1994-95) करती रहीं। वे राँची विश्वविद्यालय में आमन्त्रित अतिथि प्रोफेसर के पद पर (सन् 1996) आसीन हुईं। सन् 2005 से 2008 पर्यन्त उन्होंने अपनी विद्वत्ता और कार्यकुशलता से श्री जगन्नाथ पुरी संस्कृत

विश्वविद्यालय के कुलपति पद को अलंकृत किया।

प्रो॰ सुषमा कुलश्रेष्ठ भारत सरकार की प्रतिनिधि के रूप में I C H R, I C S S R, U G C, I C C R और मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के संस्कृति विभाग द्वारा नामित होकर सन् 1984 में षष्ठ वर्ल्ड संस्कृत कॉन्फ्रेन्स, पेन्सिलवानिया यूनिवर्सिटी, फिलाडेल्फिया, अमेरिका; सप्तम वर्ल्ड संस्कृत कॉन्फ्रेन्स, केर्न इन्स्टीट्यूट, लेडन यूनिवर्सिटी, नीदरलैण्ड; सन् 1987 में अष्टम कान्फ्रेन्स केलिफोर्निया अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध अध्ययन संस्थान, बर्कले, अमेरिका; सन् 1990 में तैंतीसवें अन्तर्राष्ट्रीय एशियन एण्ड नॉर्थ अफ्रीकन अध्ययन कांग्रेस में टोरन्टो यूनिवर्सिटी; सन् 1994 में अष्टम वर्ल्ड संस्कृत कान्फ्रेन्स, वियाना यूनिवर्सिटी, ऑस्ट्रिया और सन् 1990 में ही नवें वर्ल्ड संस्कृत कॉन्फ्रेन्स, ला ट्रोब यूनिवर्सिटी, मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया में निरन्तर शोधपत्र प्रस्तुत करती रहीं। पांचवे और छठे सन् 2001, 2005 में शाक्याधीता इण्टरनेशन कान्फ्रेन्स (बौद्ध महिला) नोमपेन्ह कम्बोडिया तथा सन् 2004 में लुम्बिनी, नेपाल, सन् 1997-98 में अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेन्स साउथ ईस्ट एशिया, शिल्पाकार्न यूनिवर्सिटी, बैंकाक, थाईलैण्ड में उनकी सहभागिता उनकी अध्ययन वृत्ति की द्योतक है।

प्रो सुषमा कुलश्रेष्ठ कालिदास अकादमी संस्कृत संगीत कला, देहली की सम्मान्य निदेशिका थीं। वे दशाधिक संस्थाओं की सदस्या तथा लगभग 25 राष्ट्रस्तरीय संगोष्ठियों की आयोजिका थीं। प्रो॰ कुलश्रेष्ठ ने राष्ट्रिय संस्कृत संगोष्ठियों में वर्ल्ड संस्कृत कॉन्फ्रेन्स, ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स, इण्डियन फिलॉसॉफिकल कॉन्फ्रेन्स, अखिल भारतीय दर्शन परिषद्, ऑल इण्डिया कालिदास समारोह, यूनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन तथा एन॰ सी॰ ई॰ आर॰ टी॰ की 200 से अधिक कार्यशालाओं और सम्मेलनों में भागीदारी कर शोधपत्र प्रस्तुत किए हैं। राष्ट्रिय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शोध पत्रिकाओं, जर्नल्स, अभिनन्दन ग्रन्थों तथा स्मृति ग्रन्थों में प्रो॰ कुलश्रेष्ठ के द्विशताधिक शोधपत्र प्रकाशित हुए हैं। प्रो॰ कुलश्रेष्ठ को यू॰ जी॰ सी॰ नई दिल्ली द्वारा कवि कालिदास तथा साहित्य की अन्य विधाओं पर लघु तथा बृहद् शोध परियोजनाएँ प्रदान की गई हैं जिन्हें उन्होंने कुशलतापूर्वक सम्पूर्ण किया है। उन्होंने संस्कृत भाषा एवं साहित्य की लगभग चालीस पुस्तकों का लेखन एवं सम्पादन किया था, अध्ययन और लेखन की दृष्टि से कवि कालिदास उन्हें सर्वाधिक प्रिय थे। महाकवि कालिदास एवं कामकला परियोजना में मैंने भी उनके साथ सहसम्पादक रूप में कालिदास के नाटकों पर कार्य किया है। उन्हें राष्ट्रपति सम्मान (2004); संस्कृत साहित्य पुरस्कार, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ, (1996, 1998,

1999, 2002), संस्कृत शिक्षा पुरस्कार, देहली संस्कृत अकादमी (2000), बाणभट्ट सम्मान, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ (2000), संस्कृत सम्मान, दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय (2002), अखिल भारतीय शोधग्रन्थ सम्मान, देहली संस्कृत अकादमी (2003), लिम्का बुक सम्मान (2002, 2003, 2004, 2005) से सम्मानित किया गया था। सन् 2001 में सुषमा कला श्रीः अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रत्यर्पण उनके जीवन की विशिष्ट उपलब्धि थी। विशिष्ट विद्वान् सम्मान, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ (2004) से भी वे सम्मानित थीं। अत्यन्त दुःख के साथ सूचित कर रही हूँ, सुषमा जीजी 22 नवम्बर 2013 को हमें बिलखता छोड़ गोलोक वासिनी हो गईं।

प्रो॰ सुषमा कुलश्रेष्ठ ने बाल्यकाल में प्रयाग संगीत समिति से संगीत शिक्षा प्राप्त की थी, उस प्रतिभा का उपयोग करते हुए उन्होंने संगीत विषय को आधार बना कर लगभग 40 लघु-बृहद् पुस्तकों की रचना की थी। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य सम्बन्धी विषयों पर भी उनकी लगभग 15 पुस्तकें उपलब्ध हैं। प्रो॰ कुलश्रेष्ठ द्वारा रचित संस्कृत पुस्तकों की सूची निम्न है—

1. संस्कृत गीताञ्जलि, 1973
2. बृहत्त्रयी : एक तुलनात्मक अध्ययन, 1983
3. कालिदास साहित्य एवं वादनकला, 1986
4. कालिदास साहित्य एवं संगीतकंला, 1988
5. कालिदास साहित्य एवं पशुपक्षिसंगीत, 1989
6. मेघदूत सङ्गीत पल्लवी, 1990
7. संस्कृत संगीत वैजयन्ती (श्रीमती कमलेश कुमारी स्मृत्यभिनन्दन ग्रन्थ, 1991
8. ऋतुसंहार सङ्गीत सुरभि, 1992
9. प्रभाकर-नारायण-श्री : प्रो॰ प्रभाकर नारायण कवठेकर अभिनन्दन ग्रन्थ, 1993
10. Gems of Indian Music & Musicology, Prof. Sumati Mutatkar Felicitation Volume, 1994
11. कालिदास साहित्य एवं कामकला, Vol 1, नायकनायिकागुणालङ्कार, 1995
12. Jewels in Sanskrit & Musicology, Prof. J.S. Kulshreshtha Felicitation Volume
13. सुभाषचरितम्, 1996

14. Gems of Buddhism

15. संस्कृत सङ्गीत रत्नशती

16. Erotics in Sanskrit & English Literature-I Kalidasa & Shakespeare, 1997

17. कालिदास साहित्य एवं कामकला, Vol. II कामदशाएँ, रतिभेद, प्रेमविलास, 1998

18. कालिदास साहित्य एवं कामकला, Vol. I आश्लेष चुम्बन निर्झरी

19. त्रिगुणश्रीः पण्डित त्रिगुणानन्द शुक्ल स्मृत्यभिनन्दन ग्रन्थ

20. कालिदास साहित्य एवं कामकला, Vol. II नखदन्तक्षत लक्ष्मीद्विशती, 1999

21. पर्यावरणप्रभुत्वम्

22. कवयित्री कण्ठाभरणम्; प्रो॰ जगदीश सहाय कुलश्रेष्ठ शताभिषेक अभिनन्दन ग्रन्थ, 2000

23. अमृत निर्झरी : या सृष्टिः स्रष्टुराद्या

24. कालिदास लघुत्रयी : ज्योत्स्नानिर्झरी

25. शब्दार्थसौन्दर्यसहस्रचन्द्री, 2001

26. दीपशिखानिर्झरी : कालिदास वैजयन्तीमाला

27. अमृतस्रोतस्विनी : वैदिकवाङ्मये जलविज्ञानश्रीः

28. वनज्योत्स्नासहस्रसौमनसि, 2003

29. माधवनिदानम्, 2004

30. पशुपक्षिसाम्राज्यसहस्रलक्ष्मी : Fauna : Animal & Bird Kingdom in Sanskrit Literature : Manika Dhawal Festschrift, 2005

31. संस्कृतवाङ्मये जलविज्ञानम्

32. श्रीरङ्गनाथश्रीः : Gems of Law & Dharmsastra Justice Ranganath Misra Festschrift

33. कुमारसम्भव कामकेलिश्रीः : Enjoyment of Bliss in Kumarasambhava

34. कालिदास साहित्य एवं कामकला; Vol. III

35. कालिदास साहित्य एवं कामकला, Vol. IV चौंसठ कलाएँ, 2008

36. Flora & Fauna in Dipashikhakalidasa : Prof. Jagadish Sahai Kulshreshtha Adhidevotsava Festschrift, 2009

37. श्रीनिवासनिर्झरी : आधुनिक संस्कृत साहित्य : प्रो॰ श्रीनिवास रथ अमृतमहोत्सव, 2009-2010

38. राष्ट्रीयता और भारतीय साहित्य

39. कालिदास सङ्गीतमञ्जरी-III,

40. कुमारसम्भव सङ्गीतधवलश्रीः

(13) गोपराजू रामा

आन्ध्र प्रदेश के पश्चिमी गोदावरी जिले में कोववुर नामक स्थान पर 8 सितम्बर, सन् 1945 को डॉ॰ गोपराजू रामा का जन्म कौण्डिन्य गोत्रीय ब्राह्मणकुल में हुआ था। आपके पूर्वज स्व॰ अप्पलनरसिंहम् एक प्रतिष्ठित विद्वान् थे। आपके पिता का नाम श्री वि॰ राजन्ना तथा माता के॰ ए॰ श्री राममूर्ति तथा गुरुवर्य श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री थे। शैव धर्मानुयायी श्री गोपराजू रामा ने विद्याप्रवीण, साहित्याचार्य एवं चक्रवर्ती (Ph.D.) की उपाधि प्राप्त की।

सन् 1969 में आपकी नियुक्ति गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद में हुई। तब से आप यहीं पर कार्यरत हैं। आपके सफल मार्ग निर्देशन में लगभग 25 विद्यार्थियों ने शोधकार्य सम्पूर्ण किया, वे सभी विभिन्न सम्मानित पदों पर कार्यरत हैं। आपके लगभग 60 शोध निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आपने विद्यापीठ में रहते हुए 1. काव्यप्रकाशः, 2. काव्यदर्पण, 3. हरविजयम्, 4. विद्यापरिणयम् इत्यादि ग्रन्थों का सम्पादन किया है। आपके द्वारा रचित 5. धातुप्रत्ययालोकः 6. गुणीभूतालोकः मौलिक रचनाएँ हैं।

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान तथा राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत श्री गोपराजू अत्यन्त सरल स्वभाव एवं सहज व्यक्तित्व के स्वामी हैं। संस्कृत साहित्य एवं कालशास्त्र के समग्रज्ञाता डॉ॰ रामा छात्रों के साहित्य समाधान के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। ध्वन्यालोक के समानान्तर विषय पर लखनऊ विश्वविद्यालय में आयोजित रिफ्रेशर कोर्स में आपका एक व्याख्यान भी हुआ था। अध्ययननिष्ठ विद्यार्थियों के प्रति आपका स्नेह अप्रतिम होता है।

(14) रहस बिहारी द्विवेदी

विद्या, विनय और विनोदी स्वभाव के सम्मिश्रण से युक्त पानक का साक्षात् रसास्वादन कराने वाले प्रो॰ रहस बिहारी द्विवेदी ने प्रयाग की प्रसिद्ध तहसील मेजा रोड के समहन ग्राम में 2 जनवरी, 1947 को जन्म लिया। उनके पिता पण्डित श्री रामाभिलाष द्विवेदी तथा माता श्रीमती सुन्दरी देवी थीं। परिवार में परम्परा से संस्कृत पठन-पाठन का वातावरण था। पिता सिद्धान्त ज्योतिषाचार्य

थे तथा ज्योतिष् शास्त्र के क्षेत्र में विशेष ख्यातिलब्ध थे। रहस बिहारी जी की प्रारम्भिक शिक्षा प्रयाग तथा जबलपुर में सम्पन्न हुई। संस्कृत विषय में सर्वोच्च अंक प्राप्त कर आपने प्रथम स्थान प्राप्त कर स्वर्णपदक प्राप्त किया व कला संकाय में भी सर्वोच्च अंक अर्जित करने वाले छात्र का यश प्राप्त हुआ। साहित्याचार्य परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

सन् 1971 में मध्य प्रदेश लोकसेवा आयोग की चयन परीक्षा उत्तीर्ण कर शासकीय महाविद्यालय, मन्दसौर में व्याख्याता पद पर नियुक्त हुए। सन् 1972 में शाजापुर शासकीय महाविद्यालय तथा सन् 1972-73 से शासकीय महाराजा कॉलेज, छतरपुर में 1 मार्च, सन् 1978 तक संस्कृत अध्यापन का कार्य किया। 2 मार्च, सन् 1978 से 24 सितम्बर 1998 पर्यन्त रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर, मध्य प्रदेश में संस्कृत व्याख्याता तथा उपाचार्य पदों पर आसीन रह कर अध्यापन कार्य करते रहे। तदुपरान्त 25 सितम्बर सन् 1998 से दिसम्बर 1998 तक शोधसंस्थान, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में निदेशक पद पर प्रतिष्ठित रह कर पुनः जबलपुर संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष पद का दायित्व निर्वहण किया। 31 जनवरी सन् 2009 में अध्यापन से अवकाश ग्रहण कर इलाहाबाद जनपद के पैतृक आवास में आकर निवास कर रहे हैं।

अध्यापन काल में आपके निर्देशन में अनेक शोधच्छात्रों ने अपना शोधकार्य सम्पूर्ण किया तथा द्वयधिक ने डी॰ लिट्॰ का अध्ययन सम्पन्न किया। आपके अनेक छात्र आज देश के विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में अध्यापन कार्यरत हैं। विश्वविद्यालय में अध्यापन करते हुए अन्य अनेक दायित्वों यथा-चीफ वार्डन, छात्रावास तथा जबलपुर विश्वविद्यालय तथा अन्य अनेक विश्वविद्यालयों की शोध-अध्ययन तथा अन्य विविध समितियों के सदस्य पद का कार्यभार सम्भाला। इसी काल में प्रो॰ द्विवेदी मध्य प्रदेश शासन की उच्चशिक्षा विशेषज्ञ समिति के सदस्य भी मनोनीत हुए।

अध्यापन मात्र से सन्तुष्ट न रहने वाले प्रो॰ रहस बिहारी द्विवेदी ने जीवन के अनेक वर्ष लेखन कार्य को समर्पित कर अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना की। काव्यशास्त्र के अध्ययन में आपकी विशेष रुचि थी फलतः आपने काव्यशास्त्रीय तत्त्वों की नई दृष्टि से व्याख्या कर नूतन मान्यताएँ स्थापित की है। इस सम्बन्ध में आपके दो ग्रन्थ 1. काव्यत्तत्वविमर्शः तथा 2. साहित्यविमर्शः (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। अन्य रचनाएँ हैं—3. अर्वाचीनसंस्कृतमहाकाव्यानुशीलम् (संस्कृत परिषद्, सागर); 4. श्रीकृष्णस्य स्वस्ति सन्देशः (संस्कृत परिषद्, सागर); 5. संस्कृतवाङ्मये विज्ञानम् (सम्पांदन,

संस्कृतविभाग रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, सन् 2000); 6. संस्कृत महाकाव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन (भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली); 7. त्रयी (बी॰ ए॰ प्रथम वर्ष के पाठ्यग्रन्थ का सह सम्पादन (हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल) काव्यरचनाएँ—8. स्मृतिचित्रम् 9. मध्यप्रदेशोद्भूतः, 10. श्रीब्रह्मदत्तवंशम् 11. तमसा, 12. काव्यसंस्तवः। इसके अतिरिक्त विविध संस्कृत शोधपरक प्रकाशित शोधपत्रों की संख्या लगभग शताधिक है।

विद्याव्यसनी प्रो॰ द्विवेदी की विद्वत्ता का समाज में सम्मान होना स्वाभाविक था, अनिवार्य भी। साहित्य समाज ने अपनी जिम्मेदारी समझते हुए उनको सन् 1996 में आचार्यश्रीः (जबलपुर); सारस्वत, सन् 1999 (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी); भारतभारती, सन् 2002 (महाकोशल साहित्य एवं संस्कृति परिषद्) सम्मानों से सम्मानित किया। प्रो॰ द्विवेदी आज भी साहित्य साधना में रत रह कर साहित्य जगत् को अपनी विद्वत्ता से लाभान्वित कर रहे हैं।

(15) राजलक्ष्मी वर्मा

प्रो॰ राजलक्ष्मी वर्मा हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि, एकांकीकार, नाटककार और हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सुदीर्घ काल तक आचार्याध्यक्ष डॉ॰ रामकुमार वर्मा तथा श्रीमती लक्ष्मी देवी की पुत्री हैं। पिता से साहित्य की बौद्धिक विरासत और संस्कार ले कर जन्मीं प्रो॰ राजलक्ष्मी की जन्मतिथि 18 अक्टूबर सन् 1947 और जन्मभूमि प्रयाग नगर है। सन् 1962 में माध्यमिक शिक्षा परिषद् से हाईस्कूल की परीक्षा व सन् 1964 में इण्टरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणियों में उत्तीर्ण की। इण्टर की परीक्षा में उत्तर प्रदेश में नौंवा स्थान प्राप्त किया। उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर सन् 1966 में स्नातक परीक्षा हिन्दी, संस्कृत और संगीत-सितार विषय लेकर उत्तीर्ण की। प्रथम श्रेणी अर्जित कर संगीत विषय में योग्यता सूची में प्रथम स्थान प्राप्त किया। सन् 1968 में एम॰ ए॰ संस्कृत में प्रथम श्रेणी प्रथम स्थान पर रहीं। सन् 1966 में ही फ्रेंच भाषा में डिप्लोमा परीक्षा में भी प्रथम श्रेणी अर्जित की। सन् 1968 में प्रो॰ आद्याप्रसाद मिश्र के निर्देशन में 'शुद्धाद्वैत दर्शन का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय पर उन्हें डी॰ फिल्॰ की उपाधि से विभूषित किया गया।

सन् 1974 में प्रो॰ राजलक्ष्मी की नियुक्ति संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर हुई। सन् 1997 में वे प्रोफेसर पद पर प्रोन्नत हुई। इसी विभाग में सन् 2008 से सन् 2010 तक उपाचार्य, आचार्य तथा

अध्यक्ष पदों पर नियुक्ति प्राप्त करती हुई वे सन् 2013 में सेवानिवृत्त हो गईं।

प्रो० वर्मा की शैक्षिक उपलब्धियों का उल्लेख भी यहाँ अप्रासंगिक न होगा। वे क्रमशः इस प्रकार हैं—

सन् 1964 से एम० ए० परीक्षा तक 'मेरिट स्कॉलरशिप' प्राप्त की। सन् 1966 में बी० ए० में संगीत विषय में प्रथम स्थान प्राप्त करने के उपलक्ष्य में रजत पदक प्राप्त किया। सन् 1968 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने हेतु चार स्वर्ण पदक प्राप्त किये। सन् 1968 में एम० ए० संस्कृत में प्रथम स्थान प्राप्त करने हेतु एक स्वर्ण व एक रजत पदक प्राप्त किया। सन् 1965 में कला संकाय में सर्वोत्तम छात्रा होने के लिए इलाहाबाद का 'चान्सलर्स ब्रॉन्ज़ मेडल' प्राप्त किया। सन् 1968 में सर्वोत्तम छात्रा चयनित होने के लिये इलाहाबाद विश्वविद्यालय का 'चान्सलर्स सिल्वर मेडल' प्राप्त किया।

प्रो० राजलक्ष्मी अपनी साहित्यिक प्रतिभा तथा रोचक पाठन शैली के हेतु से अपने विद्यार्थियों के मध्य सम्मान्य हैं। उन्होंने संस्कृत विभाग में 40 वर्षों तक संस्कृत साहित्य तथा भारतीय दर्शन के इतिहास तथा विविध दार्शनिक प्रस्थानों का अध्यापन किया है। उनके निर्देशन में 30 विद्यार्थियों को डी० फिल० की उपाधि प्रदत्त हुई है।

प्रो० राजक्ष्मी अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त अपनी दैनन्दिन जीवनचर्या में अनेक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। स्पष्ट सरल वाणी तथा विद्वत्तापूर्ण शैली में दिए गए व्याख्यान आपकी शैक्षणिक प्रतिभा के परिचायक हैं। नगर और राष्ट्र की अनेक संस्थाएँ अनेक व्याख्यानों से लाभान्वित होने के लिए उन्हें प्रायः आमन्त्रित करती हैं। उनकी अनेक साहित्यिक व सांस्कृतिक वार्ताएँ प्रसारित होती रहती हैं। उन्होंने बारम्बार देश में अनेक स्थानों व संस्थाओं में भारतीय संस्कृति, व धर्म-दर्शन पर व्याख्यान दिए हैं। स्वामी विवेकानन्द के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु प्रो० राजलक्ष्मी ने रामकृष्ण इंस्टीट्यूट ऑफ़ कल्चर, कोलकाता तथा रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों में रामकृष्ण भावधारा पर व्याख्यान दिए हैं। उन्होंने रामकृष्ण मिशन मुम्बई में अनेक सप्तदिवसीय व्याख्यान मालाएं प्रस्तुत कर [रामानुज दर्शन; शुद्धाद्वैत दर्शन; पातञ्जलयोग; भक्ति का उद्भव और विकास-ऋग्वेद से मध्ययुग पर्यन्त; मधुसूदन सरस्वती का भक्तिसिद्धान्त; पुरुषार्थचितुष्टय तथा शरणागति का स्वरूप] श्रोताओं की प्रशंसा अर्जित की है। संस्कृत जगत के लिए यह सौभाग्य का विषय है कि प्रो० राजलक्ष्मी को अपने वैदुष्य से भारतीय विद्याभवन, लन्दन में, महात्मा बुद्ध और शंकराचार्य तथा 'Concept of Sprituality' पर द्विदिवसीय व्याख्यान प्रदान करने

का अवसर मिला है। प्रतिष्ठित साहित्यकार की पुत्री ने पितृश्री के सम्मान में साहित्यिक गतिविधियों को गति देने के लिए डॉ॰ रामकुमार वर्मा ट्रस्ट की स्थापना (सन् 1992) की थी। इस ट्रस्ट के माध्यम से निर्धन और प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की सेवा सहायता वे अपना कर्त्तव्य मानती हैं।

प्रो॰ वर्मा की साहित्यिक प्रतिभा उनके द्वारा रचित दर्शनशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों तथा अन्य अनेक ग्रन्थों के लेखन एवं सम्पादन में दृष्टिगत होती है—

1. 'आचार्य वल्लभ और उनका दर्शन'

2. 'पद्मपत्रमिवाम्भसा'

3. विभिन्न शोध-जर्नल में अनेक शोध-आलेख प्रकाशित।

4. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विविध विषयों पर अनेक लेख और निबन्ध प्रकाशित।

5. आकाशवाणी केन्द्र, इलाहाबाद के लिये कई 'फ़ीचर्स' का लेखन।

6. प्रसिद्ध हिन्दी कवि व नाटककार डॉ॰ रामकुमार वर्मा की जन्मशती के अवसर पर 'गौरवग्रन्थ' का सम्पादन।

7. आठ खण्डों में 'डॉ॰ रामकुमार वर्मा रचनावली' का सम्पादन।

मधुर, सौहार्दपूर्ण व्यवहार की स्वामिनी प्रो॰ राजलक्ष्मी वर्मा को सम्मानित कर प्रदेश की संस्थाओं ने अपना गौरव बढ़ाया है। उनकी सम्मान सूची इस प्रकार है—

'पद्मपत्रभिवाम्भ्सा' पर 50,000 का विष्णुतीर्थ सम्मान। शिक्षा जगत् में महत्त्वपूर्ण सेवाओं हेतु 'इटावा हिन्दी सेवा निधि' द्वारा सम्मानित।

शिक्षा जगत् में सेवा हेतु कायस्थ पाठशाला ट्रस्ट द्वारा सम्मानित।

संस्कृत वैदुष्य के लिए मीरा स्मृति फाउण्डेशन सम्मान, 2008 से सम्मानित।

आपकी साहित्यिक अभिरुचि आपके निर्देशन में नगर तथा विश्वविद्यालय में मंचित कराए गए संस्कृत नाटकों—स्वप्नवासवदत्तम्, मालतीमाधवम्, रत्नावली-नाटिका, विक्रमोर्वशयम् के सफल संयोजन में अभिव्यक्त होती है।

(16) हरिदत्त शर्मा

कविपुंस्कोकिल हरिदत्त शर्मा मूलरूप से अलीगढ़ के बेसवाँ नामक स्थान के रहने वाले हैं। आपका जन्म महामायानगर हाथरस में 27 सितम्बर सन् 1948 में श्री लहरी शङ्कर शर्मा एवं श्रीमती हरप्यारी देवी के घर हुआ था। सनाढ्य ब्राह्मणकुल में जन्में श्री शर्माजी भरद्वाजगोत्रीय हैं। उनके पूर्वज पंडित

बिहारी लाल एवं पंडित महावीर प्रसाद शर्मा शास्त्री प्रतिष्ठित विद्वान् थे। वैष्णव मतावलम्बी श्री हरिदत्त शर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा श्री कृष्ण ब्रह्मचर्याश्रम सरस्वती एवं बांगला विद्यालय, हाथरस में सम्पन्न हुई। अपनी पूज्या माता से उन्हें श्री हनुमान् एवं श्रीकृष्ण भक्ति विरासत में मिली। उनका विवाह 10 दिसम्बर सन् 1974 को सुश्री मधूलिका शर्मा से हुआ।

आपने संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से प्रथम श्रेणी में आचार्य परीक्षा पास की। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् 1969 में संस्कृत विभाग में एम॰ ए॰ की परीक्षा न केवल प्रथम स्थान में पास की अपितु संस्कृत विभाग में प्रथम स्थान प्राप्त करने के साथ ही सम्पूर्ण कला संकाय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। उनकी इस अप्रतिम सफलता के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें चार स्वर्ण पदक एवं दो रजत पदक प्रदान किये गये। आपके श्रद्धेय गुरुजनों में प्रो॰ आद्याप्रसाद मिश्र, प्रो॰ चण्डिका प्रसाद शुक्ल एवं प्रो॰ सुरेश चन्द्र पाण्डेय आदि प्रमुख हैं। संस्कृत के अतिरिक्त आप रूसी एवं जर्मन भाषा का भी ज्ञान रखते हैं।

संस्कृत साहित्य एवं काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ प्रो॰ शर्मा ने सन् 1975 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से "संस्कृत काव्यशास्त्रीय भावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन" विषय पर डी॰ फिल॰ उपाधि प्राप्त की। सन् 1972 में संस्कृत-विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हुए। वे 2010-2012 पर्यन्त विभागाध्यक्ष पद को सुशोभित कर 30 जून 2013 को सेवानिवृत्त हुए। संस्कृत काव्य, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, वैज्ञानिक वाङ्मय, आधुनिक संस्कृत साहित्य आदि विविध विषयों पर आपके पर्यवेक्षण में 28 शोध शिष्यों ने शोधकार्य सम्पन्न किया है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रो॰ शर्मा ने अपने व्याख्यान हम्बोल्ट यूनिवर्सिटी, बर्लिन यूनिवर्सिटी, फिलिप्स यूनिवर्सिटी, भाखुर्ग यूनिवर्सिटी, पेरिस यूनिवर्सिटी आदि में दिये हैं। आपने विश्व संस्कृत सम्मेलन एवं अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन के अनेक सत्रों में अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किये हैं साथ ही अनेक सत्रों की अध्यक्षता भी की है। वे ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स के पूना, रोहतक, जम्मू, वाराणसी अधिवेशनों के कार्यकारिणी सदस्य रह चुके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में रामायण-महाभारत सम्मेलन, इण्डोनिशिया एवं मॉरिशस सत्रों के अध्यक्ष रहे हैं। मई 2001 में थाईलैण्ड, बैंकॉक स्थित शिल्पकॉर्न यूनिवर्सिटी, 'इण्टरनेशनल संस्कृत कॉन्फ्रेन्स' की आयोजन समिति के वाइस चेयरमैन के रूप में उन्होंने कार्य किया। अप्रैल 2001 में भारत, नई दिल्ली में आयोजित वर्ल्ड संस्कृत कॉन्फ्रेन्स में वे थाईलैण्ड से विशिष्ट अतिथि के रूप में आमन्त्रित किए गए।

प्रो॰ शर्मा को अनेक देशों की शैक्षणिक-सांस्कृतिक यात्रा का व्यापक अनुभव है। सन् 1987 में यू॰ जी॰ सी॰ के 'कल्चरल एक्सचेंज प्रोग्राम' के अन्तर्गत वे चार माह के लिए जर्मनी गए तथा यू॰ जी॰ सी॰ प्रोग्राम के अन्तर्गत ही 1990 में दो माह के लिए फ्रांस गए। सन् 1998 से 2001 तक तीन वर्ष के लिए भारत सरकार की विदेश मंत्रालयीय संस्था आई॰ सी॰ सी॰ आर॰ द्वारा अभ्यागताचार्य पद की प्रतिनियुक्ति पर वे थाइलैण्ड गए। वहाँ 'संस्कृत स्टडीज़ सेण्टर, शिल्पाकॉर्न यूनिवर्सिटी, बैंकाक में 'विजिटिंग प्रोफेसर' के रूप में महनीय कार्य किया। इसके अतिरिक्त विविध अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेने के लिए वे नीदरलैण्ड, ऑस्ट्रिया, मलेशिया, इण्डोनेशिया, इटली, मॉरीशस, स्कॉटलैण्ड, अमेरिका, जापान आदि देशों की यात्रा कर चुके हैं। उन्होंने अब तक 17 अन्तर्राष्ट्रीय तथा 15 राष्ट्रिय सम्मेलनों तथा लगभग 60 संगोष्ठियों में सक्रिय भागीदारी की है।

प्रो॰ शर्मा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू॰ जी॰ सी॰) की अनेक महत्त्वपूर्ण समितियों के सदस्य हैं। एतत्सम्बद्ध उनके प्रमुख गौरवपूर्ण पद हैं—यू॰ जी॰ सी॰ नामित सदस्य—विद्वत्परिषद्, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ मानित विश्वविद्यालय, तिरुपति; यू॰ जी॰ सी॰ नामित सदस्य—कार्य परिषद्, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ मानित विश्वविद्यालय, नई दिल्ली; यू॰ जी॰ सी॰ नामित विशेषज्ञ—परामर्शदात्री समिति-सेण्टर ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़ इन संस्कृत, जाधवपुर यूनिवर्सिटी, कोलकाता।

प्रो॰ शर्मा की रचनाएँ अनेक माध्यमिक-स्तरीय पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त जोधपुर विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, दयालबाग मानित विश्वविद्यालय, आगरा आदि में पाठ्यक्रम के अन्तर्गत रही हैं। उनकी कृतियों पर दिल्ली विश्वविद्यालय; कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय; महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक; हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला; राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर; डॉ॰ हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर आदि में शोधकार्य हो चुके हैं और हो रहे हैं।

आप साहित्य एवं काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ होने के साथ ही कवि भी हैं। सन् 1986 में गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष्य में दिल्ली में आयोजित सर्वभाषा कवि सम्मेलन में आपको संस्कृत कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। आपके द्वारा रचित "त्रिपथगा" कई विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम में निर्धारित है। उत्कलिका की तीन मधुर कविताएँ दिल्ली विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं। **मौलिक रचनायें**—1. त्रिपथगा, 2. गीतकन्दलिका, 3. उत्कलिका, 4. बालगीताली, 5. आक्रन्दनम्, 6. लसल्लतिका, 7. नवेक्षिका। **आलोचनात्मक**

ग्रन्थ—8. संस्कृत काव्यशास्त्रीय भावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, 9. आधुनिक संस्कृत लघुकाव्य (इतिहास), 10. निबन्धनिकुञ्जम्। **सम्पादित ग्रन्थ**—11. संस्कृत-सूक्ति-समुच्चयः (गद्यकाव्य खण्ड) 12. Glimpses of Sanskrit Poetics and Potry। आपके द्वारा रचित लगभग 50 शोध-पत्र विभिन्न सम्मानित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रो॰ शर्मा को उनके मौलिक ग्रन्थों पर उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान तथा एक रचना पर दिल्ली संस्कृत अकादमी से पुरस्कार प्राप्त हुए। उनके गीतिकाव्य लसल्लतिका पर उन्हें 2007 के गौरवपूर्ण साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। आपकी नई रचना-संस्कृत गीति संकलन 'नवेक्षिका' को उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ ने पुरस्कार प्रदान कर आपको विद्वतजगत में प्रतिष्ठित किया है। आपकी रचना शैली संस्कृत नवगीत विधा एवं आधुनिक संस्कृत नाट्य विधा को प्रदर्शित करती है।

छात्र-छात्राओं के प्रति मित्रवत् व्यवहार रखने वाले हरिदत्त शर्मा अहंकार रहित एवं कवि होने के कारण निर्मल हृदय वाले सुदर्शन व्यक्तित्व के स्वामी हैं। आप सभी से सहर्ष मिलने को तत्पर रहते हैं। आधुनिक संस्कृत साहित्य जगत् में एक संस्कृत कवि के रूप में आपकी विशिष्ट पहचान है। विविध संस्थाओं द्वारा आयोजित काव्य-गोष्ठियों में आप प्रायः आमंत्रित होते हैं। इसके साथ ही आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से निरन्तर कवितायें एवं वार्तायें भी प्रसारित होती हैं। संस्कृत जगत् में आलोचना एवं रचना दोनों ही क्षेत्रों में आपका विशिष्ट योगदान रहा है। गणतन्त्र दिवस की पूर्व सन्ध्या पर आयोजित 'सर्वभाषा कवि सम्मेलन' (2015) में संस्कृत काव्यपाठ ('नवसंसारम्') के लिए आपको संस्कृति कवि के रूप में भारत सरकार द्वारा आमन्त्रित करना आपके गौरव वर्धन के लिए पर्याप्त है।

अपने जीवन में एक दुर्घटना ने आपको हिला कर रख दिया, वह घटना थी-पूज्या माँ की हत्या—16 जून, 1975 को माँ नहीं रहीं। जीवन के वे कुछ वर्ष ऐसे थे जब ग्रह नक्षत्र अनुकूल नहीं थे। 9 नवम्बर 1972 को इलाहाबाद विश्वविद्यालय में नियुक्ति तो हुई किन्तु 30 जनवरी 1974 को अचानक सेवा मुक्त कर दिये गए। अपने अध्यवसाय से वे पुनः नियुक्त किये गए।

आज देश-विदेश, नगर-प्रदेश, घर-संसार सर्वत्र वे अपनी मेधा व काव्यप्रतिभा से प्रतिष्ठित हैं और अपने सहज मधुर व्यवहार से सबके स्नेह के पात्र बनने का गौरव हस्तगत किए हैं।

(17) दामोदर राम त्रिपाठी

प्रो॰ दामोदर राम त्रिपाठी का जन्म 15 जनवरी, सन् 1949 को गोरखपुर जनपद के ग्राम भरौलिया में हुआ था। उनके पिता श्री राघव राम त्रिपाठी, प्रधानाचार्य, संस्कृत महाविद्यालय के पद पर कार्यरत थे। उनकी माता का नाम श्रीमती गुजराती देवी था। प्रो॰ त्रिपाठी की प्रारम्भिक शिक्षा प्राच्य शिक्षा पद्धति के आधार पर ग्राम्य विद्यालय से सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करते हुए सम्पन्न हुई। सन् 1965 में प्रो॰ त्रिपाठी का विवाह श्रीमती विद्यावती त्रिपाठी से हुआ। सन् 1970 में उन्होंने आचार्य परीक्षा नव्य व्याकरण शास्त्र में प्रवीणता पूर्वक प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली। तत्पश्चात् आधुनिक पद्धति के अनुसार अध्ययन की इच्छा से सन् 1972 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम॰ ए॰ की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में सफलता प्राप्त कर कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड में शोधकार्य हेतु प्रवेश ले लिया। विषय था—संस्कृत काव्यशास्त्र में तात्पर्या और व्यञ्जना वृत्ति का समीक्षात्मक अध्ययन।

सन् 1972 में कुमाऊँ विश्वविद्यालय में प्रो॰ त्रिपाठी को प्रवक्ता पद पर स्थाई नियुक्ति मिल गई। वहीं अध्यापन कार्य करते हुए प्रो॰ त्रिपाठी रीडर व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग तथा कला संकायाध्यक्ष के पद दायित्व का निर्वहण करते हुए सन् 2009 में सेवा निवृत्त हुए।

प्रो॰ त्रिपाठी के अध्यापनकाल में लगभग 85 विद्यार्थियों ने उनके निर्देशन में वेद पुराण, धर्मशास्त्र, व्याकरण, दर्शन एवं काव्यशास्त्र पर शोधकार्य सम्पन्न किए। सम्प्रति उनके दिशा निर्देश में 11 शोधच्छात्र अध्ययनरत हैं। प्रो॰ त्रिपाठी ने संस्कृत भाषा एवं साहित्य विषयक लगभग 57 शोधपत्र विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रस्तुत किए हैं। इसके अतिरिक्त वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत अनेक लघु तथा बृहद् शोध परियोजनाओं पर कार्य समाप्त कर चुके हैं। प्रो॰ त्रिपाठी ने कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल के संस्कृत विभाग में 'शब्दशक्ति विमर्श' विषयक विद्वत्संगोष्ठी का सफल आयोजन किया है। सन् 2010 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में 'पाश्चात्त्य समीक्षकों की दृष्टि में संस्कृत' अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी के सफल संयोजन का श्रेय भी आपको ही है।

प्रो॰ दामोदर राम त्रिपाठी को देश के विख्यात विश्वविद्यालयों में व्याख्यान हेतु अनेकशः आमन्त्रित किया गया है। इनमें प्रमुख हैं—दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय; संस्कृत विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय; सम्पूर्णानन्द

संस्कृत विश्वविद्यालय; वाराणसी; बाबा साहेब अम्बेडकर विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार; संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय। प्रो० त्रिपाठी ने सन् 2008-09 में कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल में पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का भी संयोजन किया है। सन् 2009 में कुमाऊँ विश्वविद्यालय से अवकाश पाकर वे पण्डित गंगा नाथ झा चेयर पर आचार्य पद के दायित्व का कुशल निर्वहण कर रहे हैं। प्रो० त्रिपाठी द्वारा लिखित पुस्तकों की सूची निम्न है—

1. व्यञ्जना एवं तात्पर्यावृत्ति
2. वाक्तत्त्व विमर्श
3. शोधपत्रसंग्रह
4. वाक्यपदीय के परिप्रेक्ष्य में कालविमर्श

(18) मृदुला त्रिपाठी

मेधावी, मृदुभाषी मृदुला त्रिपाठी का जन्म श्रीकृष्ण की नगरी वृन्दावन (मथुरा) में दिनांक 4 जुलाई सन् 1950 को पिता डॉ० पी० जी० पाण्डेय तथा माता श्रीमती विद्यावती पाण्डेय की द्वितीय अतिसौन्दर्यमयी बालिका सन्तान के रूप में हुआ। डॉ० पाण्डेय निदेशक एनिमल हस्बैन्ड्री तथा निदेशक इण्डियन वेटरनरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट आदि सरकारी संस्थाओं में कार्यरत रहे। आंग्ल शासन में उच्च पदों पर नियुक्ति पाने वाले वे प्रथम भारतीय थे। सेवामुक्त होने के पश्चात् बगदाद युनिवर्सिटी में प्रोफेसर ऑव पैथोलॉजी पद का दायित्व उन्होंने स्वीकार किया था। प्रयाग में विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रशिक्षण हेतु उन्होंने भाषा संगम की स्थापना की थी, यह संस्था आज भी सक्रिय रह कर अनेक भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार में योगदान दे रही है। एक महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी में भाग लेते समय डॉ० पाण्डेय की असामयिक मृत्यु हुई। प्रो० मृदुला त्रिपाठी की अग्रजा डॉ० मञ्जुला पाण्डेय नगर की प्रख्यात चिकित्सा तथा अनुजा डॉ० नमिता पाण्डेय मनोविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद पर नियुक्त हैं। प्रो० मृदुला का विवाह 9 दिसम्बर, सन् 1977 को श्री राजीव कुमार त्रिपाठी, डिप्टी जनरल मैनेजर, इफ्को, फूलपुर के साथ सम्पन्न हुआ। इस दम्पत्ति की अग्रिम पीढ़ी में ज्येष्ठ पुत्री शिवांगी, एम० बी० ए०, यूनिट हेड, द्वितीय पुत्री श्वेता, सॉफ्टवेयर इंजीनियर, अमेरिका तथा कनिष्ठ पुत्र ईशान, एम० बी० ए० बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में कार्यरत हैं।

प्रो० मृदुला त्रिपाठी की आरम्भिक शिक्षा लखनऊ, बरेली आदि शहरों में सम्पन्न हुई। नवम कक्षा से द्वादश कक्षा तक इलाहाबाद में उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद् की हाईस्कूल (सन् 1965) तथा इण्टरमीडिएट (सन् 1967) परीक्षा

प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर उच्च शिक्षा के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। स्नातक स्तरीय परीक्षा (सन् 1969) अंग्रेजी, संस्कृत तथा प्राचीन इतिहासस विषयों में प्रथम श्रेणी तथा एम॰ ए॰ संस्कृत साहित्य (सन् 1971) परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। जर्मन-संस्कृत का पारस्परिक सम्बन्ध देख सुन कर जर्मन भाषा का प्रोफिशिएन्सी कोर्स (सन् 1971) भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। अनन्तर परमश्रद्धेय गुरु प्रो॰ चण्डिका प्रसाद शुक्ल के सुयोग्य निर्देशन में 'महाभारत के मुख्य कथानक में रसचित्रण' विषय पर स्तरीय शोधकार्य सम्पूर्ण किया।

प्रो॰ मृदुला त्रिपाठी की नियुक्ति 9 नवम्बर सन् 1972 को संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर हुई। सन् 1987 में वे रीडर तथा सन् 1996 में वे प्रोफेसर पद पर प्रोन्नत हुई। संस्कृत विभाग की अध्यक्षा के रूप में उनका कार्यकाल जनवरी 2001—फरवरी 2008 पर्यन्त रहा। सन् 2013-3 जुलाई 2015 तक डीन, कलासंकाय के दायित्वपूर्ण पद का भी संभरण उन्होंने भलीभाँति किया। विश्वविद्यालय में स्वतन्त्र रूप से स्थापित राजीव गाँधी चेयर प्रमुख का अतिरिक्त कार्यभार भी उन्होंने अनेक वर्षों तक स्वीकार किया।

प्रो॰ मृदुला त्रिपाठी के अनेक शोधपरक प्रपत्र संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः प्रकाशित होते रहते हैं। उनके सुयोग्य निर्देशन में 25 से अधिक शोधार्थियों ने अपने शोधकार्य सम्पन्न किए। आज उनके अनेक शिष्य महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। उन्हें आई॰ आई॰ टी॰ रुड़की सदृश संस्थाओं में व्याख्यान प्रस्तुत करने के अनेक अवसर उपलब्ध हुए हैं। संस्कृत विभाग में अनेकशः पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का कुशल संयोजन उन्होंने किया है। उन्होंने सन् 2014 में राजीव गाँधी पीठ के अन्तर्गत 'पीस बिल्डिंग इन ए कॉन्फिल्क्ट रिडन वर्ल्ड' विषय पर द्विदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया है। संगमनी त्रैमासिक संस्कृत शोधपत्रिका की सम्पादक समिति की सदस्या के॰ के॰ बिरला फाउण्डेशन, देहली; साहित्य अकादमी, देहली की सदस्या के रूप में वे निरन्तर संस्कृत साहित्य सेवा में निरत हैं। प्रो॰ मृदुला त्रिपाठी ने दो ग्रन्थों का लेखन प्रकाशन किया है—1. संस्कृत के प्रमुख शास्त्रकार (सहलेखिका) 2. महाभारत का काव्यविमर्श।

(19) आनन्द कुमार श्रीवास्तव

अर्वाचीन संस्कृत काव्यशास्त्र के विशेषज्ञ डॉ॰ आनन्द कुमार श्रीवास्तव का जन्म देववाणी के आराधक विद्वत्कुल में 9 नवम्बर सन् 1952 को इलाहाबाद में हुआ था। उनके पिता आचार्य उमा शंकर जानकार तीन भाषाओं—हिन्दी,

संस्कृत, अंग्रेजी के परम ज्ञाता तथा स्थानीय कायस्थ पाठशाला में अध्यापक थे। अनन्तर चौधरी महादेव प्रसाद महाविद्यालय से सन् 1973 में संस्कृत प्रवक्ता पद से सेवा निवृत्त हुए। वे एक उच्च कोटि के संगीतज्ञ भी थे। संगीत शिक्षा के लिए प्रसिद्ध प्रयाग संगीत समिति में आजीवन वे थ्योरी विभागाध्यक्ष रहे। प्रयाग के प्रतिष्ठित कवि होने के कारण वे 'जानकार' उपनाम का प्रयोग करते थे। प्रयाग के साहित्यिक जगत् में उमाशंकर 'जानकार' की ख्याति अपार थी। डॉ॰ आनन्द कुमार की माता श्रीमती फूल कुमारी श्रीवास्तव 92 वर्षीया होने पर भी शरीर तथा मस्तिष्क से पूर्ण, स्वस्थ, सक्रिय जीवन व्यतीत कर रही हैं। ऐसे सुयोग्य माता-पिता की सन्तान डॉ॰ आनन्द कुमार का पैतृक आवास रामपुर ग्राम, गोपीगंज, वाराणसी है परन्तु अध्ययन एवं आजीविका के निमित्त पिता के इलाहाबाद नगर को स्थाई निवास बना लेने पर उनकी प्राथमिक शिक्षा पिता की छत्रछाया में कायस्थ पाठशाला में हुई। बी॰ ए॰ की परीक्षा चौधरी महादेव प्रसाद महाविद्यालय तथा एम॰ ए॰ संस्कृत साहित्य की परीक्षा सन् 1973 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। पश्चात् विद्वद्वरेण्य प्रो॰ राजेन्द्र मिश्र के निर्देशन में आधुनिक संस्कृत के क्षेत्र में 'पण्डितराज जगन्नाथोत्तरवर्ती आचार्यों का संस्कृत काव्यशास्त्र को योगदान' विषय पर गवेषणापूर्ण शोधकार्य किया।

20 फरवरी सन् 1976 को डॉ॰ आनन्द कुमार का विवाह श्री परमेश्वरी दयाल (क्रान्तिकारी तथा पुलिस अधीक्षक, इन्टेलिजेंस शाखा,लखनऊ) की पुत्री उर्मिला श्रीवास्तव अर्थात् मेरे साथ सम्पन्न हुआ। मैंने वैदिक साहित्य के क्षेत्र में 'ऋग्वेद का अष्टम मण्डल : एक भाषिक अध्ययन' विषय पर लखनऊ विश्वविद्यालय से डॉ॰ मोती लाल रस्तोगी के दिशा निर्देशन में पीएच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की है। डॉ॰ आनन्द के एकमात्र कनिष्ठ भ्राता उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में अधिवक्ता हैं। उनकी पत्नी श्रीमती पिंकी श्रीवास्तव कुशल गृहिणी हैं। डॉ॰ आनन्द कुमार के दो पुत्र-निशीथ जानकार तथा पुनीत जानकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में उच्चाधिकारी तथा पुत्रियाँ—पांखुरी जानकार एवं निर्झरी जानकार अभियन्ता हैं। दोनों पुत्रवधूएँ प्रख्यात चिकित्सिकाएँ हैं। पुत्री पांखुरी के पति श्री जितेन्द्र वर्मा प्रतिष्ठित कम्पनी में अभियन्ता हैं।

डॉ॰ आनन्द श्रीवास्तव की नियुक्ति सन् 1974 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध चौधरी महादेव प्रसाद महाविद्यालय में पिता के सेवामुक्त होने पर संस्कृत विभाग में प्रवक्ता पद पर हुई। अध्ययन-अध्यापन के क्रम में जीवनयापन करते हुए उन्होंने विद्यालय के बहुविध प्रशासनिक दायित्वों का अपनी अपूर्व कार्यक्षमता से भलीभाँति निर्वाह किया है। अपनी सरस-सहज अध्यापन शैली, धीर गम्भीर ज्ञान तथा अत्यन्त शान्त मनोवृत्ति से वे सहकर्मियों तथा छात्रों के

मध्य अत्यन्त लोकप्रिय हैं। सम्प्रति डॉ॰ आनन्द महाविद्यालय के प्राचार्य पद को सुशोभित कर रहे हैं।

समाज सेवा डॉ॰ आनन्द का व्यसन है। सामाजिकता के निर्वाह के लिए उन्होंने विश्वस्तरीय समाजसेवी संस्था 'लायंस क्लब' की सदस्यता अब से 35 वर्ष पूर्व ग्रहण की थी। सन् 2014-2015 में क्लब के उच्चतम पद 'डिस्ट्रिक्ट गवर्नर' की गरिमा से उन्होंने समाजसेवा के क्षेत्र में अनेक कीर्तिमान स्थापित किए हैं।

डॉ॰ आनन्द कुमार ने अध्ययन को वरीयता देकर स्वदेश तथा विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों में प्राच्यविद्या सम्मेलनों, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, विश्व संस्कृत सम्मेलनों में प्रपत्र प्रस्तुत किए हैं, सत्रों एवं अनुभागों में अध्यक्षीय वक्तव्य दिए हैं। इनकी संख्या लगभग 70 होगी। अनेक साहित्यिक शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संस्थान उन्हें विशिष्ट व्याख्यान के लिए प्रायः आमन्त्रित करते हैं। राष्ट्र स्तरीय संस्कृत संस्थाओं तथा शिक्षण संस्थाओं के वे मानद महामन्त्री अध्यक्षादि पदों पर प्रतिष्ठित हैं। हिन्दी संस्कृत भाषाओं पर पूर्ण अधिकार होने के कारण नगर की अनेक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन का दायित्व उनके ऊपर है। सरल संस्कृत भाषा में उनके धाराप्रवाह व्याख्यान उनकी योग्यता के सूचक हैं। उनकी सरस-मधुर वाणी; ज्ञान-गम्भीर शैली व्याख्यानकाल में श्रोता को मन्त्रमुग्ध कर देती है।

डॉ॰ आनन्द के देश की भिन्न-भिन्न शोधपत्रिकाओं में लगभग 35 शोधलेख प्रकाशित हैं। सामान्य रुचि के आलेखों का प्रकाशन अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः होता ही रहता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई देहली द्वारा स्वीकृत लघु एवं बृहद शोधपरियोजनाओं पर उन्होंने मानक कार्य किये हैं। कालिदास साहित्य एवं कामकला—उक्त दस वर्षीया परियोजना के आप सहलेखक रहे हैं। अष्टाध्यायी पठन-पाठन की समाप्तप्राय परम्परा को 'जिज्ञासु सरलतम संस्कृत प्रचार समिति' के तत्त्वावधान में आपने पुनरुज्जीवित किया है। कम्बोडिया देश के अंकोरवाट मन्दिर के ख्मेर लिपिबद्ध शिलालेखों का सानुवाद आलोचनात्मक अध्ययन उनके गौरव का हेतु है। 'वाङ्मयम्' रिसर्च जर्नल तथा 'श्रीभट्टसत्ता' साप्ताहिक संस्कृत समाचार पत्र का सफल सम्पादन आपकी क्षमता का सूचक है। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से डॉ॰ आनन्द की वार्ताएं प्रायः प्रसारित होती हैं। गणतन्त्र दिवस (26 जजनवरी 2015) की पूर्वसन्ध्या पर प्रसारित सर्वभाषा कवि सम्मेलन में प्रो॰ हरिदत्त शर्मा रचित संस्कृत कविता 'नवसंसारम्' के हिन्दी पाठ की प्रस्तुति हेतु आकाशवाणी केन्द्र कटक (उड़ीसा) द्वारा उन्हें अवसर प्रदान किया गया। दूरदर्शन तथ आकाशवाणी के राष्ट्रस्तरीय

प्रसारक होने के कारण नगर में सम्पन्न होने वाले माघ मेलों तथा कुम्भ मेलों का 'आँखों देखा हाल' सुनाने के लिएए वे निरन्तर ही आमन्त्रित किए जाते हैं।

डॉ॰ आननद कुमार को अन्तर्राष्ट्रीय स्तरीय संस्कृत संगोष्ठियों व लायंस क्लब के वार्षिक समारोहों आदि में विदेश जाने के अनेक अवसर बार-बार मिले हैं। इन हेतुओं से उन्होंने अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, जापान, सिंगापोर, हांगकांग, पाकिस्तान, नेपाल, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, मॉरिशस, दुबई, कनाडा आदि देशों की शैक्षणिक यात्राएँ की हैं। उन्होंने केन्या (ईस्ट अफ्रीका) प्रवासकाल में राजधानी नैरोबी स्थित 'वैदिक स्टडीज सेण्टर' के अध्यक्ष पद का निरन्तर दो वर्ष दायित्व निर्वहण किया है। उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ने उनके ग्रन्थ 'अघोरपञ्चाङ्गम्' को पुरस्कृत किया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें 'संस्कृत महामहोपाध्याय' उपाधि से विभूषित किया है। डॉ॰ आनन्द कुमार श्रीवास्तव की दीर्घकालिक संस्कृत सेवा एवं विशिष्ट शास्त्र संवर्धन प्रवृत्ति को लक्ष्य कर उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ने उनको एक लाख एक हजार रुपये की धनराशिपरक विशिष्ट पुरस्कार (सन् 2015) से सम्मानित किया है।

डॉ॰ आनन्द द्वारा लिखित पुस्तकें निम्न हैं—

1. व्याकरणकुसुमाञ्जलि, 2. लघुसिद्धान्तकौमुदी—व्याख्या, 3. रसकौमुदी, 4. सिद्धान्तकौमुदी-कारकप्रकरण, 5. आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, 6. कालिदास साहित्य एवं कामकला (प्रथम मञ्जरी), 7. कालिदास के काव्य, 8. कालिदास साहित्य एवं कामकला (द्वितीय मञ्जरी), 9. त्रिगुणीश्री : (सम्पादित), 10. अधोर-पञ्चाङ्गम्, 11. कविर्जयति वाल्मीकि : (सम्पादित), 12. History of Arya Samaj, Nairobi, 13. Later Sanskrit Rhetoricians, 14. संस्कृत साहित्य में विज्ञान (सम्पादित), 15. गुरुकुल की लौ (सम्पादित), 16. कम्बुज अभिलेखों का साहित्य शास्त्रीय अध्ययन (यन्त्रस्थ)।

(20) यदुनाथ प्रसाद दुबे

प्रोफेसर यदुनाथ प्रसाद दुबे का जन्म पन्द्रह नवम्बर सन् उन्नीस सौ बावन को ग्राम नीबीकलाँ, पोस्ट-झूँसी, जनपद—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। उनके पिता स्वर्गीय रामकैलाश दुबे कृषक अवश्य थे परन्तु मनोवृत्ति से वे गृहस्थ सन्त थे, ईश्वर की पूजा-अर्चना में ही उनका समग्र दिन व्यतीत होता था। माता स्व॰ गंगा देवी दुबे गृहस्थ महिला थीं। उनकी आठ पुत्र सन्तानों में प्रो॰ यदुनाथ की संख्या सप्तम थी। प्रो॰ यदुनाथ की आरम्भिक शिक्षा ग्राम स्थित प्राइमरी विद्यालय में हुई। माध्यमिक शिक्षा के लिए उन्होंने मोती लाल नेहरू विद्यालय जमनीपुर में प्रवेश लिया तथा वहीं से इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण कर उच्च

शिक्षा हेतु इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए। सन् 1973 में स्नातक परीक्षा तथा सन् 1975 में संस्कृत विषय में परा स्नातक परीक्षाएँ उच्चतम अंकों से उत्तीर्ण कीं। प्रो॰ सुरेश चन्द्र पाण्डेय गुरुदेव के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में 'निरतुंगाचार्य की प्रबन्ध चिन्तामणि का आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी॰ फिल्॰ की उपाधि प्राप्त की। अनन्तर साहित्य, प्राकृत एवं जैनागम तथा पालि एवं थेरवाद इन तीन विषयों में आचार्य परीक्षा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से उत्तीर्ण की। साहित्य, पालि-प्राकृत एवं बौद्धदर्शन आपके अध्ययन के विशिष्ट क्षेत्र रहे। सन् 1977 में पूर्णिमा दुबे से आपका विवाह हुआ। सम्प्रति आपकी दो पुत्रियाँ पल्लवी (एम॰ एस-सी॰, एम॰ टेक॰) तथा मंजरी (एम॰एस-सी॰—रसायन शास्त्र) हैं।

अध्ययन प्रक्रिया समाप्त कर प्रो॰ दुबे को भवन्स मेहता महाविद्यालय भरवारी, कौशाम्बी (उत्तर प्रदेश) में व्याख्याता पद पर नियुक्ति प्राप्त हुई। सन् 1981 से सन् 2004 तक उन्होंने अध्यक्ष-संस्कृत विभाग का कार्यभार सँभाला। यहीं से आपकी नियुक्ति 4 दिसम्बर सन् 2004 में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के बौद्धदर्शन विभाग में आचार्य पद पर हुई। प्रोन्नति पाकर सन् 2010 में प्रतिकुलपति तथा फरवरी सन् 2015 में कुलपति पद को उन्होंने अलंकृत किया। सम्प्रति कुलपति पद पर आसीन रह कर वे विश्वविद्यालय की अनेक गतिविधियों का कुशल संचालन कर रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन ज्योतिष एवं अध्यात्मविज्ञान, अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, अखिल भारतीय दर्शन परिषद्, अध्यक्ष-कौशाम्बी शोध संस्थान आदि अनेक साहित्यिक संस्थाओं के वे आजीवन सदस्य हैं।

प्रो॰ यदुनाथ प्रसाद के लगभग 20 विद्वत्तापूर्ण आलेख देश की विभिन्न शोध संगोष्ठियों में विविध विषयों पर प्रकाशित हुए हैं। उनके कुशल निर्देशन में लगभग पन्द्रह शोधार्थियों को विभिन्न साहित्यिक विषयों पर पी-एच॰डी॰ उपाधि प्राप्त हुई है तथा लगभग बीस शोधार्थी शोधरत हैं। षष्ट्यधिक शोध संगोष्ठियों, सम्मेलनों, कार्यशालाओं, प्रतियोगिताओं में सहभागिता, प्रपत्र वाचन, व्याख्यान, निर्णायक, सत्राध्यक्ष एवं मुख्य अतिथि पद का निर्वहण उनकी अध्ययनप्रियता का सूचक है।

प्रो॰ दुबे देश के विभिन्न नगरों में आयोजित अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के राष्ट्रस्तरीय 39वें सम्मेलन से 45वें सम्मेलन पर्यन्त साउथ ईस्ट एशियन स्टडीज तथा प्राकृत एवं जैनागम सत्रों के अध्यक्ष पद के दायित्व का गरिमापूर्ण निर्वहण कर चुके हैं। प्रो॰ दुबे को प्राप्त पुरस्कारों का विवरण इस प्रकार है—

1. स्वर्ण पदक—सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, (प्राकृत एवं जैनागम विषयक परीक्षा में सर्वोच्च अंक) वर्ष—1999

2. विशिष्ट पुरस्कार, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा ''वाग्वैभवम्'' ग्रन्थ हेतु रु॰ 11,000, वर्ष—2004

3. उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा ''वाग्वितानम्'' ग्रन्थ हेतु रु॰ 5,000, वर्ष—2006

4. उच्च शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश शासन द्वारा ''शिक्षक श्री सम्मान'' रु॰ 50,000, वर्ष—2011

5. इन्द्रप्रस्थ एवं खेल विकास संगठन, नई दिल्ली द्वारा ''भारत गौरव'' वर्ष—2011

6. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (उ॰ प्र0) द्वारा ''महामहोपाध्याय'' की उपाधि, वर्ष—2012

7. सोसाइटी फॉर सोशल एण्ड रिसर्च ''सार संस्थान'' वाराणसी द्वारा ''काशी गौरव''—2014

प्रो॰ यदुनाथ प्रसाद दुबे के प्रकाशित ग्रन्थों की सूची निम्न हैं—

1. प्रबन्धचिन्तामणि का समालोचनात्मक अध्ययन
2. जैन संस्कृत महाकाव्य (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के सौजन्य से
3. भारतीय लोकतन्त्रराज्यम् (सम्पादन)
4. काव्यशास्त्र (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के सौजन्य से)
5. वाग्वैभवम्
6. वाग्वितानम्
7. सद्धर्मलंकावतारसूत्रम् (सम्पादन)
8. नरसिंह पुराणम् (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के सौजन्य से प्रकाश्य)
9. जैन संस्कृत नाटक (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के सौजन्य से प्रकाश्य)

(21) भगवत् शरण शुक्ल

प्रो॰ भगवत् शरण शुक्ल के पिता पण्डित रामकृष्ण शुक्ल संस्कृत के विद्वान् थे। प्रो॰ शुक्ल का जन्म ग्राम पोस्ट-कुठिया, मोहगवाँ, तहसील-कटनी, जबलपुर, मध्यप्रदेश में दिनांक 10 अप्रैल, 1956 को हुआ था। उनकी माता श्रीमती मूलदेवी शुक्ला सामान्य ग्राम्य महिला थीं। संस्कृत की आरम्भिक शिक्षा के पश्चात् उन्होंने पूर्वमध्यमा, उत्तरमध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य (1981) परीक्षाएँ

नव्यव्याकरण विषय लेकर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से उत्तीर्ण की। पश्चात् 'महाभाष्यप्रदीपोद्योतयोः तुलनात्मकं समीक्षात्मकञ्चाध्ययनम्' विषय पर शोधप्रबन्ध लिख कर राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, गंगानाथ झा परिसर, इलाहाबाद से विद्यावारिधि (1988) की उपाधि प्राप्त की।

प्रो॰ भगवत् शरण शुक्ल की प्रथम नियुक्ति सहायक प्रवक्ता पद पर श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय, दारागंज, इलाहाबाद में (1982) में हुई। तीन वर्ष पश्चात् वे प्रवक्ता पद पर (1985) सौदामिनी संस्कृत महाविद्यालय, इलाहाबाद में अध्यापन कार्य करते रहे। 21 वर्ष पश्चात् (2006) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रीडर पद पर नियुक्ति पा कर क्रमशः एसोसिएट प्रोफेसर तथा सम्प्रति प्रोफेसर पद को अलंकृत कर रहे हैं।

प्रो॰ भगवत् शरण शुक्ल ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दिल्ली द्वारा प्रदत्त शोध परियोजना के अन्तर्गत 'शुक्लयजुर्वेदीय संहिताओं में तिङन्त क्रियापद विवेक' विषय पर कार्य किया है। आपके निर्देशन में लगभग दस छात्रों ने स्तरीय शोधकार्य सम्पन्न किया है। आपने राष्ट्रीय संगोष्ठी स्तर पर कुल 88 तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी स्तर पर लगभग दस शोधपत्र प्रस्तुत किए है। आप एक रससिद्ध कवि है तथा कालिदास समारोह, उज्जैन एवं व्यास समारोह, मध्य प्रदेश आदि अनेक स्तरीय कवि गोष्ठियों में काव्यपाठ कर चुके हैं। विशिष्टता यह कि बांसुरी वादन में भी आपकी रुचि है, आपने बांसुरीवादन का विधिवत प्रशिक्षण लिया है। आकाशवाणी इलाहाबाद ने आपको बी ग्रेड कलाकार की स्वीकृति दी है। अनेक शैक्षणिक संस्कृत संस्थाओं, संस्कृत पत्रिकाओं, संस्कृत समितियों तथा संस्कृत समारोहों का आयोजन अध्यक्ष, सचिव आदि पदों से करना आपकी अभिरुचि है। संस्कृत की अनेक संस्थाओं ने अपनी ओर से आपको सम्मानित कर अपना गौरव वर्धित किया है। प्रमुख हैं—व्याकरण शास्त्रार्थ पुरस्कार, (1984) मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, भोपाल; न्यायशास्त्र भाषण पुरस्कार, (1985) राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली; ज्योतिर्महर्षि सम्मान, भारतीय ज्योतिष् परिषद्, कानपुर; वेद पण्डित पुरस्कार उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ; संस्कृत महामहोपाध्याय सम्मान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन (2005); संस्कृत साहित्य पुरस्कार, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ (2005) पतञ्जलि पुरस्कार, मध्य प्रदेश बोर्ड समिति (2006); शिक्षा प्रवीण सम्मान, रामायण मेला, समिति (प्रयाग) 2007; वैदिकभूषण सम्मान, पद्मेश इन्स्टीट्यूट ऑफ वैदिक साइन्सेज कानपुर (2012); महामुनिपाणिनि पुरस्कार, अखिल भारतीय विद्वत् परिषद, वाराणसी (2013) आदि संस्थाओं ने सम्मानित और पुरस्कृत किया है। आपके द्वारा लिखित पुस्तकों की संख्या 11 है, जिनकी सूची प्रस्तुत है—

1. वाच्यपरिवर्तन सिद्धान्त, 2. कारकप्रकरणव्याख्यान, 3. परिभाषार्थ चन्द्रिका, 4. अमृतकुम्भ, 5. परिहारषष्ठीव्रतकथा, 6. महाभाष्यतत्वविमर्शः, 7. शाब्दिकसिद्धान्तविमर्शः, 8. वैदिकतत्त्वविमर्शः, 9. रागार्णवं व्याख्यानम्, 10. वैयाकरणसिद्धान्तविवृतिः, 11. सम्बन्धविच्छित्तिः। सौदामिनी संस्कृत शोधपत्रिका का (सन् 1999 से) निरन्तर सम्पादन आपका ही दायित्व है।

(22) सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय

संस्कृतज्ञ एवं कुशल प्रशासनिक अधिकारी डॉ० सुरेन्द्र कुमार का जन्म दिनांक 25 जून सन् 1959 को ग्राम केवलपुर, बैरीवीसा (सन्त रविदास नगर), भदोही जनपद (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। पूज्य पितृचरण स्व० पण्डित राजपति पाण्डेय कृषक थे तथा माता श्रीमती फुलवन्ती देवी अद्यापि परिवार के संवर्द्धन में अपना योगदान दे रही है। उनका विवाह मई सन् 1970 को श्रीमती प्रेमा पाण्डेय से हुआ था। उन्होंने तीन पुत्रों राजेश पाण्डेय, राकेश पाण्डेय तथा ब्रजेश पाण्डेय तथा एक पुत्री अनामिका शुक्ला के अभिभावकत्व का धर्म निभाया है।

डॉ० सुरेन्द्र कुमार ने हाईस्कूल (सन् 1973) एवं इण्टरमीडिएट (सन् 1975) की परीक्षा उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद् से प्रथम श्रेणियों में अर्जित की। उन्होंने उच्चशिक्षा के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो कर बी० ए० (सन् 1977) की परीक्षा संस्कृत, अंग्रेजी साहित्य, दर्शनशास्त्र विषयों में तथा एम० ए० (सन् 1974) की परीक्षा संस्कृत साहित्य विषय से प्रथम श्रेणियों में उत्तीर्ण कीं। अध्ययन में अभिरुचि के फलस्वरूप साहित्याचार्य तथा साहित्यरत्न परीक्षाएँ भी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण कर लीं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही श्रद्धेय गुरुवर्य प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डेय के निर्देशन में 'श्लेष अलंकार : सिद्धान्त एवं प्रयोग' विषय पर शोधकार्य कर डी० फिल्० की उपाधि (सन् 1983) अर्जित की। उसी वर्ष उत्तर प्रदेश प्रोविंशियल सिविल सर्विसेज एलाइड में उनका चयन हो गया। अधिक परिश्रम कर उन्होंने उत्तर प्रदेश प्रोविंशियल सिविल सर्विसेज़ की मुख्य परीक्षा (सन् 1986) भी उत्तीर्ण कर राज्य सर्वकार में नियुक्ति प्राप्त की। सर्वकार द्वारा विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर कुशलतापूर्वक कार्य निर्वहण करते हुए वे सम्प्रति जिलाधिकारी, सिद्धार्थनगर के प्रतिष्ठित पद पर आसीन हैं। उनकी अभिरुचि तथा योग्यता से प्रभावित सर्वकार ने उन्हें निदेशक, आई० ई० आर० टी० इलाहाबाद तथा सचिव हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद के अध्यक्ष पदों का भी अतिरिक्त कार्यभार दिया। वे राष्ट्र स्तर पर प्रतिवर्ष पाँच-विद्वानों, कलाकारों, साहित्यकारों तथा संस्कृतज्ञों का सम्मान करने वाली संस्था मीरा स्मृति फाउण्डेशन, साहित्य भण्डार के उपाध्यक्ष हैं।

यह सुखद आश्चर्य है कि उच्चतम प्रशासनिक पदों के दायित्व निर्वाह में निरन्तर व्यस्त रह कर भी डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय अध्ययन के लिए समय निकाल ही लेते हैं। इसका प्रमाण है उनके लगभग 40 शोधालेख जो विभिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं; उनकी पुस्तकें जिनकी संख्या निरन्तर प्रवृद्ध हो रही है; उनको प्राप्त सम्मान, जिनसे संस्कृत जगत् की गरिमा का भी विस्तार हुआ है। सम्मान सूची इस प्रकार है—

सम्मान—1. संस्कृतमहामहोपाध्याय मानद उपाधि (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 2012); 2. सी॰सी॰टी॰वी॰ सम्मान, 2004; 3. मैन ऑफ द ईयर (प्रयाग गौरव समिति 2007); 4. साहित्य गौरव (विश्व हिन्दी साहित्य सेवा संस्थान, इलाहाबाद 2008); 5. हंसवाहिनीसृजनसम्मान (हंसवाहिनी इलाहाबाद 2008); 6. बीरबलसाहनीनामित पुरस्कार (हिन्दी संस्थान, लखनऊ 2003); 7. अभिनन्दन पत्र (विश्व संस्कृतसंस्थान, प्रयाग 2008); 8. इन्करेजमेंटऑनर (द नेचुरलन्यूजग्रूप 2011); 9. अमृतलालनागर पुरस्कार (उ॰प्र॰ राज्य कर्मचारीसाहित्य संस्थान लखनऊ 2015)।

प्रशासनिक कार्यों में निरन्तर व्याप्त रहकर भी डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय ने स्वयं को ज्योतिष् ज्ञान से समृद्ध किया है। इस विषय में परिपक्वता हेतु उन्होंने ज्योतिष् विषयक अनेक पुस्तकों का लेखन किया। एतदतिरिक्त विषयों पर भी उनकी अनेक पुस्तकें हैं, एकाधिक पुस्तकों पर उन्होंने राज्य सर्वकार से पुरस्कार भी हस्तगत किए हैं। सूची निम्न है—

कृतियाँ—1. ज्योतिष शब्दकोष, 2. ज्योतिषपंचशती, 3. आयुर्वेदपंचशती, 4. श्लेष अलंकार सिद्धान्त एवं प्रयोग, 5. धर्मशास्त्रसहस्त्रकम्, 6. उत्तर खोजते प्रश्न, 7. रत्नविमर्श, 8. उत्तर प्रदेश की नदियाँ एवं पहाड़, 9. हिन्दू समाज के प्रचलित संस्कार, 10. भारत की विदुषी महिलाएँ, 11. शंकरगीता, 12. वास्तु शब्दार्णव (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान से पुरस्कृत), 13. अमृत जीवन (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से पुरस्कृत, 14. अरिष्टयोग विमर्श (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान से पुरस्कृत), 15. पूर्वांचल लोक भाषाकोश, 16. अमेरिका की प्रशैक्षणिक यात्रा—एक संस्मरण।

सम्पादन—1. सूर्यविमर्श, 2. "हिन्दुस्तानी" त्रैमासिकलेख—अनुक्रमणिका (1931 से 2008 तक); 3. संस्कृति-पुरुष : पण्डित विद्यानिवास मिश्र, 4. साहित्य-शेवधि; 5. इलाहाबाद साहित्यकार कोश; 6. भारतीय मनीषा दर्शन; 7. कौशाम्बी का स्वर्णिम इतिहास एवं वर्तमान; 8. योग और अध्यात्म; 9. शब्द संक्षेप सागर; 10. वास्तु-विमर्श (प्रकाशनाधीन); 11. न्यायाधिपतिग्रह शनि—एक समग्र विवेचन (प्रकाशनाधीन)।

(23) बनमाली बिस्वाल

बनमाली बिस्वाल का जन्म ग्राम तेलिया, पोस्ट ऑफिस हत्सही, जिला जाजपुर, उड़ीसा प्रदेश में 4 मई, 1961 को हुआ था। उनके पिता श्री नारायण बिस्वाल तथा माता श्रीमती सत्यभामा बिस्वाल अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठित थे। बनमाली बिस्वाल ने स्थानीय स्तर पर पाठशालीय शिक्षा समाप्त कर जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी से सांख्ययोग से आचार्य परीक्षा (1982) उत्तीर्ण की। एम॰ ए॰ (1984), एम॰ फिल् (1986), यू॰ जी॰ सी॰ नेट परीक्षा, जूनियर रिसर्च फेलोशिप (1985) परीक्षा तथा पी-एच॰ डी॰ परीक्षा (1992) व्याकरण विषंय में प्रथम श्रेणी में पुणे विद्यापीठ से उत्तीर्ण की। पुणे विश्वविद्यालय से पालि भाषा में सर्टिफिकेट कोर्स (1978) व भारतीय भाषा केन्द्र, इलाहाबाद से मराठी भाषा में सर्टिफिकेट परीक्षा (1995) भी उन्होंने सहज ही उत्तीर्ण कर लीं। एक मेधावी छात्र के रूप में सभी परीक्षाएँ सफलता पूर्वक उत्तीर्ण करने के पश्चात् उनकी नियुक्ति प्रवक्ता पद पर राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के इलाहाबाद स्थित केन्द्र–आचार्य गंगानाथ झा परिसर में 18 अप्रैल, सन् 1988 को हुई। शीघ्र ही प्रोन्नत हो कर वे आज प्रोफेसर पद पर अधिष्ठित हैं।

बनमाली बिस्वाल व्याकरण के विशेषज्ञ होने के साथ ही वेद, दर्शन, धर्म और आधुनिक संस्कृत साहित्य के विद्वान् हैं। उड़िया, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी भाषाओं में उनकी गति अबाध है। मराठी तथा बंगाली भाषा का उन्होंने रुचिपूर्वक ज्ञान प्राप्त किया है। उनके सुयोग्य निर्देशन में 26 विद्यार्थी शोधकार्य पूर्ण कर चुके हैं तथा दस विद्यार्थी शोधकार्य संलग्न हैं। उनके मौलिक लेखन को विषय बनाकर 6 विद्यार्थी शोधकार्य कर रहे हैं, दो विद्यार्थियों का शोधकार्य पूर्ण हो चुका है। एम॰ फिल्॰ शोध परियोजना में 4 विद्यार्थियों ने उनके मौलिक लेखन पर शोधकार्य सम्पन्न किया है।

बनमाली बिस्वाल लिखित साहित्य में पुस्तकों की कुल संख्या 57 हैं। इनमें से 23 मौलिक, 6 अनूदित, 27 सम्पादित, 02 ई टेक्स्ट हैं। उन्होंने 40 पुस्तकों का आलोचित लेखन, 70 मासिक स्तरीय पत्रिकाओं तथा शोधग्रन्थों का सम्पादन तथा 04 अभिनन्दन ग्रन्थों का संयोजन और सफल सम्पादन किया है। उनके द्वारा 70 मौलिक शोधपत्र तथा 10 अनूदित शोधपत्र परिश्रमपूर्वक लिखे गए। उन्होंने गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ की शोधपत्रिका, दृक्, कथासरित्, पद्यबन्ध, उशती, शाश्वती, मधुच्छन्दा, त्रिवेणी तथा लोकप्रज्ञा आदि शोधग्रन्थों का कुशल सम्पादन किया है। वे शब्दज्योति (अर्धवार्षिक शोधग्रन्थ, मेदिनीपुर) के सम्पादक मण्डल के सदस्य रहे हैं। उन्होंने स्थानीय राष्ट्रिय एवं

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शताधिक शोध संगोष्ठियों तथा कार्यशालाओं में सहभागिता सुनिश्चित की है। इन आयोजनों में शोधलेख प्रस्तुत करने के अतिरिक्त अनेक बार वे विशिष्ट व्याख्याता तथा अध्यक्ष पद पर भी प्रतिष्ठित रहे हैं। अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के लिए उन्होंने भूमिका तथा सम्पादकीय लिखे हैं। ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, सागरिका, नाट्यम्, दृक्, कथासरित्, पद्यबन्ध, लोकप्रज्ञा, लोक भाषासुश्री, अमृतभाषा आदि प्रतिष्ठित संस्थाओं व पत्रिकाओं ने उन्हें आजीवन सदस्य बनाया है।

बनमाली बिस्वाल संस्कृत सम्भाषण लेखन कार्यशाला, हाइडिलबर्ग विश्वविद्यालय, व लेपजेग विश्वविद्यालय, जर्मनी में विदेशी छात्रों के लिए पाठ्यक्रम तैयार करने हेतु (जुलाई सन् 2006) में आमन्त्रित किए गए थे। कथासरित् तथा दृक् पत्रिकाओं के लिए उन्हें भारत के प्रतिष्ठित संस्कृत विद्वानों से वार्तालाप और साक्षात्कार के अवसर मिले हैं। उनकी मौलिक सर्जन प्रतिभा हेतु उनके भी साक्षात्कार पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। मौलिक सर्जना के अन्तर्गत उनकी संस्कृत वार्ताएँ, कविताएँ तथा कहानियाँ प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। इन वार्ताओं, कथाओं आदि का प्रसारण भी ऑल इण्डिया रेडियो तथा दूरदर्शन से होता है। राष्ट्रस्तरीय विद्वान् के रूप में ख्यातिप्राप्त बनमाली बिस्वाल को अनेक राष्ट्रस्तरीय सम्मानों व पुरस्कारों से अलंकृत किया गया है। उनके द्वारा लिखित पुस्तकों तथा सम्मानों की सूची संलग्न हैं–

शोध प्रबन्ध

1. समासशक्तिनिर्णय (कौण्डभट्ट), 1995
2. The concept of उपदेश in Sanskrit Grammar, 1996
3. पतञ्जलि as a Philosopher & Grammarian, 2003
4. भर्तृहरि as a Philosopher and Grammarian, 2006
5. व्याकरणतत्त्वालोचनम्, 2006
6. Studies on Sanskrit Grammar and grammatical concepts, 2006
7. A new approach to Philosophy of Sanskrit Grammar, 2007
8. Orissan Contributions to Sanskrit Grammar and Linguistics, 2007
9. The Science of Manuscripts, 2013
10. हस्तलेखविज्ञान, 2013

साहित्येतर रचनाएँ

11. सङ्गमेनाभिरामा (संस्कृत काव्य रचना संग्रह), 1996 12. व्यथा, 1997 13. नीरवस्वनः, 1998 14. ऋतुपर्णा, 1999 15. प्रियतमा, 1999 16. वञ्च तुमे मो आयुष नेइ, (उड़िया काव्य संग्रह) 1999 17. वेलेंटाइन-डे-सन्देश, 2000 18. यात्रा, 2002 19. जगन्नाथचरितम् (संस्कृत कथा संग्रह), 2003 20. बुभुक्षा, 2001 21. जिजीविषा, 2006 22. सकालर मुँह (उड़िया कथा संग्रह), 2000 23. कश्चित्कान्ता, 2000

अनूदित पुस्तकें

24. योगरत्नावली (हिन्दी-अंग्रेज़ी अनुवाद), 2006 25. वाक्यवादः, 2010 26. तारा अरुन्धती (गुजराती-संस्कृत अनुवाद), 2011 27. पत्रालयः (बंगला-संस्कृत अनुवाद), 2012 28. जन्मान्धस्य स्वप्नः (उड़िया-संस्कृत अनुवाद), 2013 29. मण्डन मिश्र (हिन्दी-अंग्रेज़ी अनुवाद)

सम्पादित पुस्तकें

30. प्रतिध्वनिः (संस्कृतकविता संग्रह), 199531. पञ्जाबी-संस्कृत-पाठमाला, भाग I, 1992 32. पञ्जाबी-संस्कृत-पाठमाला, भाग II, 1996 33-36. प्रथम-दीक्षा–पाँच-पुस्तकें-राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2002 37-39. द्वितीय-दीक्षा 3 पुस्तकें—राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2002 40. संक्षेपरामायणम्, 2003 41. सिन्दूरप्रकरकाव्यम् (सोमप्रभशतकम्), 2003 42. मनसिजसूत्रम् (दीपिका जयकृष्ण की व्याख्या सहित), 2007 43. वाक्यवादः, 2010 44. जगन्नाथसुभाषितम्, 2011 45. वाक्यदीपिका, 2012 46. लघुसिद्धान्तकौमुदी, खण्ड-1–संज्ञा-परिभाषा-प्रकरणम्, 2012 47. लघुसिद्धान्तकौमुदी, खण्ड-2–अच्-सन्धि-प्रकरणम्, 2012 48. लघुसिद्धान्तकौमुदी, खण्ड-3–हल्-सन्धि विसर्गसन्धि-स्वादिसन्धि- प्रकरणम्, 2012 49. लघुसिद्धान्तकौमुदी, खण्ड-4–अजन्त-प्रकरणम्, 2012 50. लघुसिद्धान्तकौमुदी, खण्ड-5–हलन्त-प्रकरणम् अव्ययप्रकरणञ्च, 2012 51. लघुसिद्धान्तकौमुदी, खण्ड-6–भ्वादि-प्रकरणम्, 2012 52. सिद्धान्तकौमुदी, खण्ड-01–संज्ञा-परिभाषा-प्रकरणम्, 2012 53. सिद्धान्तकौमुदी, खण्ड-02–अच्-सन्धि-प्रकरणम्, 2012 54. सिद्धान्तकौमुदी, खण्ड-03–हल्-सन्धि-प्रकरणम्, 2012 55. सिद्धान्तकौमुदी, खण्ड-04–विसर्गसन्धि-स्वादिसन्धि, 2012

सम्पादित जर्नल्स्

1. Journal of G.N. Jha Campus, Allahabad (Volume-63), 2010-2012 (4 संस्करण)

2. सारस्वतकुसुमाञ्जलि (स्व० जयमन्त मिश्र अभिनन्दन ग्रन्थ)

6. कृष्णमाधवचिन्तामणि (स्व० प्रो० कृष्णमाधव झा स्मृति ग्रन्थ)

7. शतदलम् (प्रो० हरिहर झा अभिनन्दन ग्रन्थ)

8-34. दृक् (षाण्मासिकी) आधुनिक संस्कृत साहित्य समीक्षा-पत्रिका 26 अंक (1-26), 1999-2012

35-51. कथासरित् (षाण्मासिकी) संस्कृत-कथा-पत्रिका 16 अंक (1-16), 2005-2012

52-55. पद्यबन्ध, (षाण्मासिकी) संस्कृत-कविता-पत्रिका 3 अंक (1-3), 2011-2012

56-57. उशती (वार्षिकी) संस्कृत-साहित्य-पत्रिका 2 अंक (5-6), 2000-2001

58-63. मधुच्छन्दा, (वार्षिक) ओडिआ-साहित्य-पत्रिका 6 अंक (1-6), 1986-88

64-66. त्रिवेणी, (वार्षिकी) ओडिआ-साहित्य-पत्रिका 3 अंक (1-3), 1988

67. Souvenire. (वार्षिकी) ओडिआ-हिन्दी-आंग्ल-त्रिभाषी-साहित्य-पत्रिका 1 अंक (1), 1989

68-70. शाश्वती (वार्षिकी) ओडिआ-हिन्दी-द्विभाषी-साहित्य-पत्रिका 3 अंक (1-3), 1994-2000

ई-टेक्स्ट परियोजनाएँ

1. वैयाकरणभूषण Uploaded in Sansthan's Web-site, 2010-11

2. वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा Uploaded in Sansthan's Web-site, 2010-11

अप्रकाशित ग्रन्थ

1. परिभाषार्थमञ्जरी 2. आख्यातचन्द्रिका 3. सारस्वती प्रक्रिया (द्वादश-पक्षीय टीका) 4. पदमुष्टिप्रकाशिका 5. लिङ्गप्रकाशः 6. प्रातिशाख्य-पारिभाषिकशब्दकोश (सहलेखक) 7. कौण्डभट्टकृत बृहद् वैयाकरणभूषण (समीक्षात्मक सम्पादन) 8. Theism and Theology ; Indian Sources 9. क्वास्ति में भारतम् (संस्कृत काव्य संग्रह) 10. बालकविता 11. एषणा (संस्कृत कथा संग्रह) 12. कथा भारती (संस्कृत अनूदित कथा संग्रह)

पुरस्कार (राष्ट्रस्तरीय)

1. बाणभट्ट-पुरस्कार, (नीरवस्वनः), 1999,2000
   उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
2. विविध-पुरस्कार, (सङ्गमेनाभिरामा), 1996
   उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
3. विविध-पुरस्कार, (पञ्जाबी-संस्कृत-पाठमाला) 1996
   उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
4. विविध-पुरस्कार (प्रियतमा), 1999
   उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
5. गोस्वामि-गिरिधरलाल-गद्यरचना-पुरस्कार, (नीरवस्वनः) 1999-2000
   देहली संस्कृत अकादमी, दिल्ली
6. पण्डितराज जगन्नाथ पद्यरचना-पुरस्कार (सङ्गमेनाभिरामा), 1997-98
   दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली
7. भाउराओ-देवरस-सेवान्यास-युवासाहित्यकार-पुरस्कार, 1996
   भाऊरस देवरस सेवान्यास, लखनऊ
8. अखिलभारतीय-मौलिक-संस्कृत-कथारचना-पुरस्कार, 1998
   देहली संस्कृत अकादमी, दिल्ली
9. गोस्वामि-गिरिधरलाल-गद्यरचना-प्रथम पुरस्कार, (बुभुक्षा) 2002
   देहली संस्कृत अकादमी, दिल्ली
10. पण्डितराज जगन्नाथ-पद्यरचना-द्वितीय-पुरस्कार, (दारुब्रह्म) 2002-03
    देहली संस्कृत अकादमी, दिल्ली
11. संस्कृत-महामहोपाध्याय-सम्मान, 27 मई 2005
    हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
12. अखिल भारतीय समस्यापूर्ति-पुरस्कार, 2006
    देहली संस्कृत अकादमी, दिल्ली
13. अखिल भारतीय मौलिक-संस्कृत-लघुकथा-पुरस्कार, 2006
    देहली संस्कृत अकादमी, दिल्ली
14. संस्कृत प्रतिभा सम्मान, 2006 के॰ के॰ वूमेन्स कॉलेज, बलसोर
15. विविध-पुरस्कार (जिजीविषा), 2007
    उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
16. नव ऊर्जा अभिनन्दन, 2012
    भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता।

(24) गिरिजा शंकर शास्त्री

डॉ० गिरिजा शंकर शास्त्री का जन्म 1 दिसम्बर, 1961 को महाभारत प्रसिद्ध गंगा के दाएँ तट पर स्थित लाक्षागृह ग्राम के ठीक सामने गंगा के बाएँ तट पर भीमतारा (भुईंपारा) ग्राम में परम्परागत संस्कृत परिवार में हुआ था। वे श्री बद्री प्रसाद तथा श्रीमती जगवन्ती देवी की तृतीय सन्तान थे। पिता श्री बद्री प्रसाद धर्मशास्त्र, ज्योतिष्, पुराण, भागवत के ख्यातिलब्ध विद्वान् थे। अपनी अर्जित विद्याओं के द्वारा वे क्षेत्रीय लोगों की भरसक सहायता करते थे। भागवत कथा वाचन में उनके समान उस क्षेत्र में अन्य न था।

वंशानुगत संस्कृत ज्ञान से समृद्ध डॉ० गिरिजा शंकर शास्त्री की आरम्भिक शिक्षा ग्रामस्थित इण्टरमीडिएट कॉलेज शुक्लपुर से आरम्भ हुई। हाईस्कूल तथा इण्टर की परीक्षाओं में विद्यालय में सर्वोच्च अंक प्राप्त कर आपने परिवार और विद्यालय दोनों का मानवर्धन किया। परिणामस्वरूप प्रसन्नमन पिता ने उच्चशिक्षा के लिए आपका प्रवेश इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कराया। बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर एम० ए० परीक्षा (साहित्य से सन् 1982) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली। ज्योतिष शास्त्र में रुचि के फलस्वरूप फलित ज्योतिष् में आचार्य परीक्षा (1983) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से उत्तीर्ण कर ज्योतिषाचार्य हो गए।

गुरुवर्य प्रो० सुरेश चन्द पाण्डेय के निर्देशन में सन् 1988 में आपको इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त हो गई। उसी वर्ष जून मास में आपका विवाह ए० जी० ऑफिस में लेखाधिकारी की पुत्री सुश्री मञ्जुमती से हुआ। सम्प्रति आपके पुत्रद्वय—देवव्रत तथा प्रियव्रत अभियन्ता पाठ्यक्रम उत्तीर्ण कर सेवाकार्य में संलग्न हैं।

सन् 1987 में ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज में लगभग डेढ़ वर्ष आंशिक प्रवक्ता पद पर कार्य करने के पश्चात् आपकी नियुक्ति 30 अप्रैल, 1988 को स्थाई प्रवक्ता पद पर उसी महाविद्यालय में हो गई। सत्र 1990-91 में पंडित जयशंकर त्रिपाठी के अवकाश ग्रहण के पश्चात् आपने संस्कृत विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। जुलाई, 1993 में वरिष्ठ प्रवक्ता तथा 20 जुलाई, 2001 में उपाचार्य पद पर क्रमशः प्रोन्नत होकर वे अद्यापि अध्यापनरत हैं तथा अपनी स्पष्ट संस्कारित अध्यापन शैली के लिए छात्रों के मध्य पर्याप्त लोकप्रिय हैं। अनेक वर्षों तक उन्होंने महाविद्यालय के कुलानुशासक का कार्यभार सँभाला है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के ईश्वर शरण महाविद्यालय के केन्द्राध्यक्ष तथा परीक्षा संचालक दायित्वों का निर्वाह भी उन्होंने कुशलतापूर्वक

किया है।

डॉ० गिरिजा शंकर शास्त्री के सुयोग्य निर्देशन में श्री अवधेश प्रताप सिंह, रीवां विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश; सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बरी, झुंझनु, राजस्थान; महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश के पञ्चाधिक छात्र-छात्राएँ शोध कार्य कर रहे हैं। वे इन विश्वविद्यालयों के शोधच्छात्रों के शोधग्रन्थ व मौखिकी परीक्षक भी रहते हैं।

डॉ० गिरिजा शंकर शास्त्री का ज्ञान बहुआयामी है। धाराप्रवाह संस्कृत सम्भाषण में सक्षम वे संस्कृत व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि अनेक विधाओं में दक्ष हैं। उनकी स्मरण शक्ति अत्यधिक तीव्र हैं। संस्कृत साहित्य से उन्हें अगणित श्लोक कण्ठस्थ हैं। ज्योतिष् शास्त्र के क्षेत्र में उनकी यह प्रतिभा विशेष निखरी हुई है। अपने मत के समर्थन में शास्त्र से प्रमाण उद्धृत कर वे तत्क्षण श्रोता का भ्रम मिटा देते हैं। ज्योतिष् सम्बन्धी ज्ञान ने उन्हें राष्ट्रस्तर पर प्रसिद्धि दी है। नगर के सम्भ्रान्त-गणमान्य सज्जन हों अथवा कोई सामान्य निर्धन व्यक्ति, समान मनोयोग से आर्थिक लाभ से ऊपर उठ कर वे स्वार्जित ज्योतिष् विद्या से उसकी समस्या का समाधान कर देते हैं।

डॉ० गिरिजा शंकर के ज्योतिष् ज्ञान का उपयोग करने के लिए उन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका के पेन्सिलवेनिया स्टेट में आयोजित कार्यशाला में 31 जुलाई से 20 सितम्बर, 2008 तक प्रतिभागी व व्याख्यानदाता के रूप में ससम्मान आमन्त्रित किया गया। नेपाल राष्ट्र में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय वास्तु सम्मेलन सितम्बर, 2009 में उन्होंने उद्घाटन सत्र में विशिष्ट अतिथि तथा समापन सत्र में अध्यक्ष पदों के दायित्व का सम्यक् निर्वहण किया। वे उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा आयोज़ित अष्ट दिवसीय आयुर्वेद एवं ज्योतिष् कार्यशाला (9-16 नवम्बर, सन् 2005) के सहसंयोजक व संचालक रहे हैं। वे अनेक वर्ष पर्यन्त राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा आयोजित अनौपचारिक संस्कृत शिक्षण केन्द्र के विद्यालयस्तरीय संयोजक रहे हैं।

डॉ० गिरिजा शंकर शास्त्री ने नवम्बर, सन् 2012 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महाविद्यालय परिसर में 'संस्कृत वाङ्मय एवं विश्व का अभ्युदय' विषय पर त्रिदिवसीय संस्कृत संगोष्ठी सफलता पूर्वक आयोजित की। अन्तर्राष्ट्रीय ज्योतिष् सम्मेलन आयोजन के अतिरिक्त आपने लगभग पचास शैक्षिक संगोष्ठियों तथा अठारह विविध सम्मेलनों का आयोजन और सहभागिता की है। डॉ० गिरिजा शंकर शास्त्री की आकाशवाणी से लगभग 40 वार्ताएँ संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में प्रसारित हो चुकी हैं। ज्ञानवाणी से 21 कार्यक्रम तथा दूरदर्शन से 12 वार्ताएँ प्रसारित हुई हैं। अंन्य

अनेक टी॰ वी॰ चैनलों से पर्व और धर्म सम्बन्धी लगभग 150 प्रसारण हो चुके हैं। धार्मिक समस्या आने पर टी॰ वी॰ चैनल शास्त्री जी के मुख से ही समाधान कहलाते हैं क्योंकि वे शास्त्रों से प्रमाण उदघृत कर श्रोता को सन्तुष्ट कर देते हैं।

डॉ॰ गिरिजा शंकर शास्त्री ने राष्ट्रिय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित संगोष्ठियों और सम्मेलनों में अशीति से अधिक शोधपत्र प्रस्तुत किए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शोधपत्रिकाओं में बीस से अधिक शोधपत्र तथा राष्ट्रस्तर की शोध पत्रिकाओं में पञ्चाशदधिक शोधपत्र प्रकाशित हुए है। वार्षिक, षाण्मासिक, त्रैमासिक, मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक, दैनिक पत्रों और पत्रिकाओं में आपके आलेख अविरल प्रकाशित होते हैं। श्रेयस्कर यह कि डॉ॰ शास्त्री ने संस्कृत जगत् को अपने लेखन से सत्रह ग्रन्थ उपहार में दिए हैं। अध्ययन सम्बन्धी इस महनीय-प्रशंसनीय योगदान के लिए डॉ॰ गिरिजा शंकर शास्त्री को प्रताप नारायण मिश्र युवा साहित्यकार पुरस्कार (2001), उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा विशेष पुरस्कार (2002, 2004, 2007, 2010) तथा शास्त्र पुरस्कार (2006) अखिल भारतीय विद्वत् परिषद्, काशी द्वारा महर्षि वशिष्ठ पुरस्कार (2007) प्रदान किए गए। अनेक ज्योतिषीय व अन्य संस्थाओं द्वारा ज्योतिष् सम्मान, प्रयागरत्न सम्मान, ज्योतिष् विशारद सम्मान, ज्योतिष् भास्कर सम्मान, ज्योतिष् पराशर सम्मान, महामहोपाध्याय सम्मान, राजमोहन उपाध्याय सम्मान, आर्यावर्त विद्वत्परिषद् सम्मान, गंगा भक्त सम्मान, प्रयाग गौरव सम्मान, प्रयाग विभूति सम्मान, प्रयाग प्रतिष्ठा सम्मान, अनन्यतम सम्मान, धर्मकर्म आचार्य सम्मान, शताब्दी सम्मान, लायन्स एवं रोटरी क्लब द्वारा शिक्षक सम्मान प्रदान कर डॉ॰ शास्त्री को सम्मानित किया गया है। सम्प्रति वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में विज़िटिंग प्रोफेसर हैं।

डॉ॰ शास्त्री द्वारा रचित ग्रन्थों की सूची निम्न हैं—

1. होडाचक्रम् (2000), 2. आचार्य वराहमिहिर (2001), 3. ज्योतिष तत्त्व विवेक (2001) 4. भारतीय कुण्डली विमर्श (2002), 5. ज्योतिष् फलितार्णव (2002), 6. लोमश संहिता (2002), 7. वैदिक ज्योतिष (2003), 8. ज्योतिर्विज्ञान विमर्श (सम्पादन 2004), 9. मयूरचित्रकम् (2005), 10. ज्योतिष् विवाह सर्वस्व (2006), 11. वशिष्ठ संहिता (2006), 12. भारतीय शास्त्र एवं शास्त्रकार (2006), 13. बृहस्पति संहिता (2011)— सभी पुस्तकें चौखम्बा संस्कृत भवन वाराणसी से प्रकाशित। 14. भारतीय काव्य शास्त्र एवं काव्य परिशीलन, राका प्रकाशन, इलाहाबाद (2007), 15. लघुसिद्धान्त कौमुदी, दो भाग, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद (2008), 16. भारतीय ज्योतिष् में प्रयाग, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद से प्रकाशित (2009), 17. यवनजातकम्, 18. संस्कृतनिबन्ध मञ्जरी।

वे ज्योतिष् कर्मकाण्ड एवं अध्यात्म शोध संस्थान, प्रयाग से सन् 2007-08 से निरन्तर पञ्चांग का प्रकाशन कर रहे हैं, जनसामान्य के लिए यह पञ्चांग अत्यधिक उपयोगी है।

(25) जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि'

प्रो० जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि' का जन्म ग्राम-शकरा रामपुर, जनपद-जौनपुर में सावर्ण्य गोत्री इँटारि पाण्डेय वैष्णव सम्प्रदायी ब्राह्मण वंश में दो अक्टूबर, सन् 1962 को मध्याह्न में 1.30 पर हुआ था। प्रपितामह पं० शिवसूरति पाण्डेय जौनपुर जनपद के प्रसिद्ध कर्मकाण्डज्ञ तथा ज्योतिर्विद् थे। पिता पं० कामता प्रसाद पाण्डेय ने परिवार की परम्परा का पालन करते हुए कर्मकाण्ड और ज्योतिष् के साथ व्याकरण से भी आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की थी। माता स्व० श्रीमती रमा देवी को मणि जी से शैशवावस्था में ही मृत्यु (सन् 1968) ने छीन लिया था। माँ के ममत्व के अभाव ने बालक 'मणि' के हृदय में कविता के अक्षय संस्कारों का अंकुरण कर दिया, बाल्यकाल से ही उनकी रुचि काव्यरचना में प्रवृत्त हो गई थी। माँ के असामयिक निधन के कारण पितामही स्व० कुन्ती देवी ने शिशु 'मणि' का लालन-पालन कर उसे जीवनदान दिया। उनका विवाह 18 जून, सन् 1979 में सुलक्षण सम्पन्न इन्दिरा पाण्डेय से हुआ था।

प्रो० मणि की आरम्भिक शिक्षा ग्रामस्थ विद्यालय में सम्पन्न हुई। उच्च शिक्षा के लिए वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए। उन्होंने हाईस्कूल (सन् 1978) से लेकर एम० ए० (सन् 1984) तक सारी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। संस्कृत (साहित्य वर्ग) में एम० ए० की परीक्षा वरीयता क्रम के साथ उत्तीर्ण करने के पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय से श्रद्धेय गुरु प्रो० अभिराज राजेन्द्र मिश्र (पूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) के निर्देशन में 'नाट्यशास्त्र में उपलब्ध काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय पर डी० फिल्० की उपाधि (सन् 1992) प्राप्त की। इसके पश्चात् उन्होंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से चयनित होकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में रिसर्च एसोशिएट के रूप में 'संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध प्रमुख रामकाव्यों का तुलनात्मक साहित्यिक समालोचन' विषय पर पोस्ट डॉक्टोरल शोधकार्य किया।

प्रो० मणि की प्रथम नियुक्ति वर्ष 1999 में प्रवक्ता संस्कृत के पद पर उत्तरप्रदेश लोक सेवा आयोग, इलाहाबाद से चयनित हो कर 'गवर्नमेन्ट पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, लैंसडौन, जयहरिखाल, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड में हुई। वर्ष

2005 में 'रीडर' हो कर राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन) गंगा नाथ झा शोध संस्थान, इलाहाबाद में नियुक्त हुए। वर्ष 2011 में 'मणि' इसी शोध संस्थान में प्रोफेसर पद पर अधिष्ठित हो कर साहित्य सेवा में सम्पृक्त हैं।

प्रो॰ मणि संस्कृत साहित्य को लोकप्रिय बनाने में प्रयासरत रहते हुए देश की हिन्दी-उर्दू भाषाओं के समानान्तर संस्कृत गलज्जलिका (ग़ज़ल) जैसी विधाओं में साहित्य सर्जना करते हैं। नितान्त आधुनिक विषयों पर नाट्यलेखन उनकी साहित्यिक अभिरुचि के प्रमाण हैं। उनकी उत्कृष्टतम उपलब्धियों में 15 अगस्त, 2002 को भारत सरकार, नई देहली द्वारा राष्ट्रपति पुरस्कार के लिए चयनित होना है। आप यह पुरस्कार पाने वाले देश के प्रथम युवा संस्कृतज्ञ हैं।

प्राप्त सम्मानों/पुरस्कारों का विवरण

1. महाकवि कालिदास सम्मान (वैदिक शोध संस्थान, कण्वाश्रम कोटद्वार, गढ़वाल), 1993
2. विविध पुरस्कार (उ॰ प्र॰ संस्कृत संस्थान लखनऊ, उ॰ प्र॰ सरकार), 1995
3. पंडित प्रताप नारायण स्मृति पुरस्कार (भाऊ राव देवरस सेवा न्यास, लखनऊ), 1995
4. पण्डितराज जगन्नाथ पुरस्कार (दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली सरकार), 1997
5. सर्टिफिकेट ऑफ आनर (दशम विश्व संस्कृत सम्मेलन, बंगलोर, भारत), 1997
6. व्यासध्वज पुरस्कार (श्रेष्ठ संस्कृत कवि पुरस्कार, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ), 2000
7. व्यासध्वज पुरस्कार (श्रेष्ठ संस्कृत कवि पुरस्कार, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ), 2001
8. विशेष पुरस्कार (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ, उत्तर प्रदेश सरकार), 2001
9. महर्षि बादरायण व्यास सम्मान (राष्ट्रपति पुरस्कार, भारत सरकार, नई दिल्ली), 2002
10. विविध पुरस्कार (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ, उत्तर प्रदेश सरकार), 2002
11. कालिदास सम्मान (कालिदास जन्म भू स्मारक समिति, कविल्ठा उत्तराखण्ड), 2002
12. महर्षि कण्व सम्मान (वैदिक शोध संस्थान, कण्वाश्रम, कोटद्वार,

उत्तराखण्ड), 2002

13. साहित्य प्रवीण सम्मान (राष्ट्रभाषा प्रचार परिषद्, प्रयाग, उत्तर प्रदेश), 2008
14. प्रभा श्री सम्मान (सोनांचल साहित्य संस्थान, सोनभद्र, उत्तर प्रदेश), 2011

साहित्य के क्षेत्र में किये गये कार्य का विवरण–

(1) रचनाएँ

1. निस्यन्दिनी (मौलिक संस्कृत गीतिकाव्य), 1995
2. नीराजना (मौलिक संस्कृत स्तोत्र काव्य), 2001
3. रागिणी (मौलिक संस्कृत गीतिकाव्य), 2002
4. जिजीविषा–(हिन्दी गीत काव्य) प्रकाशित, 2009
5. सौरभेयी (मौलिक संस्कृत गीतिकाव्य) प्रकाशनाधीन
6. भावच्छन्दः शती (मौलिक संस्कृत काव्य) प्रकाशनाधीन
7. उद्गारपञ्चशिका (मौलिक संस्कृत काव्य) प्रकाशानाधीन
8. रूपपञ्चरत्नम् (मौलिक संस्कृत नाट्य संग्रह) प्रकाशनाधीन
9. मालिनी (मौलिक संस्कृत कथा संग्रह) प्रकाशनाधीन
10. भस्म की सौगन्ध (मौलिक हिन्दी नाटक) प्रकाशनाधीन

(2) सम्पादित/टीका कृत ग्रन्थ

1. जानकी गीत (हर्याचार्यकृत 'जानकीगीतम्' की प्रथम हिन्दी भाषा टीका), 1995
2. सकलरससारसंग्रह (मैथिलाभिनव कालिदास कृत सकलरससारसंग्रह का सम्पादन एवं हिन्दी भाषा टीका), 2010
3. ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् (प्रो॰ इच्छाराम द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन) 2011
4. अयोध्यादीपशिखा (स्कन्द पुराणगत अयोध्यामाहात्म्य की प्रथम हिन्दी भाषा टीका) प्रकाशनाधीन
5. नृप विलासः (शिवराम त्रिपाठी कृत नृप विलासः का सम्पादन), 2011

(3) समीक्षाग्रन्थ

1. संस्कृतवाङ्मये कविशिक्षा, 2. नाट्यशास्त्र में उपलब्ध काव्यशास्त्रीय तत्वों का समीक्षात्मक अध्ययन, 3. संस्कृतवाङ्मय में उपलब्ध प्रमुख राम काव्यों का तुलनात्मक समालोचन (प्रकाशनाधीन)

(4) शोधपत्र—शोधपत्र लिखित 78, शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित 47

(5) सम्मेलन/समारोह/संगोष्ठी—सम्मेलन-समारोह–संगोष्ठी में

प्रतिभागिता 78—राष्ट्रिय 72, अन्तराष्ट्रिय 06

(6) काव्यपाठ–आकाशवाणी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, नजीबाबाद, दिल्ली केन्द्र। दिल्ली आकाशवाणी द्वारा आयोजित बाईस भाषाओं के सर्वभाषा कवि सम्मेलन में संस्कृत भाषा के कवि के रूप में प्रतिनिधित्व। भारत सरकार के निर्देशानुसार क्योटो-विश्वविद्यालय जापान में आयोजित विश्व संस्कृत सम्मेलन के उपाङ्गभूत अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत कवि सम्मेलन में काव्यपाठ। भारत में आयोजित राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में काव्यपाठ। देश की अनेक पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित।

काव्यपाठ, वार्ताएँ—दूरदर्शन इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली केन्द्र।

(7) 'गंगा की मंगलयात्रा—उद्भव से प्रदेश के सीमान्त तक—रेडियो सीरियल का लेखन।

(8) दश से अधिक संस्कृत नाटकों में अभिनय।

(9) पन्द्रह से अधिक संस्कृत नाटकों का निर्देशन।

(10) शोधनिर्देशन में सात छात्रों को पी-एच॰ डी॰ उपाधि प्राप्त।

सम्प्रति क्रियमाण साहित्यिक कार्य–

(1) आठ शोधच्छात्रों का शोधनिर्देश

(2) नन्द समुच्चय का सम्पादन

(3) कृष्णद्वैपायनीयम् महाकाव्य की रचना

(26) ललित कुमार त्रिपाठी

प्रो॰ ललित कुमार त्रिपाठी का जन्म कोलकाता नगर में 15 फरवरी सन् 1970 को हुआ था। पैतृक परम्परा से वे ग्राम नन्दाखेड़ा, पोस्ट ऑफिस निहस्था, जिला रायबरेली, उत्तर प्रदेश के निवासी थे। पिता श्री रमाशंकर त्रिपाठी का कोलकाता में व्यवसाय तथा माता श्रीमती सरोजिनी त्रिपाठी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। उनके एकमात्र अनुज प्रो॰ भारत भूषण त्रिपाठी राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर में कार्यरत हैं तथा तीन अग्रजाएँ श्रीमती सुमनलता शुक्ला, श्रीमती सीमा शुक्ला और श्रीमती रेखा शुक्ला विवाहिता हैं। प्रो॰ त्रिपाठी का विवाह 18 मई सन् 1997 को श्रीमती रेखा त्रिपाठी से सम्पन्न हुआ। ज्येष्ठा पुत्री पूजा त्रिपाठी, पुत्र दिलीप त्रिपाठी तथा कनिष्ठा पुत्री दिव्या त्रिपाठी के पितृत्व का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हैं।

प्रो॰ ललित कुमार त्रिपाठी को शैशव काल से युवावस्था पर्यन्त आध्यात्मिक इष्ट गुरुदेव सन्त सच्चा बाबा, अरैल, प्रयाग का पवित्र सान्निध्य

प्राप्त हुआ। उनकी आरम्भिक शिक्षा भी प्रथम कक्षा से आचार्य प्रथम वर्ष तक श्री सच्चा अध्यात्म संस्कृत महाविद्यालय, अरैल, प्रयाग में सन् 1978—सन् 1984 के अन्तराल में सम्पन्न हुई। यहाँ आचार्य भोलानाथ त्रिपाठी, आचार्य यागेश्वर झा, आचार्य रामभद्र दास श्री वैष्णव एवं अन्य मेघा प्रखर गुरुजनों के चरणों में उन्होंने विद्याध्ययन किया। आचार्य परीक्षा के अन्तिम दो वर्ष तथा विद्यावारिधि के अध्ययन के लिए उन्होंने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का चयन किया। सन् 1994 तक वाराणसी प्रवास काल में उन्हें आचार्य रामप्रसाद त्रिपाठी, आचार्य रामयत्न शुक्ल तथा आचार्य वसिष्ठ त्रिपाठी सदृश महनीय गुरुजनों से अध्ययन का सुयोग प्राप्त हुआ। बाल्यकाल से सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करते हुए आचार्य रामप्रसाद त्रिपाठी के निर्देशन में 'शाब्दिकदर्शनस्य दर्शनान्तरैः सह समीक्षात्मकमध्ययनम्' विषय पर विद्यावारिधि की उपाधि सन् 1995 में प्राप्त की। साथ ही स्नातकोत्तर भाषाविज्ञान डिप्लोमा, अनुसन्धान प्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञान स्नातकोत्तर डिप्लोमा, जर्मनभाषा डिप्लोमा, एकवर्षीय तिब्बती भाषा डिप्लोमा आदि परीक्षाएँ भी प्रथम श्रेणी में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से ही उत्तीर्ण कीं। यू॰ जी॰ सी॰ नेट, जे॰ आर॰ एफ॰ परीक्षा दिसम्बर सन् 1991 में उत्तीर्ण कर वे व्याख्याता पद पर प्रतिष्ठा के योग्य हुए।

प्रो॰ ललित कुमार त्रिपाठी की प्रथम नियुक्ति व्याख्याता (व्याकरण के पद पर श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ में 17 अक्टूबर सन् 1994 को हुई। वे सन् 1998 में वरिष्ठ व्याख्याता, 14 जनवरी सन् 2002 को रीडर (राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ), 1 जनवरी 2006—31 दिसम्बर 2008 की अवधि में एसोसिएट प्रोफेसर तथा 1 जनवरी 2004 से अद्यावधि प्रोफेसर व्याकरण पद पर प्रोन्नत होकर श्री गंगानाथ झा राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, इलाहाबाद परिसर में सेवारत हैं। अध्ययन के क्षेत्र में उनकी विशेष रुचि भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन, कम्प्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स संस्कृत काव्यादि विषयों में तथा विशेषज्ञता पाणिनीय व्याकरण में हैं।

प्रो॰ त्रिपाठी को देश के अगणित विश्वविद्यालयों/ महाविद्यालयों द्वारा आयोजित राष्ट्रिय संगोष्ठियों, कार्यशालाओं तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों में व्याख्यानों हेतु आमन्त्रित किया गया है। व्याकरण एवं संगणक भाषाविज्ञान में विशेष दक्षता प्राप्त प्रो॰ त्रिपाठी ने राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में पाणिनीय अष्टाध्यायी विषय पर कारक मीमांसा विषयक 30 से अधिक व्याख्यान शृंखला, हैदराबाद विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग द्वारा आयोजित कार्यशाला में सन् 2006 में व्याख्यान शृंखला एवं सन् 2007 में

पाणिनीय अष्टाध्यायी एवं संगणक भाषा विज्ञान विषय पर समायोजित कार्यशाला में 12 व्याख्यानमाला, कालिदास अकादमी, उज्जैन में सन् 2008 में महाभाष्य पर आधारित राष्ट्रिय पाठ-चर्चा सत्र में 8 व्याख्यानमाला, संस्कृत विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय में आयोजित विशेष व्याख्यान माला के अन्तर्गत शाब्दबोधमीमांसा पर 12 व्याख्यान प्रस्तुत किए हैं।

प्रो॰ ललित कुमार त्रिपाठी की विद्वत्ता की ख्याति से प्रभावित संस्कृत संगणक भाषा विज्ञान विषय पर सन् 2007 में पेरिस में आयोजित अन्ताराष्ट्रिय संगोष्ठी में बीज भाषण एवं सत्राध्यक्ष, इसी विषय पर सन् 2009 में अन्ताराष्ट्रिय संगोष्ठी सन् 2009 में सत्राध्यक्ष तथा विश्व संस्कृत सम्मेलन, बैंकाक, थाईलैंण्ड सन् 2015 में पण्डित परिषद् में व्याख्यान हेतु आमन्त्रित किए गए। ट्रिपल आई॰ टी॰ द्वारा संयोजित विभिन्न कार्यशालाओं एवं चर्चासत्रों में उनके व्याख्यानों से छात्र और शिक्षक समुदाय दोनों ही लाभान्वित होते हैं।

प्रो॰ ललित कुमार प्रथम अन्ताराष्ट्रिय संस्कृत संगणक भाषा विज्ञान सिम्पोजियम, सन् 2007; तृतीय सन् 2009; चतुर्थ सन् 2010 जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली; पंचम सन् 2012 भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुम्बई; शिष्ट परिषद्, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली; में दो सत्रों में; केन्द्रीय अनुसन्धान परिषद्, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, संयुक्त समिति संस्कृत और संगणक वैज्ञानिक, सूचना एवं प्रौद्योगिक मन्त्रालय, नई दिल्ली; अखिल भारतीय काव्यपाठ प्रतियोगिता, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली में संयोजक; केन्द्रीय परिषद् अनौपचारिक संस्कृत शिक्षण, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली; (तीन विश्वविद्यालयों—राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ तिरुपति तथा श्री लाल बहादुर शास्त्री, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली की) संयुक्त कार्य समिति, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली; राष्ट्रिय शक्तिकरण समिति तथा कार्यपरिषद् समिति; राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मिशन; संस्कृति मन्त्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली आदि में सम्मानित सदस्य के रूप में कार्य करने का अवसर और अनुभव प्राप्त हैं।

प्रो॰ ललित कुमार त्रिपाठी के महत्त्वपूर्ण 20 शोधलेखों की प्रस्तुति एवं प्रकाशन राष्ट्र की विभिन्न शोधस्तरीय पत्रिकाओं में हुई है। उन्होंने 10 हस्तलेखों का सम्पादन किया है जिनमें सात प्रकाशित हैं तथा तीन शीघ्र प्रकाश्य हैं। उनके द्वारा लिखित दूरस्थ शिक्षण हेतु अध्ययन सामग्री 30 खण्डों में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के सौजन्य से प्रकाशित पर्याप्त परिश्रम तथा प्रशंसा की अपेक्षा करती है। प्रो॰ त्रिपाठी ने गंगा नाथ झा संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद से

प्रकाशित जर्नल के 63, 64, 65 अंकों का संयुक्त रूप से सम्पादन किया है। इसके अतिरिक्त मौनि श्रीभट्ट रचित लघु-विभक्त्यर्थ निर्णय, आख्यातवाद; ब्रह्मानन्द सरस्वतीकृत परिभाषेन्दुशेखर टीका चित्रप्रभा; वसिष्ठ स्मृति की विद्वन्मोदिनी टीका के विद्वत्तापूर्ण सम्पादन का श्रेय भी आपको ही प्राप्त है। संस्कृत संगणक भाषाविज्ञान की प्रथम से चतुर्थ पर्यन्त संगोष्ठियाँ फ्रांस (सन् 2007) तथा जर्मनी (सन् 2009 एवं 2010) की विशेषज्ञ समिति के प्रस्तुत अन्ताराष्ट्रिय शोधपत्रों की विशेषज्ञ समिति के सदस्य के रूप में नामित होने का गौरव उन्हें हस्तगत है। पठनकौशलबोधनम् व सामान्यदोषविवेचनम्, एन॰ सी॰ ई॰ आर॰ टी॰ नई दिल्ली; श्री मद्भगवद्गीता के तृतीय भाग तथा नीतिशतकम् के प्रथम भाग की स्वाध्याय सामग्री की समीक्षा का श्रेय भी उन्हें प्राप्त है। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा संचालित संस्कृत स्वाध्याय, अनौपचारिक संस्कृत शिक्षण योजना, शिक्षक प्रशिक्षण योजना, ज्ञानदर्शन हेतु अच् सन्धि पर आधारित 14 प्रस्तुतियों, वैयाकरणभूषण तथा वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा के ई कान्टेन्ट, मुक्त स्वाध्यायः आदि राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान गंगा नाथ झा परिसर में आहूत परियोजनाओं में उनका अवदान स्पृहणीय है।''

प्रो॰ ललित त्रिपाठी के पाण्डित्यपूर्ण निर्देशन में 5 छात्र शोधकार्य समाप्त कर चुके हैं तथा 5 से अधिक छात्र शोधरत हैं। प्रो॰ त्रिपाठी लिखित/सम्पादित ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत है—

ग्रन्थ प्रकाशन—

1. वैयाकरणमतोन्मज्जनटीका, हस्तलेख सम्पादित भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी, 1998.

2. प्रथमा दीक्षा, स्वाध्याय सामग्री, (पाँच खण्ड) सह सम्पादित राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2002.

3. द्वितीया दीक्षा, स्वाध्याय सामग्री (तीन खण्ड) सह सम्पादित राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2004.

4. संक्षेपरामायणम्, स्वाध्यायसामग्री, सह सम्पादित, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2002.

5. विदुरनीतिशतकम्, स्वाध्यायसामग्री, सम्पादित, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2006.

6. सस्वरः पाणिनीयधातुपाठः सम्पादित राजविनय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.

7. दशगणीरूपवृत्ति खण्ड 1. राजविनय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.

8. हिन्दी व्याख्योपेता वैयाकरणमतोन्तमज्जनटीका- खण्ड 1. राजविनय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.

9. वैयाकरणभूषणसार एक अध्ययन खण्ड 1. बी॰ बी॰ त्रिपाठी, सम्पादित, राजविनय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.

10. वैयाकरणभूषणसार एक अध्ययन खण्ड 2, बी॰ बी॰ त्रिपाठी, सम्पादित, राजविनय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.

11. वैयाकरणभूषण सार एक अध्ययन खण्ड 3. बी॰ बी॰ त्रिपाठी, सम्पादित राजविनय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.

12. दशगणीरूपसंक्षेपः खण्ड 1 राजविनय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.

13. दशगणीरूपसंक्षेपः खण्ड 2 राजविनय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.

14. नारायणतीर्थकृता गंगालहरी, हस्तलेख, पाण्डुलिपि सम्पादित, जर्नल—गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ LXV (1-4), 2007, 2009.

15. शब्दार्थतर्कामृतम, हस्तलेख, पाण्डुलिपि, सम्पादित, जर्नल—गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, LXV (1-4), 2007, 2009 द्वितीय संस्करण राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान/गंगा नाथ झा परिसर, इलाहाबाद, 2010.

16. विप्रराजेन्द्रप्रणीतः शब्दशास्त्रमहार्णवः, हस्तलेख, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान/गंगा नाथ झा परिसर, इलाहाबाद, 2010.

17. विप्रराजेन्द्रकृतं शब्दामृतम् हस्तलेख, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान/गंगा नाथ झा परिसर, इलाहाबाद, 2010.

18. अज्ञातकर्तृका शाब्दबोधपद्धतिः, हस्तलेख, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान/गंगा नाथ झा परिसर, इलाहाबाद, 2010.

19. नारायणतीर्थकृता गंगालहरी व्याख्या, हस्तलेख, सम्पादित राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान/गंगा नाथ झा, इलाहाबाद, 2011.

दूरस्थ शिक्षा हेतु राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित अध्ययन सामग्री—

20. तर्कभाषा परिचयः (खण्ड-1)

21-22. प्रमाणविचारः 1 (खण्ड-2-3)

23. तर्कभाषा (खण्ड-4)

24. लघुसिद्धान्तकौमुदी कृदन्तप्रकरणम्

25-28. लघुसिद्धान्तकौमुदी तद्धितप्रकरणम् (खण्ड-1-4)

29. लघुसिद्धान्तकौमुदी समासप्रकरणम्

30-31. सिद्धान्तकौमुदी, स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् (खण्ड 1-2)

32. सिद्धान्तकौमुदी समास परिचयः अव्ययीभावसमासश्च
33-35. सिद्धान्तकौमुदी, तत्पुरुषसमासप्रकरणम् (खण्ड 1-3)
36. सिद्धान्तकौमुदी, बहुव्रीहिसमास प्रकरणम्,
37. सिद्धान्तकौमुदी, द्वन्द्व समास प्रकरणम्
38. महाभाष्यम्-व्याकरणाध्ययनस्य प्रयोजनविचारः शब्दतत्त्वविचारश्च
39. महाभाष्यम्-शब्दानां नित्यानित्यत्वविचारः वर्णोपदेशविचारश्च
40-44. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी तद्धितप्रकरणम् (खण्ड 1-5)

षष्ठ अध्याय

प्रयाग के प्रकीर्ण संस्कृत पण्डित

(1) महानन्द द्विवेदी

पण्डित महानन्द द्विवेदी हण्डिया तहसील में कटहरा ग्राम निवासी थे। सम्पूर्णानन्द वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से उन्होंने शास्त्री, आचार्य आदि अनेक परीक्षाएँ पास की थीं। वे धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत पाठशाला, इलाहाबाद के अन्तेवासी शिष्य थे। उनके अध्ययन गुरु थे—पण्डित कमला कान्त मिश्र, प्रसिद्ध वेदान्ती आचार्य। उनकी मेधा ने उनमें कूट-कूट कर आत्मविश्वास भरा था। महानिर्वाणी वेद विद्यालय में प्रथमतः अध्यापक पुनः प्राचार्य पद पर वे प्रतिष्ठित हुए। अन्य संस्कृत पण्डितों की भाँति वे शान्त-भीरु प्रकृति के नहीं थे। अन्याय को सहन न करने वाले, अत्याचार के प्रति आवाज उठाने वाले, अनहोनी की आशंका से पहले ही क्रियाशील—ऐसे विलक्षण, दबंगप्रकृति के थे पण्डित महादेवानन्द, परन्तु विशिष्टता ऐसी कि विद्वत्ता का सब सम्मान करते और उनके क्रोध को अनदेखा कर देते। पण्डित माणिक चन्द्र शुक्ल उनके प्रसिद्ध शिष्यों में से एक थे।

(2) रामहर्ष शुक्ल

पण्डित रामहर्ष शुक्ल दारागंज में हर्ष संस्कृत पाठशाला में अध्यापक थे। मूलतः वे प्रतापगढ़ निवासी थे। वेणीमाधव मन्दिर दारागंज में वे एक कक्ष में सादगीपूर्वक रहते थे। उन्होंने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से व्याकरण एवं वेदान्ताचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। मेरे मातृगृह के वे कुलपुरोहित थे। मेरे मातृगृह के संस्कार, पूजाएँ आदि वे ही सम्पन्न कराते थे। मेरे विवाह (20 फरवरी सन् 1976) में पुरोहित का दायित्व निर्वाह उन्होंने ही किया था। उनके एकमात्र पुत्र वाणिज्य विषय में शोधकार्य कर उत्तर प्रदेश के किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद पर अधिष्ठित हैं।

(3) जयकिशोर झा

आचार्य जय किशोर झा मैथिलीय ब्राह्मण थे। उनकी संस्कृत शिक्षा-वीक्षा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में सम्पन्न हुई थी। उन्होंने लगभग सन् 1900 में परम्परागत शैली में पठन-अध्ययन करते हुए व्याकरण विषय से आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। व्याकरणिक विद्वानों में मूर्धन्य आचार्य जय किशोर की नियुक्ति 28 अक्टूबर सन् 1925 को 60 रु० मासिक वेतन पर श्री सौदामिनी संस्कृत महाविद्यालय, इलाहाबाद में अध्यापक पद पर हुई थी। इसी संस्कृत पाठशाला में प्रथम प्राचार्य पद को सुशोभित करते हुए वे सन् 1969 में सेवाकार्य से मुक्त हुए। उनकी प्रकाण्ड विद्वत्ता से प्रभावित होकर सन् 1969 में उन्हें राष्ट्रपति पुरस्कार के लिए चयनित किया गया। यह वह काल था जब राष्ट्रपति स्वयं पुरस्कार के लिए चयनित विद्वान् के गृहनगर आकर उन्हें सम्मानित करते थे। तात्कालिक राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने आचार्य जयकिशोर झा को श्री सौदामिनी संस्कृत महाविद्यालय परिसर, प्रयाग में सम्मानित किया था।

(4) जगत श्याम ब्रह्मचारी

पण्डित जगत श्याम ब्रह्मचारी शिवराम संस्कृत विद्यालय के प्रधानाचार्य थे, उसी परिसर में उनका निवास भी था। उनका वास्तविक निवास दशाश्वमेध घाट पर गणेश जी की मूर्ति के पास था। उनकी किसी पुस्तक को उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ ने पुरस्कृत किया था, पुस्तक का नाम ज्ञात नहीं हो सका। उन्होंने संस्कृत विद्यालय, दारागंज को पर्याप्त धनराशि दान में दी थी।

(5) काली प्रसाद मिश्र

पंडित काली प्रसाद मिश्र का जन्म तथा आरम्भिक शिक्षा पाठशालीय शिक्षा गोरखपुर में सम्पन्न हुई। शास्त्री तथा आचार्य आदि परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने हेतु वे गोरखपुर से प्रयाग आए व धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत पाठशाला में अध्ययनरत हुए। यहीं प्रवक्ता व प्राचार्य पदों को सुशोभित कर जीविका अर्जित की। धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत पाठशाला से अपनी शिक्षा समाप्त कर बनारस चले गए थे, उनका सम्पूर्ण उत्तरार्ध जीवन काशी में ही व्यतीत हुआ। वे प्रकाण्ड वैयाकरण थे तथा न्यायमूर्ति हरिश्चन्द्र पति त्रिपाठी के पूज्य श्वसुर थे। वे महामना मदन मोहन मालवीय के वंशज श्री गोविन्द मालवीय के संस्कृत शिक्षक थे।

(6) रामशरण त्रिपाठी

आचार्य रामशरण त्रिपाठी मूलतः कु‍ण्डा तहसील, प्रतापगढ़ के वासी थे।

वे उच्चकोटि के व्याकरणाचार्य तथा अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। उनकी नियुक्ति अध्यापक पद पर सन् 1969 में श्री सौदामिनी संस्कृत महाविद्यालय में हुई थी। यहाँ प्राचार्य पद को भी सुशोभित करते हुए वे सन् 1979 तक अध्यापन करते रहे। सन् 1980 में यहाँ से स्थानान्तरित हो कर सहायक निरीक्षक संस्कृत महाविद्यालय उत्तरप्रदेश के राजकीय पद पर उन्होंने कार्य किया। उनकी कार्यकुशलता से प्रभावित होकर उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें प्राचार्य, राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय (गवर्नमेन्ट ट्रेनिंग कॉलेज) पद पर नियुक्त किया। यहीं से वे सेवामुक्त हुए। उनके एकमात्र पुत्र सोबतिया बाग में निवास करते हैं।

(7) भूपेन्द्र पति त्रिपाठी

पण्डित भूपेन्द्र पति त्रिपाठी मूलतः देवरिया निवासी थे। उनकी गति व्याकरण में निर्बाध थी। वे संस्कृत में धाराप्रवाह व्याख्यान देने के लिए प्रसिद्ध थे। प्रयाग में वे धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत पाठशाला में प्राचार्य पद पर अधिष्ठित हुए। अनन्तर संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में साहित्य विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्ति पाकर वाराणसी को निवास बना लिया।

(8) रामसुख

पण्डित रामसुख शिवपुर निवासी थे। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से वेदान्ताचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण कर महानिर्वाणी वेद विद्यालय में प्राध्यापक पद स्वीकार किया। कालान्तर में प्राचार्य पद को भी सुशोभित किया। वे गौरवर्णी, दीर्घकाय और भव्य व्यक्तित्व सम्पन्न थे।

(9) दयाशंकर मिश्र

आचार्य दया शंकर मिश्र सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर सन् 1980 में श्री सौदामिनी संस्कृत महाविद्यालय, इलाहाबाद में अध्यापक पद पर नियुक्त हुए। यहीं प्राचार्य पद पर प्रतिष्ठित रह कर उन्होंने सन् 2000 में अवकाश ग्रहण किया। इलाहाबाद में उनका निवास ओम गायत्री नगर, सोबतिया बाग, इलाहाबाद था।

(10) कृष्णकान्त शुक्ल

आचार्य कृष्णकान्त शुक्ल की समस्त संस्कृत शिक्षा संस्कृत शिक्षा के एकमात्र केन्द्र सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से सम्पन्न हुई। तत्पश्चात् वे सर्वार्य आश्रम संस्कृत महाविद्यालय, बहादुरगंज में अध्यापन कार्य

करते हुए सेवा विमुक्त हुए। आपकी ख्याति प्रयाग के उच्च कोटि के विद्वानों में थी।

(11) रामानन्द मिश्र

पण्डित रामानन्द मिश्र छरवना ग्राम, करछना, तहसील निवासी थे। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से व्याकरणाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण कर वे श्री त्रिवेणी संस्कृत पाठशाला, इलाहाबाद में अध्यापक और प्राचार्य रहे।

(12) माणिक चन्द्र शुक्ल

पण्डित माणिक चन्द्र शुक्ल साहित्याचार्य निर्वाणी वेद विद्यालय में प्राचार्य थे। आकाशवाणी से उनकी वार्ताएँ साहित्यिक विषयों पर प्रायः प्रसारित होती थीं। वे पण्डित महानन्द द्विवेदी के प्रिय-सुयोग्य शिष्य थे।

(13) चन्द्रशेखर

पण्डित चन्द्रशेखर दारागंजवासी थे। 'शारदा' संस्कृत पत्रिका का आजन्म प्रकाशन उनके साहित्यिक जीवन का विलक्षण योगदान था।

(14) ब्रह्मदत्त द्विवेदी

पण्डित ब्रह्मदत्त द्विवेदी महामहोपाध्याय हरिहर कृपालु द्विवेदी के पुत्र थे। पण्डित ब्रह्मदत्त द्विवेदी की नियुक्ति शास्त्रचूड़ामणि के पद पर पण्डित गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद में हुई थी। पण्डित रहस बिहारी द्विवेदी (अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश) उन्हीं के वंशज हैं।

(15) नकछेद राम

पण्डित नकछेद राम मूल रूप से फैजाबाद के वासी थे। व्याकरण व साहित्य मर्मज्ञ वे पण्डित हरिहर कृपालु द्विवेदी के गुरु थे।

(16) राम कृष्ण त्रिपाठी

पं० रामकृष्ण त्रिपाठी ने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से व्याकरणाचार्य की परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर स्वर्णपदक प्राप्त किया था। वे हरिराम संस्कृत महाविद्यालय ऊँचामण्डी में प्रधानाचार्य पद पर प्रतिष्ठित थे।

(17) गयादत्त त्रिपाठी

प्रयाग के दारागंज क्षेत्रवासी पं॰ गयादत्त महानिर्वाणी वेद विद्यालय दारागंज के प्राचार्य थे। उनका जीवन काल सम्भवतः अठारहवीं शती का उत्तरार्ध था। वे पंडित कमलाकान्त मिश्र (सन् 1892-1974) के गुरुवर्य थे। साहित्य शास्त्र में उनकी गति अप्रतिहत थी, यह हरिहरचम्पू के निम्न श्लोक से ज्ञात होता है—

शास्त्राम्बुज तर्ककलोदयानां श्रीमद्गयादत्तमहोदयानाम्

सप्तम अध्याय

प्रयाग में विदेशी विद्वान्

संस्कृत वाङ्मय नितान्त गौरवशाली है, उसके अनुशीलनकर्ता विदेशी विद्वान् भी किस प्रकार शान्त, संयत और निर्लोभी प्रवृत्ति के थे, यह भाषा के स्वभाव के कारण सम्भव था। संस्कृत भाषा के सुगठित स्वरूप से प्रभावित हो कर योरोपीय देशों के अनेक विद्वानों ने परिश्रमपूर्वक संस्कृत सीखी और भारत आकर उस ज्ञान को प्रवृद्ध किया। प्रयाग नगरी भी उनमें से कुछ के आगमन और ज्ञानविदग्धता से सम्पन्न हुई।

प्रयाग के अध्ययनशील, प्रखर मेधा सम्पन्न पण्डितगणों से संस्कृत भाषा और साहित्य के विदेशी जिज्ञासुओं ने विधिवत् अध्ययन कर अपने ज्ञान को सुदृढ़ किया और समर्पण भाव से संस्कृत का प्रचार प्रसार किया। पण्डित कमलाकान्त मिश्र को अपने जीवनकाल में दो विदेशी विद्वानों को संस्कृत पढ़ाने का गौरव हस्तगत हुआ था। उन्होंने प्रयाग में रहकर समर्पित भाव से संस्कृत भाषा का अध्ययन किया और स्वदेश लौट कर संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार किया।

(1) जॉर्ज फ्रेडरिक विलियम थिबो

जॉर्ज फ्रेडरिक विलियम थिबो[1] ने जर्मनी के उच्चस्तरीय सम्भ्रान्त परिवार में सन् 1851 में जन्म प्राप्त किया था। किशोरावस्था में ही संस्कृत भाषा की वैज्ञानिक प्रवृत्ति से आकृष्ट होकर इन्होंने परिश्रमपूर्वक संस्कृत का अध्ययन कर निपुणता अर्जित की। बर्लिन और हीडिलबर्ग विश्वविद्यालयों में अध्ययन समाप्त कर लन्दन में मैक्समूलर महोदय के साथ सम्पादन कार्य में संलग्न रह कर तीन-चार वर्ष व्यतीत किए। उनकी ख्याति सुनकर अंग्रेज़ सरकार ने सन् 1875 में उन्हें गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज, बनारस में संस्कृत पण्डितों और छात्रों को अंग्रेज़ी भाषा पढ़ाने के लिए नियुक्त किया। दो वर्ष पश्चात् इस पद को समाप्त

---

1. संस्कृत के विद्वान् और पण्डित, रामचन्द्र मालवीय, पृ० 148 से साभार।

कर दिए जाने पर वे उत्तर प्रदेश के अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों के इन्स्पेक्टर नियुक्त हुए। पुनः सन् 1879 में गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो कर सन् 1888 पर्यन्त कार्य करते रहे। इस अवधि में उन्होंने अंग्रेजी की परीक्षाओं के समानान्तर संस्कृत में भी प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री और आचार्य परीक्षाएँ प्रारम्भ की।

सन् 1889 में प्रो० विलियम थिबो को पञ्जाब विश्वविद्यालय का रजिस्ट्रार नियुक्त किया गया परन्तु रुच्यनुकूल कार्य न होने से अवसर मिलते ही सन् 1909 में प्रयाग आकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी और दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक का पदभार ग्रहण कर लिया। कुछ वर्ष पश्चात् म्योर सेण्ट्रल कॉलेज के अध्यक्ष पद पर प्रोन्नत होकर 55 वर्ष की आयु तक कार्य करते हुए 24 अप्रैल सन् 1906 को सेवा विमुक्त हुए।

प्रो० थिबो की गणित विषय में अत्यधिक रुचि थी। प्रयागवास की अवधि में उन्होंने अपने गणितज्ञान को और विशद किया। इस हेतु से उन्होंने श्री रामनाथ चटर्जी (प्राध्यापक, गणित विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) को निस्संकोच अपना गुरु स्वीकार किया। प्रो० थिबो यह मानते थे कि यज्ञविद्या के प्रचलन के फलस्वरूप ज्यामितीय ज्ञान का सर्वप्रथम विकास भारत में हुआ था। प्रो० थिबो के पाण्डित्य की ख्याति शुल्वसूत्रों पर शोध लेखों के प्रकाशन से हुई थी।

प्रो० थिबो निर्भीक व्यक्तित्व सम्पन्न थे। एक बार अंग्रेज़ सरकार ने हिन्दी और उर्दू भाषाओं में उत्तम स्तर की रीडर प्रकाशित करने वाले प्रकाशक को पुरस्कृत करने का निर्णय लिया। उसके लिए गठित समिति में एक सदस्य प्रो० थिबो को बनाया गया। प्रो० थिबो ने पुस्तकों का गहन अध्ययन कर उसकी त्रुटियों से समिति के अन्य सदस्यों को अवगत कराया और पुस्तकों को पुरस्कार के अयोग्य घोषित किया।

महर्षि बादरायण का ब्रह्मसूत्र भारतीय वेदान्त दर्शन का निदर्शन है। इस पर रचित दो सर्वप्रसिद्ध भाष्यों—आदि शंकराचार्य का निर्विशेष अद्वैत मत का प्रतिपादक शारीरक भाष्य तथा श्री रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादक श्री भाष्य, का प्रो० थिबो ने विद्वत्तापूर्ण सम्पादन किया था। ज्योतिष, व्याकरण, कल्पसूत्र, मीमांसादर्शन पर आपके शोधालेख आपकी गम्भीर ज्ञानगरिमा के परिचायक हैं। प्रो० थिबो ने सन् 1907 में इण्डियन थॉट (भारतीय विचारधारा) नाम से एक जर्नल का प्रकाशन आरम्भ किया था। इसके शोधपरक संस्करणों में अंग्रेज़ी के मूल ग्रन्थों का संस्कृत अनुवाद प्रकाशित होता था। आपकी अगाध विद्वत्ता और कार्यक्षमता से प्रभावित होकर अंग्रेज़ सरकार ने आपको सी० आई०

ई॰ की उपाधि से अलङ्कृत किया था।

(2) लुडविग आल्सफोर्ड

प्रो॰ लुडिवग आल्सडोर्फ जर्मन विद्वान् संस्कृत ज्ञान की आकांक्षा लेकर भारत आए। पंडित कमलाकान्त मिश्र की ख्याति उन्हें अध्ययन के लिए प्रयाग ले आई। प्रो॰ आल्सडोर्फ जर्मनी के प्रसिद्ध हैम्बर्ग विश्वविद्यालय में वर्षों तक संस्कृत के अध्यापक थे, उनका प्रयाग आगमन सन् 1931-32 में हुआ, जीवन के उन दो वर्षों में उन्होंने पंडित कमलकान्त से नियमित संस्कृत व्याकरण, साहित्य तथा प्राकृतभाषा का अध्ययन किया तथा दो वर्ष पश्चात् जर्मनी जाकर अधीत विद्या का प्रचार किया। सन् 1974 में जर्मनी में उनका निधन हुआ।

(3) पाउल थीमे

प्रो॰ पाउल थीमे संस्कृत के गहन अध्ययन हेतु भारत आए। उन्होंने अपने ज्ञानवर्धन के लिए प्रयाग का चयन किया। यहाँ निरन्तर संस्कृत अध्येताओं के सम्पर्क में रह कर विधिवत् अध्ययन किया।

प्रो॰ पाउल थीमे येल विश्वविद्यालय, अमेरिका और ट्यूविङ्गेन विश्वविद्यालय, जर्मनी में संस्कृत के अध्यापक थे, उन्होंने सन् 1933-34 में महानिर्वाणी वेद विद्यालय में पंडित कमलाकान्त मिश्र से नागोजी भट्ट रचित परिभाषेन्दुशेखर, लघुशब्देन्दुशेखर, सिद्धान्तकौमुदी, वेद, व्याकरण और साहित्य के कतिपय ग्रन्थों को पढ़ा था। यह मिश्र जी के पाण्डित्य एवं अध्यापन शैली का परिणाम था कि वे पाश्चात्त्य जगत् में आज भी वेद एवं व्याकरण के अग्रणी विद्वान् के रूप में सम्मानित हैं। प्रो॰ थीमे का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'पाणिनि एण्ड वेद' उनके प्रयाग प्रवास काल में ही 'इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद' से प्रकाशित हुआ था, सम्प्रति इसका द्वितीय संशोधित संस्करण दिल्ली से मोलीलाल बनारसी दास द्वारा प्रकाशित किया गया है।

प्रो॰ पाउल थीमे प्रथम बार सन् 1969 में सपत्नीक वाराणसी आए थे। उन्होंने सम्मान्य गुरु प्रो॰ कमलाकान्त मिश्र के धर्म संघ शिक्षा मण्डल, दुर्गा कुण्ड स्थित उनके निवास पर जाकर उनके दर्शन किए थे। धर्म संघ शिक्षा मण्डल में वाराणसी के विद्वज्जनों ने उस अवसर पर प्रो॰ थीमे का भव्य स्वागत किया था। पंडित कमलाकान्त मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र श्री हरिश्चन्द्र वैद्यक प्रवीण, तृतीय सुयोग्य पुत्र डॉ॰ विजय नारायण मिश्र, सन् 1969-72 तक जर्मनी में अध्यापन कार्य के लिए गए थे। अवकाश के क्षणों में प्रो॰ थीमे गुरुपुत्र से पूज्य गुरु के ही गुणों व सद्व्यवहार की चर्चा किया करते थे। प्रो॰ थीमे ने डॉ॰ विजय

नारायण मिश्र के द्वारा अपने गुरु के लिए संस्कृत में एक पत्र भेजा था, यह पत्र एक विदेशी संस्कृत प्रेमी विद्वान् की गुरु के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का परिचायक है।

प्रो॰ पाउल थीमे को द्वितीय बार सन् 1972 में प्रथम विश्व संस्कृत सम्मेलन में वेद एवं धर्मशास्त्र के अध्यक्ष के रूप में भारत में निमंत्रित किया गया था। उस सम्मेलन में उनकी भेंट अपने प्रयाग प्रवास कालीन मित्रों—प्रो॰ क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा प्रो॰ लक्ष्मीनारायण तिवारी से हुई थी। प्रो॰ तिवारी के अनुसार—प्रो॰ थीमे ने अपने गुरु कमलाकान्त का स्वास्थ्य समाचार हम दोनों से पूछा, पुनः श्रद्धापूर्वक पूर्व दिशा की ओर नतमस्क होकर 'गुरुपादेभ्यो नमः' कहकर पूज्य गुरु के प्रति भावपूर्ण नमस्कार ज्ञापित किया।

प्रो॰ पाउल थीमे को तृतीय बार सन् 1981 में पंचम विश्व संस्कृत सम्मेलन के अवसर पर भारत ने ससम्मान बुलाया था। उन्हें उस सम्मेलन में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, ने 'डाक्टरेट' की सम्मानित उपाधि प्रदान की थी। प्रो॰ थीमे को जापान देश ने भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण 'पूर्व के नोबल पुरस्कार' से सम्मानित किया था। पश्चात् सेनानिवृत्त प्रो॰ थीमे स्थायी रूप से ट्यूविङ्गेन में स्वस्थ एवं सक्रिय जीवन यापन कर रहे थे।

अष्टम अध्याय

प्रयाग में आर्यसमाज के पण्डित

वेद एवं वैदिक साहित्य के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान् तथा परम संस्कृत विद्वान् महर्षि दयानन्द की परम्परा का अनुपालक आर्यसमाज प्रयाग नगर में ख्याति लब्ध विद्वज्जनों से प्रतिष्ठित हुआ है। आज वे नामशेष हो चुके हैं किन्तु अपने जीवनकाल में वेद एवं वैदिक साहित्य पर उनका अप्रतिम अधिकार था। नगर की आर्यसमाजों में उनके वेदविषयक व्याख्यान प्रायः जनसामान्य को वेदों की ओर लौटने को विवश करते। वैदिक धर्म की महत्ता सिद्ध करने हेतु वे अन्य धर्मावलम्बियों से शास्त्रार्थ करने को उद्यत रहते, प्रतिद्वन्द्वी को पराजित करने के लिए वे अन्य धर्मग्रन्थों का गहन अध्ययन भी करते; पश्चात् वैदिक धर्म की पाखण्ड खण्डिनी विजय पताका फहरा कर हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करते। यदा-कदा वे इतने अधिक कटु सत्य का प्रयोग करते कि अन्य सम्प्रदाय उपद्रव न कर दे, इस भय से पुलिस बल को .उन्हें शान्त करना पड़ता। तथापि श्रेष्ठतम वैदिक धर्म में उनकी आस्था प्रगाढ़ थी और वे आर्यसमाज की मान्यतानुसार आजीवन उसका प्रसार-प्रचार करते रहे।

प्रयाग में संस्कृत के एक विद्वान् का नाम था **पण्डित क्षेम करण दास त्रिवेदी**। सन् 1850 में लब्ध जन्म उन्होंने बड़ौदा की राजकीय वैदिक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। वे वेदों के उद्भट्ट विद्वान् थे, उन्होंने अथर्ववेद का अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण भाष्य किया। वेदों के क्रम में यह तीसरा वेद है इसीलिए कायस्थ होते हुए भी पण्डित जी को त्रिवेदी पद से समलंकृत किया गया। अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण पर आपने जो कार्य सन् 1935 में प्रकाशित किया, वह आर्यजगत् में बड़ी श्रद्धा से देखा जाता है। गोपथ में प्रयुक्त शब्दों की जो व्युत्पत्ति दी है वह अपने आप में अद्वितीय है। पण्डित जी का विशाल पुस्तकालय वेद एवं वैदिक साहित्य समृद्ध था।

आर्य जगत् के प्रख्यात विद्वान् **पंडित गंगा प्रसाद उपाध्याय** अपने जीवन के आरम्भिक काल में पण्डित जी के पास जाया करते थे और वैदिक विषयों पर गहन विचार विमर्श किया करते थे। पण्डित जी के वंशजों की दिशा

बदल गई थीं और उनके वंशज इन्द्र दयाल सेठ नाईजीरिया में कार्यरत थे। एक दिन उपाध्याय जी ने पण्डित त्रिवेदी जी से हंसी में कहा कि पण्डित जी आपके पुस्तकालय के हमीं उत्तराधिकारी होंगे और हमी आपकी वास्तविक संतान हैं जो आपके वैदिक साहित्य के उन्नयन की दिशा में कुछ कार्य करेंगे। त्रिवेदी जी मुस्करा दिये। एक दिन उपाध्याय जी उनसे पढ़कर जब चलने लगे, तो त्रिवेदी जी ने कहा, हमारी पुस्तकालय के इन पुस्तकों को तुम ले जाओ क्यों कि तुम्हीं इन ग्रन्थों का सदुपयोग कर सकोगे। उनकी आज्ञानुसार उनके पुस्तकालय की बहुमूल्य पुस्तकें वे अपने निवासस्थान बहादुरगंज ले कर आये। श्रद्धेय उपाध्याय जी ने इन पुस्तकों से भरपूर लाभ उठाया। उपाध्याय जी ने आर्य समाज के लिए जो बहुमूल्य पुस्तकें लिखीं उससे आर्य जगत दीर्घ काल तक लाभान्वित होता रहेगा। इसमें श्री त्रिवेदी जी के ग्रन्थों का बहुत बड़ा योगदान है।

श्रद्धेय उपाध्याय जी के ज्येष्ठ पुत्र **डॉ० सत्य प्रकाश,** बाद में स्वामी सत्यप्रकाशानन्द सरस्वती के नाम से प्रख्यात हुए। दूसरे पुत्र विश्वप्रकाश ने उपाध्याय जी के ग्रन्थों से भरपूर लाभ उठाकर आर्य समाज के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अपनी लेखनी के द्वारा बहुमूल्य ग्रन्थों का प्रणयन किया।

प्रयाग में **रणेन्द्र नाथ बसु** नामक संस्कृत व्याकरण के प्रसिद्ध विद्वान् ने अष्टाध्यायी और सिद्धान्तकौमुदी पर विशेष कार्य किया था। उनके देहान्त के बाद भी उनकी कोठी के सामने 'पाणिनि आफिस' नाम से साइन बोर्ड लगा था। एक दिन सोनीपत के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् स्वर्गीय पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी ने चौक आर्यसमाज को पत्र लिखा कि पाणिनि आफिस के जो ग्रन्थ बचे हों, वे चाहे जिस भी हालत में हों, चाहे वे फटे पुराने पन्ने हों, मैं उन सब को खरीद लूंगा। पत्रानुसार बसु जी के उत्तराधिकारियों से मिलकर प्रार्थना की गई कि बसु जी के ग्रन्थ चाहे जिस भी हालत में हों, आर्यसमाज उन्हें क्रय कर लेगा, उन्हें देने की कृपा करें। उन्होंने जवाब दिया—यहाँ उनकी कोई पुस्तकें नहीं बची है जो जीर्णशीर्ण फटे पुराने ग्रन्थ थे उनको जला कर चाय बनाने में उपयोग किया है। वास्तव में जो उन ग्रन्थों के महत्त्व को नहीं जानता, उसके लिए वे ग्रन्थ व्यर्थ ही समझे जाएँगे। अनेक आर्यसमाजी विद्वानों ने बहुत से अमूल्य ग्रन्थों को आर्य समाज के प्रसिद्ध युवा विद्वान् डॉ० ज्वलन्त कुमार शास्त्री, अमेठी को साग्रह भेंट कर दिया था। आज आर्य समाज के अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ अतीत के गर्भ में विलुप्त हो गये हैं।

आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्रद्धेय **अयोध्या प्रसाद** वैदिक मिशनरी, जिन्होंने देश विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार किया था, का लाखों रुपये मूल्य का बृहद पुस्तकालय था, उन्होंने अपने पुस्तकालय के समग्र ग्रन्थों को आर्य

समाज विधान सरणि, कोलकाता को सौंप दिया था, जो आज भी सुरक्षित है और स्वाध्यायप्रिय लोग उससे लाभ उठाते रहते हैं।

वर्तमान समय में आर्य समाज, चौक से सम्बद्ध वेद तथा वैदिक साहित्य के अध्येता और व्याख्याता **पण्डित मूलचन्द्र अवस्थी** का उल्लेख भी आवश्यक है। पण्डित अवस्थी निश्छल हृदय, सरल स्वभाव परन्तु गम्भीर ज्ञान सम्पन्न थे। प्रयाग नगर के अतिरिक्त वे उत्तर प्रदेश की अनेक आर्य-समाजों में प्रवचन के लिए आमन्त्रित होते थे। चारों वेदों के अधिकतम मन्त्र तथा सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता उन्हें कण्ठस्थ थी। एकादश उपनिषदों पर उनका अधिकार अप्रतिम था। प्रदेश के आर्यसमाज के अधिवेशनों में वे उक्त विषयों पर साधिकार भाषण देते थे। मूलतः वे महोबा निवासी थे परन्तु इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा (एम॰ ए॰ हिन्दी, अंग्रेजी) प्राप्त कर यहाँ के वासी हो गए थे। उनका विवाह श्रीमती सूर्यमणि अवस्थी से हुआ था। उनके तीन पुत्र—इन्दु अवस्थी, अभय अवस्थी, अजय अवस्थी तथा एक पुत्री अनीता अवस्थी हैं। प्रारम्भिक जीवन में उनका अपना ओंकार प्रकाशन तथा मुद्रणालय जीरो रोड स्थित गृहभवन में था जो कालान्तर में बन्द हो गया था। उनकी विचारधारा कांग्रेसी थी, वे आजीवन उसी पार्टी के प्रति समर्पित रहे। उन्होंने लेखनकार्य नहीं किया लेकिन मैंने वैदिक साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ अथवा शोधपत्र का जब भी लेखन किया निरन्तर उनसे निर्देश प्राप्त कर अपने लेखों का संस्कार किया। आजीवन उन्होंने मुझे दत्तकपुत्री स्वीकार किया। मेरे नैरोबी (केन्या, ईस्ट अफ्रीका) प्रवास काल में 29 अगस्त सन् 2004 में उनकी मृत्यु हुई। पण्डित मूलचन्द्र अवस्थी के दिवंगत होने से प्रयाग में आर्यसमाज की विद्वत्परम्परा को मानो विराम लग गया है। आशा है भविष्य में ऐसे विद्वान् होंगे, जो स्वाध्यायशील तथा उत्तम प्रवचनकर्ता होंगे, जो महर्षि दयानन्द के वैदिक सिद्धान्तों का पूर्ण मनोयोग से प्रचार-प्रसार करेंगे।

नवम अध्याय

प्रयाग के संस्कृत अभिलेख

प्राचीन भारत के इतिहास लेखन में प्राचीन प्रस्तर अभिलेखों का विशेष महत्त्व है। इतिहास के अन्य स्रोत, जैसे—लोककथाओं में वाङ्मयीन साक्ष्य, बहुत कुछ कल्पनाधारित होते हैं, समय के साथ उनमें परिवर्तन भी होता रहता है। स्पष्ट है कि इन कम-अधिक कल्पनामिश्रित और परिवर्तनशील सामग्रियों के आधार पर लिखित इतिहास को पूर्णतः विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। शिलाओं, स्तम्भों एवं धातु निर्मित ताम्रपत्रों पर खुदे हुए अभिलेख न केवल स्थाई होते हैं अपितु परिवर्तन सम्भव न होने के कारण इनका ऐतिहासिक प्रमाण अकाट्य होता है। इन अभिलेखों का उद्देश्य बहुधा साक्षात् इतिहास लिखना नहीं होता अतः इनका पुरातात्त्विक साक्ष्य निःस्वार्थ और निष्पक्ष रहता है।

संस्कृत भाषा के विशिष्ट अंग लिपिशास्त्र के इतिहास बोधन की दृष्टि से भी अभिलेखों का महत्त्व निर्विवाद है। संस्कृत साहित्य में उल्लिखित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के ज्ञात तथ्यों की परीक्षा में भी ये अभिलेख संशयरहित प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

भारतवर्ष में अभिलेखों की परम्परा प्राचीन है। सौभाग्य से प्रयाग में प्राचीन अभिलेख प्रभूत संख्या में उपलब्ध हैं। प्रयाग स्थित अशोक स्तम्भ में सम्राट् अशोक की प्रशस्ति अंकित है। औरंगजेब के द्वारा प्रदत्त दान का विवरण भी शिलालेख पर अंकित मिलता है। समुद्रगुप्त के सम्मान में उनके अमात्य हरिषेण का संस्कृत गद्यपद्यमय शिलालेख प्रयाग से ही प्राप्त हुआ था।

1. प्रयाग जनपद में उपलब्ध होने वाले कतिपय संस्कृत अभिलेखों का संक्षिप्त परिचय निम्न है—

1. समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रस्तर स्तम्भ लेख—

सम्राट समुद्रगुप्त के चार अभिलेख प्राप्त हैं—

1. प्रयाग का स्तम्भ लेख।

2. एरण (सागर, मध्य प्रदेश) का शिलालेख।

3. गया (बिहार) का ताम्रपत्र लेख।

4. नालन्दा (बिहार) का ताम्रपत्रलेख।

इन अभिलेखों में प्रयाग के किले में अवस्थित सम्राट अशोक के स्तम्भ लेख पर उत्कीर्ण समुद्रगुप्त का स्तम्भलेख साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोणों से उल्लेख्य है। संगम तट पर किले में अवस्थित 10.6 मीटर ऊँचा अशोक स्तम्भ 232 ईसा पूर्व का है जिस पर तीन शासकों के लेख खुदे हुए हैं। 200 ईस्वी सन् में समुद्रगुप्त इसे कौशाम्बी से प्रयाग लाए, उनके दरबारी कवि हरिषेण के द्वारा रचित प्रयाग-प्रशास्ति इस पर उत्कीर्ण कराई गई। कालान्तर में जहाँगीर के तख्तनशी होने की घटना इस पर अंकित की गई। सन् 1800 ई० में किले की प्राचीर सीधी बनाने हेतु इस स्तम्भ को गिरा दिया गया। सन् 1838 में अंग्रेजों ने इसे पुनः मिन्टो पार्क (मदन मोहन मालवीय उद्यान) में स्थापित किया।[1] प्रयाग प्रशस्ति नाम से प्रसिद्ध इस अभिलेख में संस्कृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में सम्राट समुद्रगुप्त की विजयों, कार्यों तथा गुणों का विवरण मिलता है। समुद्रगुप्त का शासनकाल ऐतिहासिकों द्वारा 350 ईस्वी सन् से 375 ईस्वी सन् माना गया है। प्रयाग स्तम्भ लेख का काल 350 ईस्वी सन् के लगभग निर्धारित किया गया है। समुद्रगुप्त के जीवन की सबसे अधिक विशिष्ट घटना थी उसकी दिग्विजय, जिसका विस्तृत वर्णन इस अभिलेख में किया गया है। जिसमें उसने दक्षिणापथ के राजाओं—कोसल के महेन्द्र, महाकान्तार के व्याघ्रराज, केरल के भण्टराज, पिष्टपुर के महेन्द्रगिरि, कोट्टूर के स्वामिदत्त, एरण्डपल्ल के दमन, क़ांची के विष्णुगोप, अवमुक्त के नीलराज, वेंगी के हस्तिवर्मन, पल्लक के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर, कुस्थलपुर के धनञ्जय आदि को जीतकर उनको मुक्त कर दिया तथा आर्यावर्त के शासकों—रुद्रदेव मतिल नागदत्त, चन्द्रवर्म्मा, गणपतिनाग, नागसेन अच्युत, नन्दि बलवर्म्मा आदि का उन्मूलन कर दिया। समतट डवाक, कामरूप नेपाल कर्तृपुर तथा अन्य प्रदेशों के सीमान्त शासकों तथा मालव, आर्जुयायन यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खरपरिक आदि गणों से कर वसूल करके उनसे अपनी आज्ञा का पालन कराया। इन दिग्विजयों के अतिरिक्त समुद्रगुप्त के शौर्य, औदार्य, दानशीलता विद्याव्यसन, वदान्यता, कवित्व एवं संगीत प्रेम आदि गुणों की भी सूची दी गई है। अभिलेख में समुद्रगुप्त की वंशावली के साथ ही अधिकारी वर्ग का भी नामोल्लेख है।

इस अभिलेख का प्रकाशन सर्वप्रथम जे० एम० फ्लीट ने 'कॉरपस

1. इलाहाबाद डाक टिकट प्रदर्शनी स्मारिका 9-10 जनवरी, 2015, प्रवर अधीक्षक डाकघर, इलाहाबाद।

इन्सिक्रपशन्स इन्डिकेरम' वॉल्यूम 3 में किया है। इस प्रशस्तिपरक लेख की रचना में गुप्तकालीन लिपि व चम्पूशैली (गद्य-पद्यमिश्रित) का उपयोग किया गया है। इसमें 33 पंक्तियाँ हैं, आरम्भ के कुछ श्लोकों के अक्षर भ्रष्ट हो जाने के कारण वे अपूर्ण हैं। अभिलेख का रचयिता कवि हरिषेण राजा का सान्धिविग्रहिक अमात्य व महादण्डनायक है। अपर महादण्डनायक तिलभट्टक इस अभिलेख के उत्कीर्णक हैं।

अभिलेख की गद्यशैली पर सुबन्धु तथा बाणभट्ट की समास बहुल शैली की छाया है। लघुसमास शैली वाले पद्यों की भाषा पर महाकवि कालिदास की वैदर्भी रीति की झलक दिखती है।

2. सम्राट् यशःकर्ण का कौशाम्बी ताम्रपत्र लेख

कौशाम्बी में प्राप्त कलचुरि राजा यशः कर्ण (संवत् 823; सन् 767; 1076 ईस्वी सन) तथा उसकी रानी वीक्कल देवी (संवत् 827) के द्वारा उत्कीर्ण चार ताम्रपत्र लेखों में चार वर्ष का अन्तराल है किन्तु ये सभी ताम्रपत्र यशःकर्ण की मुद्रा के साथ एक ही कड़ी में संलग्न हैं। इस मुद्रा पर 'श्रीमद्यशः कर्णदेवः' लेख के साथ ऊपर की ओर गजलक्ष्मी तथा नीचे बैठे हुए नन्दी का अंकन है।

इन ताम्रपत्रलेखों का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व है। इन ताम्रपत्रलेखों से इस क्षेत्र पर यशः कर्ण के राजनैतिक प्रभुत्व की पुष्टि होती है। तद्नुसार यशःकर्ण ने आन्ध्राधीश का उच्छेदन कर गोदावरी नदी के निकट अनेक आभूषणों से भगवान् भीमेश्वर की अर्चना की थी। यशःकर्ण ने मार्गशीर्ष माह में शुक्लपक्ष की पूर्णिमा में रविवार को, चन्द्रग्रहण के अवसर पर प्रयाग में त्रिवेणी में स्नान कर त्रिवेणी तट पर खौंचम पत्तला के अन्तर्गत सिरिसा ग्राम दान में दिया था। यह ग्राम आज भी मेजा रोड से 5, 6 किलोमीटर उत्तर गंगा के किनारे अवस्थित है। भरद्वाज गोत्रीय (प्रवर भारद्वाज आङ्गिरस बार्हस्पत्य) हरिशर्मा नामक वाजसनेय शाखीय ब्राह्मण को यह सिरसा ग्राम दान में देने का उल्लेख है।

3. यशःकर्ण की रानी वीक्कल देवी का कौशाम्बी ताम्रपत्र लेख

यशः कर्ण के इस ताम्र पत्र लेख के साथ संलग्न उसकी रानी वीक्कलदेवी ने चार वर्ष पश्चात् श्रावणमास के कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि में शनिवार को दाक्षिणायान संक्रान्ति के अवसर पर माता-पिता और स्वयं के यशः, पुण्य, की अभिवृद्धि हेतु खौंचम पत्तला में यमुना तट पर देवश्री कपालेश्वर मन्दिर के निकट 'अधिलगवहाण' और 'सेवाल' ग्राम दान में दिये थे। आज ये ग्राम इलाहाबाद-बाँदा मार्ग (यमुना नदी के समीप) पर 'गौहनिया' और 'सेमरा' नाम

से जाने जाते हैं।

रानी वीक्कलदेवी ने इक्कीस शर्मा उपनामधारी भारद्वाज, धौम्र, वशिष्ठ, भार्गव, शाण्डिल्य, कश्यप, वत्स, दक्ष, सांकृत्य गोत्रीय ब्राह्मणों को ये दोनों ग्राम दानस्वरूप दिए थे। ये सभी ब्राह्मण वाजसनेय, बह्वृच, आश्वलायन, कौथुम, छन्दोग आदि शाखाओं से सम्बद्ध विद्वान् ब्राह्मण थे। अभिलेख में उल्लिखित इन शाखाओं से वैदिक साहित्य के तत्कालीन अध्ययन और प्रसार का ज्ञान होता है। अभिलेख में इन इक्कीस ब्राह्मणों के मूल निवास का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः वे सभी स्थानीय रहे होंगे। प्रयागक्षेत्र के शिक्षाकेन्द्र होने के कारण वीक्कलदेवी को प्रयाग में वैदिक ब्राह्मण सहजता से उपलब्ध हो गए होंगे। राजा और रानी के इन कौशाम्बी अभिलेखों में राजा यशः कर्ण द्वारा प्रयाग में अक्षयवट के समीप अपनी सौ पत्नियों के साथ मुक्ति प्राप्त करने की चर्चा है।

4. कुमारगुप्त का गढ़वा अभिलेख

इस संक्षिप्त लेख में भिक्षागृह के लिए 10 दीनार दान दिये जाने का उल्लेख है। (दीनार गुप्त कालीन स्वर्ण सिक्का है)। धर्म शाखा में व्यवधान उत्पन्न करने वाले को पाँच महापातकों का भागी बताया गया है। अभिलेख की सभी 9 पंक्तियाँ खण्डित हैं।

5. कुमारगुप्त का गढ़वा अभिलेख, संवत् 98

गुप्त संवत् 98 (98+319 = 417 ई०) के इस अभिलेख में अपने पुण्य वृद्धि के उद्देश्य से 12 दीनार दान दिये जाने का उल्लेख किया गया है। अभिलेख की सभी 9 पंक्तियाँ आंशिक रूप से खण्डित हैं।

6. इलाहाबाद संग्रहालय यूप अभिलेख

लगभग दूसरी शताब्दी ई० की ब्राह्मी लिपि में प्रस्तर पर उत्कीर्ण यह अभिलेख कौशाम्बी से प्राप्त हुआ है। इसमें विभिन्न यज्ञों—अग्निष्टोम, वाजपेय आदि सात यज्ञों के सम्पादन के सन्दर्भ में 7 वेदिकाओं के निर्माण की चर्चा है। ये यज्ञ मंत्री शिवदत्त द्वारा सम्पन्न कराये गये थे। अभिलेख कुल 16 पंक्तियों में उत्कीर्ण है जिसमें 1 से लेकर 9 तक के अंक भी उत्कीर्ण किये गये हैं।

7. भीमसेन का गिंजा शिलालेख

संवत् 52 (52+78 = 130 ई०) के इस अभिलेख में महाराज श्री भीमसेन का उल्लेख दिया गया है। इसमें संख्या 50, 2 और 10 का चिह्न प्राप्त होता है।

8. पभोसा गुफा अभिलेख

लगभग पहली शताब्दी ईसा पूर्व के इस अभिलेख में अहिच्छत्र (पंचाल)

के शासक शोनकायन के वंशज अषाढ़सेन द्वारा कौशाम्बी के पार्श्व में स्थित पभोसा की पहाड़ी पर गुफा-निर्माण का उल्लेख है। इससे कौशाम्बी और अहिच्छत्र के बीच मधुर सम्बन्धों का पता तो चलता ही है। अषाढ़सेन के धार्मिक कृत्यों की भी जानकारी प्राप्त होती है।

अधिछत्राथा राज्ञो शोनकायनपुत्रस्य वंशपालस्य पुत्रस्य राज्ञो तेवणीपुत्रस्य भागवतस्य पुत्रेण वैहिदरी पुत्रेण अषाढ़सेनेन कारितम्।

9. कनिष्क की मृण्मुद्रा (Clay Sealing)

महाराजस्य राजतिराजस्य देवपुत्रस्य कनिष्कस्य प्रयोग।

दशम अध्याय

प्रयाग की संस्कृत पाठशालाएँ

1. श्री हर्ष सावित्री संस्कृत पाठशाला, दारागंज, इलाहाबाद
2. श्री शिव शर्मा संस्कृत महाविद्यालय, दारागंज, इलाहाबाद
3. श्री भगवताचार्य संस्कृत महाविद्यालय, नृसिंह मन्दिर, दारागंज, इलाहाबाद
4. श्री त्रिवेणी संस्कृत महाविद्यालय, दारागंज, इलाहाबाद
5. श्री महानिर्वाणी वेद विद्यालय, दारागंज, इलाहाबाद
6. श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय, बैकुण्ठाश्रम दारागंज, इलाहाबाद
7. श्री वेद भवन संस्कृत विद्यालय, शृंगेरीमठ, अलोपीबाग, इलाहाबाद
8. श्री महन्त विचारानन्द संस्कृत उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, मठ बाघम्बरी गद्दी, दारागंज, इलाहाबाद
9. श्री ज्योतिष्पीठ संस्कृत महाविद्यालय, शंकराचार्य आश्रम, अलोपीबाग, इलाहाबाद
10. श्री किशोरीलाल वेणी माधव संस्कृत महाविद्यालय, तालाब नवलराय, नया बैहराना, इलाहाबाद
11. श्री हनुमत संस्कृत उच्चतर माध्यमिक महाविद्यालय, रामबाग, हनुमान मन्दिर, इलाहाबाद
12. श्री सौदामिनी संस्कृत महाविद्यालय, 149, विवेकानन्द मार्ग, इलाहाबाद
13. श्री सर्वार्य आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, बहादुरगंज, इलाहाबाद
14. श्री हरीराम गोपाल कृष्ण सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालय, 24 ऊँचा मण्डी, इलाहाबाद
15. श्री धर्मज्ञानोपदेश संस्कृत महाविद्यालय, मालवीय नगर, इलाहाबाद
16. श्री सच्चा अध्यात्म संस्कृत महाविद्यालय, अरैल, नैनी इलाहाबाद
17. श्री श्रीकृष्ण संस्कृत पाठशाला, सदरहन का पुरा, सिरसा, मेजा इलाहाबाद
18. श्री नाथ संस्कृत पाठशाला, सिरसा, इलाहाबाद
19. श्री विश्वनाथ संस्कृत महाविद्यालय, कोराँव, इलाहाबाद

20. श्री कमलाकर संस्कृत पाठशाला, शंकरगढ़, इलाहाबाद
21. श्री गौरीशंकर स्मारक संस्कृत महाविद्यालय, शृंगवेरपुर, इलाहाबाद
22. श्री सूर्य नारायण स्मारक संस्कृत महाविद्यालय, दुखियापुर, अटरामपुर इलाहाबाद
23. श्री शिव संस्कृत पाठशाला, सैदाबाद, इलाहाबाद
24. श्री महर्षि दुर्वासा संस्कृत उच्चतर माध्यमिक महाविद्यालय, हनुमानगंज, इलाहाबाद
25. श्री संकीर्तन ब्रह्मचर्याश्रम संस्कृत महाविद्यालय, झूँसी, इलाहाबाद
26. श्री राम सुमेर तिवारी संस्कृत महाविद्यालय, नारी-बारी, इलाहाबाद
27. श्री हनुमान संस्कृत महाविद्यालय, खीरी-इलाहाबाद
28. श्री नारायणदास संस्कृत महाविद्यालय, कोल्तरा-लेड़ियारी, इलाहाबाद
29. श्री शेषमणि संस्कृत उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रतेवरा, करपिया, पो॰ करपिया, इलाहाबाद
30. श्री आनन्द बोधाश्रम संस्कृत महाविद्यालय, तिवारीपुर गाढ़ा, इलाहाबाद
31. श्री महर्षि पाणिनि संस्कृत उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बड़ोखर, इलाहाबाद
32. श्री उदयन संस्कृत विद्यालय, कमल नगर, इलाहाबाद
33. श्री गौरीशंकर संस्कृत पाठशाला, साहीपुर, हंडिया, इलाहाबाद
34. श्री गुरुकुल वैदिक संस्कृत महाविद्यालय, सिराथू, इलाहाबाद
35. श्री नारायण संस्कृत पाठशाला, टेंवी, इलाहाबाद
36. श्री हुबलाल आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, भरवारी, इलाहाबाद
37. श्री आदर्श हनुमत संस्कृत महाविद्यालय, अर्का महावीरपुर, बन्धुरी, रसूलपुर-इलाहाबाद
38. श्री लक्ष्मी नारायण धर्मोपदेश संस्कृत पाठशाला, कौशाम्बी, बेरोचा, इलाहाबाद
39. श्री हनुमत संस्कृत पाठशाला, अर्का, करारी, इलाहाबाद
40. श्री शिव शारदा संस्कृत महाविद्यालय, इमली गाँव, तिल्हापुर, इलाहाबाद
41. श्री श्यामलाल तिवारी संस्कृत विद्यालय, रेडक्रास परिसर, बहादुरगंज, इलाहाबाद
42. श्री जनन्ता देवी संस्कृत महाविद्यालय, कौथियरा, इलाहाबाद
43. श्री ब्रजवख्राड संस्कृत विद्यालय, देवली, इलाहाबाद
44. श्री कमलापति संस्कृत विद्यालय, कोटाढ़ जारी, इलाहाबाद

उपर्युक्त सूची में कतिपय पाठशालाएँ आज अस्तित्व में नहीं हैं। केवल एक—श्री लक्ष्मी नारायण धर्मोपदेश संस्कृत पाठशाला कौशाम्बी जिले के

इलाहाबाद जनपद से अलग हो जाने के कारण इलाहाबाद जनपद में परिगणित नहीं है। नगर में कुछ संस्कृत प्रेमी सज्जनों के प्रयास से अनेक नूतन पाठशालाओं की स्थापना हुई है।, उनकी सूची निम्न हैं—

1. श्री महावीर संस्कृत महाविद्यालय, कमलानगर, इलाहाबाद।
2. श्री शिवहर्ष देवनारायण मा॰ प॰ आ॰ संस्कृत महाविद्यालय, अकोटी, इलाहाबाद।
3. श्री बैकुण्ठनाथ संस्कृत विद्यापीठ, श्री बैकुण्ठधाम, अलोपीबाग, इलाहाबाद।
4. श्री तीर्थराज संन्यासी संस्कृत उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, झूँसी, इलाहाबाद।
5. श्री बजरंग संस्कृत उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, देवकी, गोरियों, फूलपुर, इलाहाबाद।
6. श्री श्यामलाल शुक्ल संस्कृत महाविद्यालय, अयोध्या, कोराँव, इलाहाबाद।

सन्दर्भ पुस्तक सूची

1. प्रयाग माहात्म्य, गंगा विष्णु, मुद्रक—श्री कृष्ण दास।

2. प्रयाग माहात्म्य, जगन्नाथ प्रसाद बुकसेलर।

3. प्रयाग महात्म्य शताध्यायी, श्याम नारायण, 1930।

4. तीर्थों का तीर्थ प्रयाग, शिव कुमार दुबे, शब्दपीठ, कर्नलगंज, इलाहाबाद, 1986।

5. प्रयाग का कुम्भ मेला, ए॰ के॰ सेन

6. प्रयागदर्शन, भास्कर नाथ तिवारी शिलालेख, हरिषेण (समुद्रगुप्त)।

7. प्रयाग प्रदर्शिका, सजनी कार्यालय, इलाहाबाद।

8. प्रयागप्रदीप, शालिग्राम श्रीवास्तव, हिन्दुस्तानी एकेडमी, 1937।

9. प्रयाग, भारत के तीर्थ, दयाशंकर दुबे, 1933।

10. इलाहाबाद : वे दिन - वे लोग, भुवनेश्वर सिंह गहलौत, राका प्रकाशन।

11. प्रयाग दर्शन, भास्कर नाथ तिवारी, विद्या प्रकाशन गृह, इलाहाबाद, 1976।

12. तपोभूमि, रामगोपाल मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, संवत् 2007।

13. भारत को प्रयाग की देन; हरेन्द्र प्रताप सिन्हा, राम नारायण लाल, 1953।

14. भारतीय ज्योतिष् में प्रयाग, डॉ॰ गिरिजा शंकर शास्त्री, हिन्दुस्तानी एकेडमी, 2008।

15. प्रयागः कुम्भ महापर्व, डॉ॰ कृष्णा नन्द पाण्डेय, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013।

16. प्रयागराज, हरिमोहनदास टण्डन, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1997।

17. अक्षयवट, शीतला प्रसाद मिश्रा कल्याण मन्दिर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1992।

18. तीर्थ एवं तीर्थराज प्रयाग, श्याम सुन्दर सिंह, आदित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999।

19. कुम्भपर्व प्रयाग, देवी प्रसाद दुबे, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1989

20. परमार्थ कुम्भ विशेषांक, डॉ० राजलक्ष्मी वर्मा, परमार्थ प्रकाशन, हरिद्वार, 1989।

21. तीर्थराज प्रयाग, रतिभान त्रिपाठी, सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र, नई देहली 2000।

22. स्वर्णभूमि प्रयाग, स्वामी आनन्द गिरि, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 2013।

23. त्रिस्थली सेतु, नारायण भट्ट, स० हरि नारायण आपटे, आनन्दाश्रम, पुणे, 1915।

24. वाल्मीकि रामायण में भरद्वाज आश्रम, बलदेव प्रसाद गुप्त, मातृभाषा मन्दिर, दारागंज संवत् 2005।

25. ऋग्वेद, पंडित जयदेव शर्मा विद्यालंकार, आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर संवत् 2022।

26. यजुर्वेद, अनुवाद—पंडित जयदेव शर्मा विद्यालंकार, आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, 1989।

27. शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्य, लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्यण, मुम्बई, 1997।

28. वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2051।

29. महाभारत, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुणे, 1958।

30. मनुस्मृति, पंडित हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संवत् 2049।

31. श्रीमद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, संवत् 2044।

32. पद्म पुराण, खेमराज श्रीकृष्ण दास जी प्रकाशन, बम्बई, 1952।

33. मत्स्य पुराण, अनुवाद—तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1989।

34. विष्णुधर्मोत्तर महापुराण, लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण, मुम्बई, 1996।

35. अग्नि पुराण, अनुवाद—तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

36. कूर्म पुराण, अनुवाद—तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

37. ब्रह्माण्ड पुराण, अनुवाद—तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

38. लिंग पुराण, अनुवाद—श्री राम शर्मा, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1969।

39. वामन पुराण, अनुवाद—श्री राम शर्मा, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1970।

40. विष्णु पुराण, अनुवाद—श्री राम शर्मा, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1967।

41. शिव पुराण, अनुवाद—प्यारेलाल, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, 1928।

42. स्कन्द पुराण, अनुवाद—डॉ० शिवानन्द नौटियाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1994।

43. अष्टाध्यायी, (पाणिनीयं शब्दानुशासनम्) रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत (हरियाणा) 1973।

44. रघुवंश, पण्डित लक्ष्मीप्रपन्नाचार्य, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी संवत् 2004।

45. उत्तररामचरित, भवभूति, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971।

46. प्रसन्नराघव, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संवत् 2010।

47. शंकरदिग्विजय, माधवाचार्य, अनुवाद—पण्डित बलदेव प्रसाद उपाध्याय।

48. अमरकोष, रामाश्रमी व्याख्या, भानुजी दीक्षित, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1997।

49. रसमञ्जरी, भानुदत्त मिश्र, श्री हरिकृष्ण निबन्धभवनम्, वाराणसी, 1978।

50. रसतरंगिणी, पण्डित सीताराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, संवत् 2025।

51. शृङ्गारमाला, सुखलाल मिश्र; सम्पादक-अनुवादक—डॉ० शिवशंकर त्रिपाठी, भारतीय मनीषा सूत्र, दारागंज, इलाहाबाद, सन् 1999।

52. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1985।

53. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, पण्डित बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1969।

55. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, परिशिष्ट-2 संस्कृत हिन्दी कोष, सन् 2001 श्री रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद।

56. संस्कृत गद्यालोक, संवत् 2043, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, नारायण पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।

57. कालिदास का भारत, भगवत शरण उपाध्याय, काशी, 1965।

58. कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, डॉ॰ कैलाश नाथ द्विवेदी।

59. ह्वेनसांग की भारतयात्रा, ठाकुर प्रसाद शर्मा, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, 492 मालवीय नगर, इलाहाबाद, अगस्त, 1972।

50. संस्कृत के विद्वान् और पण्डित, रामचन्द्र मालवीय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी—1।

60. अलबरुनी का भारत, सन्तराम, इण्डियन प्रेस, प्रयाग 1928।

61. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।

62. रसा से सदानीरा तक, डॉ॰ हरिशंकर त्रिपाठी, वेदपीठ प्रकाशन, इलाहाबाद।

63. हिन्दी के बहाने, प्रो॰ हेरम्ब चतुर्वेदी, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 2015

64. कलचुरि अभिलेखों का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन, डॉ॰ सत्य प्रकाश श्रीवास्तव, सन् 2010, सुलभ प्रकाशन, वाराणसी।

65. आठवाँ अमृत, डॉ॰ जयशंकर त्रिपाठी, विभा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998।

66. उत्तर खोजते प्रश्न, डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय, प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई देहली, 1999।

67. साहित्यकल्पतरु, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, डॉ॰ राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री' वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010।

68. सम्मान सुमन (डॉ॰ प्रभात शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ)—डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक, प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दिल्ली, 1994।

69. रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2032।

70. हिन्दी विश्वकोष, लेखक-प्रकाशक—नागेन्द्र नाथ वसु, विश्वकोष लेन, बाग बाजार, कलकत्ता 1928।

71. हिन्दू धर्म कोष, पं॰ राजबली पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान समिति प्रभाग, लखनऊ, 1978।

72. निरुक्त, पंडित मुकुन्द झा शर्मा, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली 1989।

पत्रिकाएँ—

(1) कुम्भदर्शन, जगदीश गुप्त, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, 1995 कुम्भ विशेषांक, रमादत्त शुक्ल, ॠतुशील शर्मा, परावाणी आध्यात्मिक, शोध संस्थान इलाहाबाद, 2002।

(2) भरद्वाजमहोत्सव, गया चरण त्रिपाठी, गंगा नाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, 2001।

(3) पथसंकेत (महाकुम्भ विशेषांक), रामनरेश तिवारी, पथ संकेत कार्यालय, इलाहाबाद, 2001।

(4) प्रयाग कुम्भ विशेषांक (अमृत प्रभात), तुषार कान्ति घोष, इलाहाबाद, 1989।

(5) जयशंकर त्रिपाठी, व्यक्तित्व और कृतित्व; विमलचन्द, कृष्णदत्त बाजपेयी, सागर (मध्य प्रदेश)।

(6) साहित्य विकल्प, प्रवेशांक-नवम्बर 2014, सुलेख मुद्रणालय, 148 हीवेट रोड, इलाहाबाद, 211003।

(7) इलाहाबाद डाक टिकट प्रदर्शनी विशेषांक 09-10 जनवरी, 2015, प्रवर अधीक्षक डाकघर, इलाहाबाद मण्डल, इलाहाबाद —211001।

(8). ज्ञानायनी, अक्टूबर-दिसम्बर अंक 2011, भारतीय भाषा संगम 21105 विवेक खण्ड गोमती नगर, लखनऊ—226010।

(9) शताब्दी वर्ष स्मारिका (2012-13 दो भाग) विज्ञान परिषद्, प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद, 211002।

(10) दृक्, दृग्-भारती, इलाहाबाद, 17-2007 एवं 21-2009।

समाचार पत्र—

नार्दर्न इण्डिया पत्रिका, 11 फरवरी, 2007।

दैनिक जागरण।

आंग्ल भाषीय ग्रन्थ—

1. History of Sanskrit Literature, M. Winternitz.

2. Allahabad : Retrospect and Prospect, The Municipal Press, Allahabad, 1955.

3. Kumbh Mela, D.P. Dubey, Society of Pilgrimage Studies, Allahabad, 2001.

4. Triveni, D.P. Dubey, Society of Pilgrimage Studies, Allahabad, 1996.

5. Allahabad through the Agcs, G.R. Sharma, Allahabad, 1964.

6. Allaphilex January 2015, Commemoration Volume.

7. Some Aspect of Pre-History, V.D. Misra, Allahabad, 1977.

8. Umesh Mishra Commemoration Volume, 1970, Ganga Nath Jha Research Institute, Allahabad.

9. Amrit-Kalash (Professor T. Pati Felicitation Volume), Editor : P.N. Pandey, University of Allahabad, 2004.

10. Journal of the Ganganath Jha Kendriya Sanskrit, Vidyapeeth, Editors—Gaya C. Tripathi, Maya Malaviya, Govindabhinandanam, 1999.

11. Allahabad : The King of All Pilgrinages, Om Prakash Dubey.

12. Prayag, Through the Ages, Hindustani Academy.

BOOK
EASTERN
EBL
LINKERS

EASTERN BOOK LINKERS
(INDOLOGICAL PUBLISHERS & BOOKSELLERS)
HO.: 5825, New Chandrawal, Jawahar Nagar,
Delhi-110007 Ph.: 23850287, 09811232913
Showroom: 4806/24, Bharat Ram Road,
Ansari Road, Darya Ganj, Delhi-110002
Phone: 23285413
e-mail: eblindology@gmail.com
eblinfo76@gmail.com
website: www.eblindology.com

ISBN: 978-81-7854-292-8
9 788178 542928

EASTERN BOOK LINKERS
(INDOLOGICAL PUBLISHERS & BOOKSELLERS)
HO.: 5825, New Chandrawal, Jawahar Nagar,
Delhi-110007 Ph.: 23850287, 09811232913
Showroom: 4806/24, Bharat Ram Road,
Ansari Road, Darya Ganj, Delhi-110002
Phone: 23285413
e-mail: eblindology@gmail.com
eblinfo76@gmail.com
website: www.eblindology.com

ISBN: 978-81-7854-292-8
9 788178 542928